श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला २, ८

वर्णी-वाणी

(पत्र-पारिजात)

[चतुर्थ-भाग]

(पूज्य श्री १०५ वर्णीजी द्वारा लिखे गये पत्रोंका संग्रह)

सङ्कलयिता और सम्पादक—

विद्यार्थी नरेन्द्र

काव्यतीर्थ, शास्त्री, साहित्याचार्य, बी० ए०

(भूतपूर्व एम० एस० ए० विन्ध्य तथा मध्यप्रदेश)

प्रकाशक—

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

भदैनीघाट, काशी

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला के

ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रथम संस्करण वीर नि० सं० २४८४

मूल्य ३॥)

मुद्रक—

शिवनारायण उपाध्याय

नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी

वर्णीवाणी चतुर्थ भाग

पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी

प्रकाशकीय वक्तव्य

पिछले वर्ष जैनदर्शनका प्रकाशन श्री व० ग्रन्थमालासे हुआ था। उसके बाद इतने जल्दी वर्णीवाणी चतुर्थ भाग (पत्र पारिजातको) ग्रन्थमालासे प्रकाशित होनेका सौभाग्य मिला है इसकी हमे प्रसन्नता है। इसमें पूज्य श्री वर्णी जी द्वारा त्यागियोको अलग अलग लिखे गये पत्रोका संकलन किया गया है। पत्रोंकी अपनी मौलिक विशेषता है। जो व्यक्ति जैन समाजकी विविध प्रवृत्तियोंका अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिये तो ये पत्र पठनीय है ही। साथ ही जो आध्यात्मिक रहस्यको समझना चाहते हैं उनके लिए भी ये पठनीय हैं।

वर्णीवाणीके सम्पादक श्री वि० नरेन्द्र जीने इनके संकलनमें बड़ा श्रम किया है। उनके दीर्घ अध्यवसायके फलस्वरूप यह कार्य मूर्तरूप ले रहा है इसकी हमे प्रसन्नता है। उन्होंने विद्वानों, सेठो और विद्यार्थियोंको पूज्य श्री वर्णी जी द्वारा लिखे गये पत्रोंका भी संकलन कर लिया है और उनकी प्रेसकापी भी कार्यालयमें आ गई है। आगे हमारा विचार क्रमसे पाँचवें भाग आदि रूपसे उन्हे ही सर्व प्रथम प्रकाशित करनेका है। यदि अनुकूलता रही तो पाठकोंको उनका स्वाध्याय करनेका शीघ्र ही अवसर प्राप्त होगा। इतना अवश्य है कि ग्रन्थ-मालाने जैन साहित्यके इतिहासका कार्य भी सम्हाल रखा है, इसलिए आर्थिक दृष्टिसे उस पर पर्याप्त बोझ पड रहा है। आशा है समाजके उदार सहयोगसे ग्रन्थमाला अपने निर्दिष्ट कार्योंमें सफलता प्राप्त करेगी। शेष बातोका स्पष्टीकरण ग्रन्थमाला सम्पादकने अपने वक्तव्यमें किया है।

प्रकृतमें पाठकोसे हम यही आशा करते हैं कि वे वर्णीवाणीके अन्य भागोंके समान इसे भी समुचित रूपसे अपनावेंगे।

ता० २५-११-५६
बीना

निवेदक
वंशीधर व्याकरणाचार्य
मंत्री श्री० ग० वर्णी जैन ग्रन्थमाला, काशी

दो शब्द

वर्णीवाणी चतुर्थ भाग को प्रकाशन योग्य बनानेमें पर्याप्त समय लगा है। इसमें पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णीके वे पत्र संकलित किये गये हैं जो उन्होंने त्यागिगणको समय समय लिखे हैं। यों तो बहुतसे पत्र कलकत्ता, इन्दौर और सहारनपुर आदिसे प्रकाशित हो गये हैं परन्तु उनको व्यवस्थित रूपसे संकलित कर प्रकाशित करनेका यह प्रथम ही अवसर है।

वर्णीवाणीके पिछले तीन भागोंमें पूज्य श्री वर्णी जीके विविध लेखों, प्रवचनों और दैनंदिनियोंका ही संकलन किया गया है, इसलिए वे वर्णीवाणी इस नामसे प्रकाशित की गई हैं। किन्तु इस भागमें केवल पत्रोंका संकलन होनेसे इसका मुख्य नाम वर्णीवाणी रखकर भी ब्रेकेटके भीतर 'पत्रपारिजात' नाम दिया गया है।

पूर्व भागोंके समान इस भागका संकलन भी बी० ए०, साहित्याचार्य और साहित्यरत्न आदि योग्यता सम्पन्न चि० वि० नरेन्द्रकुमारजी भूतपूर्व सदस्य विधानपरिषद विन्ध्यप्रदेशने किया है। उन्होंने पूज्य श्री वर्णी जी महाराज द्वारा विद्वानों, सेठों और विद्यार्थियोंको लिखे गये पत्रोंका भी संकलन किया है। वह सब संकलन ग्रन्थमालाके कार्यालयमें विद्यमान है। विद्यार्थीजी से ज्ञात हुआ है कि अन्तमें इस कार्यमें उनकी विदुषी पत्नी सौ० रमादेवी न्यायतीर्थ साहित्यरत्नका भी पूरा सहयोग मिला है।

प्रकाशनके पूर्व आपसी बातचीतमें विचार हुआ था कि जिस व्यक्तिके नाम पत्र हों उसका नाम आशीर्वाद या दर्शन-

विशुद्धिके साथ प्रथम पत्रके प्रारम्भमें दे दिया जाय और 'आ० शु० चि० गणेश वर्णी' यह वाक्य अन्तिम पत्रके अन्तमें दे दिया जाय। प्रेस कापी इसी आधारसे तैयार की गई थी। किन्तु अनेक विचारकोंकी सलाह मिली कि सब पत्र अविकल दिये जाने चाहिए। पत्रोंके बीचके कुछ अन्य अंश भी प्रेस कापीके समय अलग कर दिए गये होंगे। किन्तु सब पत्र अविकल दिये जाने चाहिए इस सिद्धान्तके स्वीकार कर लेनेसे यथासम्भव प्रेस कापीको मूल पत्रोंसे पुनः मिलाया गया। साथ ही यह भी विचार हुआ कि जिन व्यक्तियोंके नाम लिखे गये पत्र दिये जा रहे हैं उनका प्रारम्भमें परिचय भी रहना चाहिए। यह सब कोई जानता है कि परिचय प्राप्त करनेमें कितनी कठिनाई होती है। किसीका परिचय न देने पर अन्यथा कल्पना होने लगती है। किन्तु एक दो चार लिखने पर कोई भेजता भी नहीं है। यह भी एक दिक्कत थी। इससे इस भागके प्रकाशित होनेमें काफी समय लगा है। हमारा अन्य व्यासंग तो इस देरीमें कारण है ही।

इस भागमें तीस त्यागी महानुभाव और बहिनोंके नाम लिखे गये पत्र दिये गये है। जहाँ तक सम्भव हुआ सबका परिचय भी साथमें देते गये हैं। परन्तु २–४ ऐसे भी महानुभाव हैं जिनका पूरा परिचय नहीं दिया जा सका है। उनमेंसे एक श्री ब्र० मूलशंकरजी भी हैं। उन्हें अनेक बार पत्र लिखे गये। यह भी बताया गया कि यह लोक प्रख्यापनकी दृष्टिसे कार्य नहीं हो रहा है। वर्तमान त्यागियों विद्वानों और जनसेवकों आदिका इतिहास सुरक्षित रहे इस अभिप्रायसे ही यह कार्य किया जा रहा है अतः अपना परिचय भेजने में आपको आपत्ति नहो होनी चाहिए। यदि आप स्वयं न लिखना चाहे तो हमारे प्रश्नोंका उत्तर जो आपसे अच्छी तरह परिचित हो उससे दिला दें। परन्तु वे टससे मस न हुए और उन्होंने लौकिक कार्य मान कर इसे करने करानेमें अपनी असमर्थता

प्रगट की। फल स्वरूप हम उनका पूरा परिचय देनेमे असमर्थ रहे।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजकी वाणीमे क्या विशेपता है यह बात वर्णीवाणीके पाठक महानुभावोसे छिपी हुई वात नही है। हम उनके प्रवचनों और विविध लेखोंमे जो जादू अनुभव करते हैं वही जादू उनके इन पत्रोंमे दृष्टिगोचर होता है। सभी पत्रोंमे अध्यात्म रस भरा हुआ है। अन्य प्रासंगिक वाते नही के बराबर हैं। इनमे एक ऐसा भी पत्र है जो स्वयं उन्होंने अपने आपको सम्बोधित कर लिखा है। यह पत्र वर्णीवाणीके सम्पादक वि० नरेन्द्रजीने बड़े प्रयत्नसे खोज निकाला है। हम इसे सब पत्रोंकी जान मानते हैं। अन्य पत्रोंमें आपको कदाचित् शिष्टाचारकी गन्धका अनुभव हो सकता है। पर यह पत्र उनकी आत्माका प्रतिविम्ब माना जा सकता है। इसमे स्वय को सम्बोधितकर उन्होंने अपने भीतर वास करनेवाली कमजोरीका भी दिग्दर्शन कराया है। पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें यह सबसे बड़ी विशेपता है कि वे अपनी कमजोरीको दूसरोंके सामने रखनेमें कभी संकोचका अनुभव नहीं करते। उनमे वह कमजोरी है या नहीं है यह बात अलग है। वास्तवमे उनका त्याग सेवा और ज्ञानाराधना उन्हे महान् बनाये हुए है।

सब त्यागियोंके परिचय मैंने स्वयं लिखे हैं। परिचय लिखते समय मैंने अपने अनुभव और मतका रंचमात्र भी उपयोग नहीं किया है। सबके पास कुछ प्रश्न भेजे गये थे—नाम, पिताका नाम, माताका नाम, जाति, निवास स्थान, शिक्षा, त्यागी होनेकी तिथि-सम्वत्, सेवा आदि। इन प्रश्नोंके जो जो उत्तर आये वे ही अपनी भाषामें सकलित कर यहाँ रख दिये गये हैं। हमने सबकी जाति भी लिखी है। इस भागके सपादक श्री नरेन्द्रजीने पत्र लिख कर इस बातका विरोध भी किया था। उनका तर्क था कि

यह जातिवादका जमाना नही है। आप स्वयं इस जातिवादके चक्करसे बाहर हैं फिर भी आप परिचयके साथ जाति दिखलानेमे संकोच नहीं करते यह आश्चर्यकी बात है। इसमे सन्देह नही कि हम इस तर्कके लिये कायल हैं। पर एक तो यह स्थल हमे अपने विचारोको उपयोगमे लानेका नही था। दूसरे जब वर्तमानमे उसका चलन है तब नामके समान उसका उल्लेख करनेमे हमने विशेष हानि नहीं समझी। तथा ऐतिहासिक दृष्टिसे ऐसा करना महत्त्व भी रखता है यही कारण है कि हम प्रत्येक त्यागीके परिचयके साथ उनकी जातिका भी निर्देश करते गये हैं।

प्राय: सब पत्र कालक्रमसे ही दिये गये हैं। बहुतसे पत्रों पर तिथि और सम्वत् न होनेसे कहीं कहीं व्यत्यय हो गया प्रतीत होता है जिसका संशोधन करना सम्पादकके लिए सम्भव भी नहीं था। पूज्य श्री वर्णी जी महाराजके पास बैठते और उन्हे सब पत्र आनुपूर्वीसे दिखलाये जाते तो भी इस दोषका परिमार्जन नही हो सकता था। आशा है इस दोषके लिये पाठक गण क्षमा करेंगे। चि० नरेन्द्रजीने इस कार्यमे जो श्रम किया है उसको यहाँ बतलाना सम्भव नहीं है। उनका पुरुषार्थ था कि यह कार्य इतने उत्तम प्रकारसे बन गया है। इससे आमतौरसे एक नई जागृतिके लिए प्रोत्साहन मिलेगा ऐसी हमे आशा है।

जैन जातिभूषण दानवीर श्रीमान् सिंघई कुन्दनलालजी सागरको कौन नहीं जानता। बुन्देलखण्डकी जनजागृतिमे उनका विशेष हाथ है। शिक्षाप्रचार, तीर्थोद्धार और असमर्थ छात्रोकी सहायता करनेमे उन्होने मुक्तहस्त होकर द्रव्यका सदुपयोग किया है। पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके वे दाहिने हाथ हैं। इस कालमे बुन्देलखण्डमे दानकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन सर्वप्रथम उन्हींके द्वारा मिला है। उनके समान उनकी धर्मपत्नी भी सब धार्मिक कार्योंमे

उनके साथ रहती हैं। सागरका महिलाश्रम उन्हींकी उदारवृत्तिका फल है। जैन समाजपर इस युगल दम्पत्तिका बहुत बड़ा ऋण है। इस भागके साथ हमारी इच्छा श्रीमान् सिंघईजीके साङ्गोपाङ्ग जीवनचरितको प्रकाशित करनेकी थी। इसके लिए श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यको हमने कई बार लिखा भी था। किन्तु उसकी पूर्ति श्रीयुक्त वि० नरेन्द्रजीने की है। उन्होंने उनकी संक्षिप्त जीवनी लिखकर भेजी है और उसे हम इस भागके साथ छाप रहे हैं।

वर्णीवाणीका यह भाग उन्हींकी उदार सहायतासे प्रकाशित हो रहा है। इस कार्यके लिए उन्होंने २१०१) रुपया की सहायता प्रदान करनेकी स्वीकृति दी है। इस द्रव्यसे उनके नामसे आगे भी अन्य धार्मिक ग्रन्थ प्रकाशित होते रहेंगे। इस उदार सहायताके लिए हम ग्रन्थमालाकी ओरसे उनके विशेष आभारी हैं।

इस भागके लिए जियागञ्जकी ओरसे स्व० श्रीमान् ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगतकी मार्फत १००) और हजारीबागकी एक बहिन सौ० श्री हरखीबाई धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालालजी की ओरसे पूज्य माता पतासीबाईकी मार्फत १००) प्राप्त हुए थे। इसके लिए हम उनके भी आभारी हैं। इन रुपयोंकी पुस्तकें उनके पास पहुँचा दी जावेंगी।

फूलचन्द्र सिद्धान्त शा०

———

अपनी बात

पूज्य श्री वर्णीजी महाराज भारतके आध्यात्मिक सन्तोंमेसे एक हैं। हर समाजमे सन्तोकी कमी नही है परन्तु एक समाजके सीमित दायरेसे बाहरके विशाल असाम्प्रदायिक क्षेत्रमें आकर 'सर्वजनहिताय', 'सर्वजनसुखाय' बात निर्भीकतासे करना वर्णी जी जैसे प्रखर आत्मबलशाली महापुरुषके ही वशकी बात है। विरोधकी अग्निकी धधकती भट्टी की परवाह न कर 'हरिजन मन्दिर प्रवेश' के समर्थनमे दिया गया उनका शास्त्रीय एवं राष्ट्रीय निर्णय आज भी आश्चर्यकी बात है।

वर्णीजीने ऐसे अनेकों सुधारोंकी चिनगारियाँ प्रज्वलित की हैं जिन्होने ज्वलन्त ज्वाला बनकर रूढ़ियोंको भस्म कर समाजको सुसंस्कृत बनानेमे सरस्वतीका सहयोग दिया है। बुन्देलखण्ड-मे शिक्षाप्रचारकी सफलता इसका जीता जागता उदाहरण है। जहां गये समाजके सामने कहा, न पहुँच सके तो पत्रों द्वारा प्रेरणा की, उपदेश दिया और समस्याको सुलझा दिया। समाजके निर्णयके लिये उन्होने प्रति परिचितके हृदयको, अन्तस्थलको छुआ, निकट पहुँचे और अपना लिया, अपना बनाकर सन्मार्गमे लगा दिया और जिसका साथ दिया अन्त तक दिया। उसकी सद्गति हो इसके लिये भी उसे अन्तिम समय भी उपदेश पूर्ण पत्र लिखे। इसी पुस्तक मे आप उन्हे पढ़ेंगे और देखेंगे कि वे कितने मर्मस्पर्शी हैं। ऐसे ही पत्रोसे दूसरोंके लाभार्थ उनके पत्रोंके प्रकाशनकी प्रणाली चली। इन्दौरके उदासीन ब्र० मथुरालालजीने ब्र० श्री मौजीलालजीके समाधिलाभार्थ वर्णीजी द्वारा लिखे गये पत्रोंको सर्वप्रथम शान्ति-सिन्धु समाचार पत्रमें प्रकाशित कराया था। इसके पश्चात् ब्र० श्री

दीपचन्दजी वर्णी को उनके समाधिलाभार्थ वर्णीजी द्वारा लिखे गये पत्रोंको प्रकाशित कराया गया। ये पत्र पुस्तकके रूपमें भी प्रकाशित हुए। फिर सभी तरहके वर्णीजीके पत्रोंके प्रकाशन की एक परम्परा चल पड़ी। और अबतक कुल छह पुस्तकोंमें ये प्रकाशित हुए। परन्तु खेद है कि पत्र संग्रहकर्ता महानुभाव न तो सम्पादन कलाविद् थे और न इन पत्रोंका पूर्ण मूल्यांकन कर सकनेका समय ही उनके पास था। फलतः जो जैसे पत्र भेजता गया, प्रेसकी भोज्य सामग्री बनते गये। अनेक लोगोंने अपनी विशेष ख्याति प्रदर्शनके लिये दूसरोंके नाम लिखे गये पत्रोंके शिरनामे बदलकर अपने नाम करके छपवा लिये पर जब इस कलमके सामने आये मूल प्रतिके 'एक्सरे' के समक्ष नकल पार्थिव शरीरकी जाच की गई तुरन्त पता लग गया कि 'ख्याति' के पेटमें कहां 'खता' (फोड़ा) हुआ है ? किस किस तरह की चोरियाँ की गई हैं। पत्रोंकी तोड़ मरोड़ भी कैसी कुशलतासे की गई है और अपनी ख्यातिके लिये जो असंभव और अशोभन था वह भी कैसे कर डाला गया है। अस्तु, अभी तीन वर्षके कठोर परिश्रमसे तैयार किये हुए पूज्य वर्णीजी द्वारा लिखे गये समस्त पत्रोंका संग्रह—जो पत्र प्रकाशित थे पर अनुपलब्ध हो चुके थे उनका तथा अबतक लिखे नवीन प्राचीन अप्रकाशित पत्रोंका जो सन् १९१६ से लेकर अबतक २२ वर्षमें लिखे गये और जिन्हे हम अपने प्रयत्नसे प्राप्त कर सके—ऐसे सभी पत्रोंका सग्रह छह खण्डोंमें किया गया।

१ साधु वर्ग, २ साध्वी वर्ग, ३ धीमन्त वर्ग, ४ श्रीमन्त वर्ग, ५ साधारण वर्ग और ६ विद्यार्थी वर्ग।

प्रस्तुत प्रथम पुस्तकमें साधुवर्ग तथा साध्वीवर्गके पत्रोंका सग्रह किया गया है।

पूज्य आचार्य श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराजके नाम

लिखे गये पत्रोंसे यह पुस्तक प्रारम्भ होती है। साधु साध्वियोका प्रतिमा क्रम से पत्रसग्रहका ध्यान रखा गया है। परन्तु पत्र छपते-छपते तक अनेकोने पदवृद्धि की होगी जो हमे ज्ञात न हो तो क्षमा करें।

पत्रोकी वहुतसी मूल प्रतियाँ ३८ वर्ष पुरानी, वह भी पेन्सिलसे लिखी आपसमे कागजकी घसीटसे इतनी मिट गई थीं कि पढ़ना कठिन था फिर भी मै धन्यवाद दूंगा सागरकी अशोक वाच क० के मालिक, वर्णीजीके अत्यन्त भक्त सेठ कुन्दनलालजीको जिनके घडीके छोटे पुर्जे देखनेवाले दूरवीन यन्त्रसे हम वे पत्र पढ़ सकनेका सक्रिय हल प्राप्त कर सके। एक अच्छे घड़ीसाजकी तरह आँखपर वह काँचका यन्त्र लगाकर मिटे धुंधले पत्र पढ़नेमे जो चित्तकी एकाग्रता प्राप्त होती थी आज स्वप्नसी बन गई है।

श्री मान् पूज्य पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री बनारस जिनकी प्रेरणासे यह पुस्तक प्रकाशमे आ रही है, और श्री धर्मचन्द्रजी B. com, साहित्यरत्न, तथा भाई श्री लक्ष्मणप्रसादजी बी० ए० शास्त्रीका विशेष आभारी हूँ जिन्होंने पत्रोके प्रकाशनमे यथायोग्य सहयोग दिया।

अपनी विदुषी जीवनसगिनी श्रीमती सौ० रमादेवी साहित्यरत्न, न्यायतीर्थको धन्यवाद देनेकी आवश्यकता प्रतीत नही होती जिसने संग्रह कार्य समाप्त होने पर सम्पादनमे अब सक्रिय सहयोग देकर हमारी सच्ची सहायता की है।

पूज्य श्री वर्णीजीके पत्र जन जीवनमें प्रेरणा दायक एवं कल्याण कारक होंगे ऐसी शुभाशाके साथ पूज्य श्री वर्णीजीके चिरायु होने की कामना करता हूँ।

छतरपुर
रक्षावन्धन
वि० सं० २०१४

विनीत

नरेन्द्र

विद्याको अपनी पैतृक सम्पत्ति या धरोहरकी तरह प्राप्त किया। गुरुकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझकर गुरुजीका हुक्का भरनेमें कभी आना-कानी नहीं की। निर्भीकता भी कूट-कूटकर भरी थी, आखिर एक वार तम्बाकूके दुर्गुण गुरुजीको वता दिये, हुक्का फोड़ डाला, गुरुजी प्रसन्न हुए, हुक्का पीना छोड़ दिया।

वचपनकी लहर थी, विवेक परायणता साथ थी, जैन मन्दिरके चबूतरे पर शास्त्रप्रवचनसे प्रभावित होकर विद्यार्थी गणेशीलालने भी रात्रि भोजन त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। यही वह प्रतिज्ञा थी, यही वह त्याग था, जिसने १० वर्षकी अवस्थामे (वि० सं० १९४८ मे) विद्यार्थी गणेशीलालको सनातनधर्मासे जैनी वना दिया।

इच्छा तो न थी परन्तु कुलपद्धतिकी विवशता थी अत (सं० १९४२) १२ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत सस्कार हो गया। विद्यार्थीजीने (स० १९४६) १५ वर्षकी आयुमे उत्तम श्रेणीसे हिन्दी मिडिल तो उत्तीर्ण कर लिया परन्तु दो भाइयोंका असामयिक स्वर्गवास और साधनोका अभाव आगामी अध्ययनमें वाधक हो गया।

गृहस्थ जीवन—

वाल-जीवनके वाद युवक जीवन प्रारम्भ हुआ, विद्यार्थी जीवनके वाद गृहस्थ जीवनमें पदार्पण किया। (सं० १९४९) १८ वर्षकी आयुमें मलहरा ग्रामकी एक सत्कुलीन कन्या इनकी जीवनसगिनी वनी।

विवाहके वाद ही पिताजीका सदाके लिये साथ छूट गया। लेकिन पिताजीका अन्तिम उपदेश—"वेटा! जीवनमें यदि सुख

चाहते हो तो पवित्र जैनधर्मको न भूलना" सदाके लिए साथ रह
गया। परिजन दुःखी थे, आत्मा विकल थी, परन्तु गृह भारका
प्रश्न सामने था, अतः (सं० १९४९) मदनपुर, कारीटोरन और
जतारा आदि स्कूलोमे मास्टरी की।

पढ़ना और पढ़ाना इनके जीवनका लक्ष्य हो चुका था,
अगाध ज्ञानसागरकी थाह लेना चाहते थे, अतः मास्टरीको छोड़
पुनः प्रच्छन्न विद्यार्थीके वेषमे, यत्र-तत्र-सर्वत्र साधनोकी
साधना मे, ज्ञान जल कणोकी खोज मे, नीर पिपासु चातककी तरह
चल पड़े।

सं० १९५० के दिन थे, सौभाग्य साथ था, अतः सिमरामे एक
भद्र महिला विदुषीरत्न श्री सि० चिरोंजाबाई जी से भेंट हो
गयी। देखते ही उनके स्तनसे दुग्धधारा बह निकली, भवान्तर
का मातृ-प्रेम उमड़ पड़ा। बाईजीने स्पष्ट शब्दोमे कहा—"भैया!
चिन्ता करनेकी आवश्यकता नही। तुम हमारे धर्मपुत्र हुए।"
पुलकित वदन, हृदय नाच उठा, बचपनमे माँ की गोदीका भूला
हुआ स्वर्गीय सुख अनायास प्राप्त हो गया। एक दरिद्रका
चिन्तामणि रत्न निरुपायको उपाय और असहायको सहारा
मिल गया।

सहनशीलताके प्राङ्गण में—

बाईजी स्वयं शिक्षित थी, मातृधर्म और कर्तव्य-पालन उन्हें
याद था, अतः प्रेरणा की—"भैया। जयपुर जाकर पढ़ो।" मातृ-
आज्ञा शिरोधार्य की।

(१) जयपुरके लिये प्रस्थान किया, परन्तु जब जयपुर जाते
समय लश्करकी धर्मशालामें सारा सामान चोरी चला गया केवल
पॉच आने शेष रह गये तब छः आनेमें छतरी बेच कर एक-एक
पैसेके चने चबाते हुए दिन काटते बरुआसागर आये। एक दिन

रोटी बनाकर खानेका विचार किया, परन्तु बर्तन एक भी पास न था, अतः पत्थर पर आटा गूँथा और कच्ची रोटीमें भीगी दाल बन्द कर ऊपरसे पलासके पत्ते लपेट कर इसे मध्यम आँचमें तोप कर जब दाल तैयार हुई तब कहीं भोजन पा सके, परन्तु अपने अशुभोदय पर उन्हें दु:ख नहीं हुआ। आपत्तियोंको उन्होंने अपनी परख कसौटी समझा।

(२) खुरई जब पहुँचे तब पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरसे पूछा—"पंडितजी! धर्मका मर्म बताइये।" उन्होंने सहसा झिड़क कर कहा—"तुम क्या धर्म समझोगे, खाने और मौज उड़ानेको जैन हुए हो।" इस वचन-बाणको भी इन्होंने हँसते-हँसते सहा। हृदयकी इसी चोट को इन्होंने भविष्यमें अपने लक्ष्य-साधन (विद्वद्रत्न बनने) में प्रधान कारण बनाया।

(३) गिरनारके मार्ग पर बढ़े जा रहे थे, बुखार, तिजारी और खाजने खबर ली, पासके पैसे खत्म हो चुके थे, विवश होकर बैतूलकी सड़क पर काम करनेवाले मजदूरोंमें सम्मिलत हुए। एक टोकरी मिट्टी खोदी कि हाथोंमें छाले पड़ गये। मिट्टी खोदनी छोड़ कर मिट्टीकी टोकरी ढोना स्वीकार किया लेकिन वह भी न कर सके, इसलिये दिनभरकी मजदूरीके न तीन आने मिल सके, न नौ पैसे ही नसीब हो सके। कृश शरीर २० मील पैदल चलते, दो पैसेका बाजरेका आटा लेते, दाल देखनेको भी न थी, केवल नमककी डली और दो घूँट पानी ही उन मोटी-मोटी रूखी-सूखी रोटियोंके साथ मिलता था फिर भी सन्तोषकी श्वाँस लेते अपने पथ पर आगे बढ़े।

(४) धर्मपत्नीके वियोगमें दुनिया दु:खी और पागल हो जाती है, परन्तु भरी जवानीमें भी इनकी धर्मपत्नीका (सं० १९५३) में स्वर्गवास हो जानेसे इन्हें जरा भी खेद नहीं हुआ।

(५) सामाजिक क्षेत्रमे भी लोगोंने इन पर अनेक आपत्तियाँ ढाह कर इनकी परीक्षा की, परन्तु वे निश्चल रहे, अडिग रहे, कर्तव्यपथ पर सदा दृढ़ रहे, विद्रोहियोंको परास्त होना पड़ा।

इनका सिद्धान्त है—"मूर्ति अगणित टॉकियोसे टॉके जाने पर पूज्य होती है, आपत्ति और जीवन-संघर्षोंसे टक्कर लेने पर ही मनुष्य महात्मा बनते है।" इसलिये इन सब आपत्तियों और विरोधोंको अपना उन्नति-साधक समझ कर कभी क्षुब्ध नहीं हुए, सदा अपनी सहशनीलताका परिचय दिया।

सफलताके साथी—

कर्त्तव्यशील व्यक्ति कभी अपने जीवनमे असफल नही होते, अनेक आपत्तियों और कष्टोंको सहन कर भी वे अपने लक्ष्यको सफल कर ही विश्रान्ति लेते हैं। माताकी आज्ञा और शुभाशीर्वादने इन्हे दूसरे साथीका काम दिया। फलतः विद्योपार्जनके लिए सं० १९५२ से स० १९८४ तक १—बम्बई, २—जयपुर, ३—मथुरा, ४—खुरजा, ५—हरिपुर, ६—बनारस, ७—चकौती, ८—नवद्वीप, ९—कलकत्ता तथा पुनः बनारस जाकर न्यायाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। विशेषता यह रही कि सदा उत्तम श्रेणीमे प्रथम (First class first) उत्तीर्ण हुए। और जहाँ कहीं भी पारितोषिक वितरण हुआ, सर्व प्रथम पारितोषिकके अधिकारी भी यही हुए।

इस तरह क्रमशः बढ़ते-बढ़ते अब यह साधारण विद्यार्थी या पण्डित नहीं अपितु अपनी शानी के निराले विद्वद् शिरोमणि हुए। कवि कल्पना साकार हो उठी—

जीवन आनन्द निकेतनमें, सज्ज्ञान दीपका उजयाला।
मधुकुञ्ज देव वाणीको देख, डाली है सरस्वतीने माला॥

बड़े पण्डितजी—

विद्वत्तामें तो बड़े हैं ही परन्तु संयमकी साधनाने तो इन्हें और भी बड़ा (पूज्य) बना दिया। इसलिये जिस तरह गुजरातके लोगोंने गांधीजीको बापू कहना पसन्द किया, इसी तरह बुन्देलखण्डके जनसाधारणसे लेकर पण्डितगणने इन्हें बड़े पण्डितजीके नामसे पूजना पसन्द किया।

इन्हें जितना प्रेम विद्यासे था उससे कहीं अधिक भगवद्भक्तिसे रहा है। यही कारण था कि बड़े पण्डितजीने अपने विद्यार्थी जीवनमें ही सं० १६५२ में गिरनारजी और सं० १६५६ में श्री सम्मेदशिखरजी जैसे पवित्र तीर्थराजों के दर्शन कर अपनी भावुकभक्तिको दूसरोंके लिये आदर्श और अपने लिये कल्याणका एक सन्मार्ग बनाया।

वर्णीजी—

क्रमसे किया गया अभ्यास सफलताका साधक होता है। यही कारण था कि बड़े पण्डितजी क्रमसे बढ़ते-बढ़ते स० १६७० में वर्णी हो गये। सांसारिक विषम परिस्थितियोंका गम्भीर अध्ययन करनेके बाद इन्हें सभीसे सम्बन्ध तोड़नेकी प्रबल इच्छा हुई और इसमें वे सफल भी हुए। यदि ममत्व था तो उन धर्ममाता तक ही था, परन्तु स० १६६३ में बाईजीका स्वर्गवास हो जानेसे वह भी छूट गया।

परतन्त्रता तो सदा इन्हें खटकनेवाली बात थी। एक बार सं० १६६३ में जब सागरसे द्रोणगिरि जा रहे थे तब बण्डामें ड्राइवरने इन्हें फ्रन्टसीटका टिकट होने पर भी वह सीट दरोगा साहबको बैठने के लिये छोड़ देने को कहा। यह परतन्त्रता इन्हें सह्य नहीं हुई, वहीं पर मोटर की सवारी का त्याग कर दिया।

कुछ लोगो ने अपने यहां ही महराजको रोक रखने के लिये सम्मति दी कि यदि आप यातायात छोड़ दें तो शान्ति लाभ हो सकता है परन्तु वर्णी जी पर इसका दूसरा ही प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने दूसरे ही उद्देश्य से सदा के लिये रेलगाड़ीकी सवारीका भी त्याग कर दिया।

सं० २००१ मे दशम प्रतिमा धारण की, और फाल्गुन कृष्ण सप्तमी सं० २००४ मे क्षुल्लक व्रत लिये। इस दृष्टिसे इन्हें, बाबाजी कहना ही उपयुक्त है परन्तु लोगोकी अभिरुचि और प्रसिद्धिके कारण "वर्णीजी" ही कहलाते हैं और कहलाते रहेगे।

विहारके संत—

गिरिराज शिखरजीकी यात्राकी इच्छासे पैदल चले। लोगोने बहुत कुछ दलीलें उपस्थित कीं—"महाराज! वृद्धावस्था है, शरीर कमजोर है, ऋतु प्रतिकूल है", परन्तु हृदयकी लगन को कोई बदल न सका, अतः सवारीका त्याग होते हुए भी रेशंदीगिरि, द्रोणागिरि, खजुराहा आदि तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए कुछ ही दिन बाद ७०० मीलका लम्बा मार्ग पैदल ही तय कर सं० १९९३ के फाल्गुणमे शिखरजी पहुॅच गये। शिखरजीकी यात्रा हुई परन्तु मनोकामना शेष थी—"भगवान् पार्श्वनाथके पादपद्मोमे ही जीवन बिताया जाय" अतः ईशरीमे सन्त जीवन बिताने लगे।

आपके प्रभावसे वहॉ जैन उदासीनाश्रमकी स्थापना हो गई। कल्याणार्थ उदासीन जनोंको धर्मसाधन करनेका सुयोग्य सधान मिला, वर्णीजीके उपदेशामृत पानका शुभावसर मिला।

बुन्देलखण्ड के लाल—

वर्णीजीने बुन्देलखण्ड छोड़ा परन्तु उसके प्रति सच्ची सहानु-

भूमि नहीं छोड़ी, क्योंकि बुन्देलखण्ड पर उनका जितना स्नेह और अधिकार है उतना ही बुन्देलखण्ड को भी उन पर गर्व है। बुन्देलखण्डकी उन्हे पुनः चिन्ता हुई। बुन्देलखण्डको उनकी आवश्यकता हुई, क्योंकि वर्णी सूर्य के सिवा किसी और कोई शक्ति नहीं थी जो अज्ञान तिमिराच्छन्न बुन्देलखण्डको अपनी दिव्य ज्योतिसे चमत्कृत कर सकती। बुन्देलखण्डकी भूमिने अपने लाड़ले लालको पुकारा और वह चल पड़ा अपनी मातृ-भूमिकी ओर, अपने देश की ओर अपने सर्वस्व बुन्देलखण्ड की ओर। विहार प्रान्तीय उनके भक्तजनोको दुःख हुआ. वे नहीं चाहते थे कि वर्णीजी उन लोगोंकी आँखोंसे ओझल हो अतः अनेक प्रार्थनाएँ कीं वहीं रुक रहनेके लिये. अनेक प्रयत्न किये परन्तु प्रान्तके प्रति सच्ची शुभचिन्तकता और बुन्देलखण्डका सौभाग्य वर्णीजी को सं० २००१ के वसन्तमें बुन्देलखण्ड ले आया। अभूतपूर्व था वह दृश्य, जब वृद्ध बुन्देलखण्डने अपने डगमगाते हाथों (लहलहाती तरुशाखाओं) से अपने लाड़ले लाल वर्णीजीका स्पर्श किया।

मौन देशभक्त वर्णीजी—

वर्णीजी जैसे धार्मिक हैं वैसे ही राष्ट्रीय भी हैं, इसलिये देश सेवाको ये मानव धर्म कहते हैं। स्वयं देश सेवा तन-मन-धनसे करके ही लोगोंको उस पथ पर चलनेकी प्रेरणा करते हैं। यह इनकी एक बड़ी भारी विशेषता है।

(१) सन् १९४५(सं० २००२) जब नेताजी के पथानुगामी, आजाद-हिन्द सेनाके सेनानी, स्वतंत्रताके पुजारी, देशभक्त सहगल, ढिल्लन, शाहनवाज अपने साथी आजाद-हिन्द सेना के साथ दिल्लीके लाल किलेमें बन्द थे तब इन बन्दी वीरोंकी

सहायतार्थ जबलपुरकी भरी आम सभामे भाषण देते हुए अपनी कुल सम्पत्ति मात्र ओढ़ने की दो चादरो मे से एक चादर समर्पित की। देशभक्त वर्णी जी की चादर तीन मिनिटमे ही तीन हज़ार रुपये मे नीलाम हुई।

चादर समर्पित करते हुए वर्णीजीने अपने प्रभाविक भाषण मे आत्मविश्वासके साथ भविष्यवाणी की—"अन्धेर नहीं, केवल थोड़ी-सी देर है। वे दिन नजदीक हैं जब स्वतन्त्र भारत के लाल किले पर विश्व विजयी प्यारा तिरगा फहराया जायगा, अतीतके गौरव और यशके आलोकसे लाल किला जगमगा उठेगा। जिनकी रक्षाके लिए ४० करोड़ मानव प्रयत्नशील हैं उन्हे कोई भी शक्ति फॉसीके तख्ते पर नही चढ़ा सकती। विश्वास रखिए, मेरी अन्तरात्मा कहती है कि आजाद हिन्द सैनिको का बाल भी बांका नही हो सकता।"

आखिर पवित्र हृदय वर्णी सन्तकी भविष्य वाणी थी, आज़ाद हिन्द सेनाके बन्दी वीर मुक्त हो गये। सचमुच अन्धेर नहीं केवल दो वर्षकी देर हुई, सन् १९४७ के १५ अगस्तको भारत स्वतंत्र हो गया। वह लालकिला अतीतके गौरव और यशके आलोकसे जगमगा उठा। लाल किले पर विश्वविजयी प्यारा तिरंगा भी फहरा गया।

दिल्लीमे जाकर देखो तो यही प्रतीत होगा जैसे लाल किले का तिरगा देशद्रोही दुश्मनोंको तर्जना दे रहा हो और यमुना का कल-कल निनाद हमारे नेताओंकी विजय-प्रशस्ति गा रहा हो।

(२) संगठनके लिए वर्णी जी प्राणपनसे प्रयत्नशील रहते हैं। उनका कहना है कि "आजका समाज अनेक कारणोंसे फूटका शिकार बना हुआ है। यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। वर्गगत,

जातिगत, दलगत एवं व्यक्तिगत ऐसे अनेक कारण एकत्र हुए हैं जिनके कारण संगठनकी नीव बहुत कच्ची हो चुकी है।" आवश्यकता इस बातकी है कि हृदयकी ग्रन्थिको भेद कर क्षमा गुणको धारण करें, परस्परके विद्वेषवृक्षको निर्मूल कर सगठनका बीज वपन करें। इससे समाज सुधारका बहुत काम हो सकता है।" वर्णी जी के इन पवित्र उद्‌गारोंकी सक्रियताके फलस्वरूप अनेक जगहकी जन्मजात फूट और विद्वेष शान्त होकर समाजका संगठन हुआ है।

(३) शरणार्थी समस्या अब भी देशकी बड़ी विकट समस्या है। उसके हल होनेका उपाय उन्होंने समाजके उदार सहयोग में देखा और कुशल गणितज्ञकी दृष्टिसे सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए कहा कि—"इस समय भारतवर्षमें अनेक आपत्तियां आ रही हैं। जिधर देखो उधर सहयोगकी आवश्यकता है। मेरी तो यह सम्मति है कि प्रत्येक कुटुम्ब उसके यहां जो दैनिक व्यय भोजन वस्त्रादिमें होता हो उसमें से १) रु० मे एक पैसा इस परोपकारमें प्रदान करे तो अनायास ही यह समस्या हल हो सकती है। अन्यकी बात छोड़ो यदि हमारे जैनी भाई प्रत्येक मनुष्यके पीछे ½ पैसा दान निकालें तो अनायास ही ७००,००० पैसे एक दिन में आ सकते हैं। याने एक वर्ष में ३९.३७,५००) आसानी से परोपकार में लग सकता है।" ता० ११ सितम्बर को जवाहरलाल हाल गया मे आयोजित विनोबा जयन्ती उत्सवमे भी भाषण देते हुए उन्होंने इसी तथ्य पर जोर दिया था।

(४) औद्योगिक धन्धे और खादीके विषयमें इनके विचार और कार्य एकसे रहे हैं। उनके ही शब्दों में स्पष्ट है कि—"राष्ट्रीयता स्वतन्त्र नागरिकमें तब तक नहीं आ सकती

है जब तक कि वह स्वदेश और स्वदेशी वस्तुओंसे प्रेम नही करता। घरेलू उद्योग धन्धो को प्रोत्साहन नहीं देता। यन्त्रो द्वारा लाखो मन कपास और मिलो द्वारा लाखो थान कपड़ा एक दिन मे बन जाता है। फल यह होता है कि करोड़ो मनुष्य और हजारो दूकानदार आजिविका के बिना मारे-मारे फिरते हैं। कपड़ेके मिलोमे हजारो मन चर्बी लगती है! ये चर्बी क्या वृक्षों से आती है? नहीं, कसाईखानोसे! चमड़ा कितना लगता है इसका पारावार नही। पतलेसे पतला जोड़ा चाहिए, चाहे उसमे अण्डेका पालिस क्यो न हो। अत. यदि देशका कल्याण करनेकी भावना है तो प्रतिज्ञा करो कि हम स्वदेशी वस्त्रादिका ही उपयोग करेंगे।" वर्णीजी स्वयं खद्दर पहिनते हैं, स्वदेशी वस्तुओ का ही उपयोग करते हैं।

(५) जब भी धर्म सम्बन्धी समस्याएँ आई, वर्णी जी ने धर्मकी उदारताकी ही बात की है। उनका कहना है कि—"राजा रङ्क, धनी-गरीब, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु, ब्राह्मण या भङ्गी कोई भी क्यों न हो पेड़ अपनी छाया मे सभीको बैठने देते हैं, फूल अपनी सुगन्धि सभीको देते हैं, सूर्य अपना प्रकाश चन्द्र अपनी चाँदनी सभीको देते है तब तुम्हे भी आवश्यक है कि अपने धर्मको सभीको दो। बिना किसी वर्गभेदके, बिना किसी वर्णभेदके और बिना किसी जातिभेदके यदि तुमने यह काम कर लिया तो समझो कि तुमने अपने धर्म का सच्चा स्वरूप समझ लिया है।" केवल उत्तम कुलमे जन्म लेने से ही व्यक्ति उत्तम हो जाता है ऐसा कहना दुराग्रह है। उत्तम कुलकी महिमा सदाचारसे ही है कदाचारसे नहीं।" परमार्थ दृष्टिसे विचार किया जावे तब पाप करनेसे आत्मा पापी और अस्पृश्य नही होता।" हम लोगोंने पशुओं तकसे तो प्रेम किया,

कुत्ते अपनाये, बिल्लियां अपनायीं किन्तु इन मनुष्योंसे इतनी घृणा की जिसका वर्णन करना हृदयमें अन्तर्व्यथा उत्पन्न करता है!"

(६) स्त्रियोंकी समस्याओं पर जितना खुल कर विचार वर्णी जी ने किया है आजतक किसी भी जैन सन्तने नहीं किया। स्त्री पर्यायकी दयनीय दशाका एक शब्द-चित्र देखिये—'स्त्री पर्यायके अनुसार यदि कन्या हुई तो कहना ही क्या है? उसके दु:खोंको पूछनेवाला ही कौन है? जन्म समय 'कन्या' सुनते ही माँ-बाप और कुटुम्बीजन अपने ऊपर सजीव ऋण समझने लगते हैं। युवावस्था होने पर जिसके हाथ माता पिता सौंप दें, गायकी तरह चला जाना पड़ता है। कन्या सुन्दर हो वर कुरूप हो, कन्या सुशील और शिक्षित हो वर दु:शील और अशिक्षित हो, कन्या धन सम्पन्न और वर गरीब हो, कोई भी इस विषमता पर पूर्ण ध्यान नहीं देता। लड़कीको घरका कूड़ा कचड़ा समझ कर जितना शीघ्र हो सके घरसे बाहर करनेकी सोचता है। कैसा अन्याय है?" सचमुच यह ऐसा अन्याय है जिसकी कोई शानी नहीं है। इस अन्यायको दूर करने के लिये अपने घरको स्वर्ग बनानेके लिये भी वर्णी जी ने अपनी शुभ सम्मति दी है—' हमारा कर्त्तव्य है कि स्त्रियोंकी हर तरहकी उलझी हुई समस्याओंको सुलझानेमें सहयोग दें जिससे वे अपने सदाचार और स्वाभिमानको सुरक्षित रखती हुई आदर्श बन सकें। सीता, मैना सुन्दरी, कौशिल्या और त्रिशला स्त्रियाँ ही तो थीं, उनके आदर्शोंसे आज विश्वमें भारतका मस्तक उन्नत है। अपनी बेटियों, बहिनों और माताओंके सामने ऐसे ही आदर्श रखिये तब अपने घरको स्वर्ग देखनेकी कामना कीजिये।'

(७) निर्धन किसान, गरीब मजदूर और अध्यापकोंकी

सहायावस्था सभी समस्याऍं इनके सामने रही हैं। किसान मजदूरों की समस्याके हलके लिये विनोबा जी के भूमिदान यज्ञका समर्थन किया है। स्वयं विनोबा जी के शब्दोंमे—"भूदान यज्ञके सिलसिलेमें मै ललितपुरमे वर्णी जी से मिला था। भू-दान यज्ञकी सफलताके लिए सहानुभूति प्रगट करते हुए उन्होने कहा था कि ऐसे सन्तको छोटेसे कार्यको घूमना पड़े यह दुःखकी बात है।" यही बात गयामे विनोबा जयन्ती उत्सवमे भाषण देते हुए उन्होने कही थी कि "भूमि किसीके दादाकी नहीं है, उसे जल्दी से जल्दी दे डालो, आवश्यकतासे अधिक जो दबाये बैठे हो दूसरोंको उसका लाभ लेने दो। विनोबा जी को इस भूमिदानसे निःशल्य करो, उनसे मोक्ष का उपदेश लो।" अध्यापकोंकी सहायताके लिये सागरमे एक चादर समर्पित की जिसकी नीलामसे आया रुपया असहाय अध्यापकोको मिला। यही सब वर्णी जी के सक्रिय कार्य हैं जिनसे ललितपुरमें प्रभावित होकर ७९ वीं वर्णी जयन्ती सप्ताह का उद्घाटन भाषण देते हुए ता० ३ सितम्बर को पूज्य विनोबा जी ने काशीमें कहा था कि—"हम एक ऐसे महापुरुष की जयन्ती मनाने के लिए एकत्रित हुए है जिन्होंने समाज सेवा का कार्य किया है। वर्णी जी ने जो कार्य किया है वह बहुत अच्छा है। वे ज्ञान प्रचार चाहते हैं। जनतामे ज्ञान प्रचार हो जाने पर अन्य अच्छी बातें स्वयं आ जाती हैं। मूल सिञ्चन करनेसे शाखाओं तक पानी स्वय ही पहुँच जाता है। वर्णी जी एक निष्काम जनसेवक हैं और उनके विचार सुलझे हुए हैं। सब धर्मोंको वे समान दृष्टिसे देखते हैं और लोगो की सेवामें ही सबका पर्यवसान समझते हैं। ऐसे अनुभवियोंके विचारों का जितना परिशीलन जनताको होगा, कल्याणदायी होगा।" वर्णी जी की मौन देशभक्तिसे प्रभावित हुए विनोबा जी की

सोते हुए बुन्देलखण्डके कानों मे शिक्षा एवं जाग्रति का मन्त्र फूकनेवाले और बुन्देलखण्ड के सद्गृहस्थोचित आचार-विचार के संरक्षक यदि कोइ हैं तो वे एकमात्र वर्णी जी ही हैं।

साहित्य उद्धारक—

'मेरे मन में निरंतर यह भावना बहुत कालसे रहती है कि प्राचीन जैन साहित्यका सग्रह किया जावे। उसके लिए ४ विद्वानों को रखा जावे, इनको नि.शल्य कर दिया जावे—कोई चिन्ता उन्हें न रहे। वर्तमान में इन्हे २५०) मासिक कुटुम्ब व्यय को दिया जावे तथा इनके भोजनकी व्यवस्था पृथक् हो। वे दिन में स्वेच्छापूर्वक कार्य करें। रात्रिमें आपसमे जो कार्य दिनमें करें उसपर ऊहापोह करें। यह कार्य १० वर्ष तक निर्वाध चले। इसके बाद प्रत्येक विद्वानों को १०,०००) १०००) रुपये दिये जावें। अथवा १ वर्ष २ वर्ष आदि तक यदि कार्य करके पृथक् होवें तब इतने ही हजार रुपये दिये जावें।

इसके बाद जो वे चाहें तब फिर वे अन्य विद्वानों को यह कला सिखला देवें। व्यवस्था जैसी बन जावे समय बतावेगा। इसमें खर्च के लिये ४०,०००) तो ४ विद्वानों को अन्त से देना तथा १०००) मासिक भेंट, २५०) भोजन व्यय व २५०) लेखक आदि के लिए इस तरह कुल १५००) एक माह का दश वर्ष का २२०००)। इतने से यह प्राचीन जैन सहित्य का उद्धारका कार्य हो सकता है। यदि सागर प्रान्त यह चाहता तो सहज में हो सकता था. कोई कठिन बात न थी। वहाँ ऐसे कई महानुभाव हैं कि एक वर्ष मे ही यह योजना सफल हो जाती। परन्तु हम स्वय इतने कायर रहे कि अपने अभिप्रायको पूर्ण न कर सके। अब पश्चात्ताप से क्या लाभ ?

"अब तो वृद्ध हो गये—चलने मे असमर्थ, बोलनेमें असमर्थ, लिखनेमे असमर्थ पर यह सब होने पर भी भावना वही है जो पूर्वमे थी। अब तो पार्श्व प्रभु के पाद पद्मोमे आ गये हैं, क्या होगी वही जानें? यदि किसीके मनमे आवे तो इस कार्य को बनारस ही में प्रारम्भ करें। अब जन्मान्तर मे इस योजना को सफल देखूँगा, भाव मेरा था सो व्यक्त कर दिया।"

पूज्य वर्णी जीके हृदयमें लगी जैन साहित्य के उद्धार की प्रशस्त योजना के सक्रिय होने से जैन समाज को वह ज्योति स्तम्भ प्राप्त होगा जिसके दिव्य प्रकाशमे जन आत्म-निरीक्षण कर अपना कल्याण कर सकेंगे।

मानवता की मूर्ति—

वर्णी जी के जीवनमे सरलता और भावुकताने जो स्थान पाया है वह शायद ही औरों मे देखने को मिले। किसीके हृदय को दुःख पहुँचाना उनकी प्रकृतिके प्रतिकूल है। यही कारण है कि अनेक व्यक्ति उन्हे आसानीसे ठग लेते हैं। कड़े शब्दों और व्यंगात्मक भाषाका प्रयोग कर दूसरोको कष्ट पहुँचाना उन्होंने कभी नही सीखा। हितकी बात आसानीसे मधुर शब्दमय सरल भाषामें कह कर मानना न मानना उसके ऊपर छोड़कर अपने समयका सच्चा सदुपयोग ही उन्हें प्रिय है।

आपत्तियोंसे टक्कर लेना, विपत्तिमे धर्म न छोड़ना, दूसरोका दुःख दूर करनेके लिए असहायोको सहायता, अज्ञानियोंको ज्ञान और शिक्षार्थियोंको सब कुछ देना इनके जीवनका व्रत है।

दाव-पेंचकी बातोंमें जहाँ वर्णी जी मे बालकों जैसा भोलापन है वहाँ सुधार कार्योंमे युवकों जैसी सजीव क्रान्ति और वयोवृद्धों

जैसा अनुभव भी है। संक्षेपमें वर्णीजी मानवताकी मूर्ति हैं, अतः उन्हींका सन्देश देना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा है।

आज ऐसे महामना सन्त की ८२ वीं जयन्ती मनाने का सौभाग्य विहार प्रान्त की उदारचेता जैन समाज को प्राप्त हुआ है इसमें मैं उसके सातिशय पुण्य को ही कारण मानता हूँ।

मेरी अन्तरात्माकी पुकार है कि श्री वर्णी जी चिरायु हों, मानवताका सन्देश लिये कल्याण पथ प्रदर्शन करते रहे।

पूज्य वर्णी जी की जय।

विनीत—

विद्यार्थी नरेन्द्र

जैन जातिभूषण श्री सिंघई कुन्दनलालजी

[सिघई कुन्दनलाल जी सागरके सर्वश्रेष्ठ सहृदय व्यक्ति हैं। आपका हृदय दयासे सदा परिपूर्ण रहता है। जब तक आप सामने आये हुए दुःखी मनुष्यको शक्त्यनुसार कुछ दे न लें तब तक आपको सन्तोष नहीं होता। न जाने आपने कितने दुःखी परिवारों को धन देकर, अन्न देकर, वस्त्र देकर, और पूँजी देकर सुखी बनाया है। आप कितने ही अनाथ छोटे-छोटे बालकों को जहाँ कहींसे ले आते हैं और अपने खर्चसे पाठशालामे पढ़ा-कर उन्हें सिलसिलेसे लगा देते हैं। आप प्रति दिन पूजन स्वाध्याय करते हैं, अतिशय भद्रपरिणामी है, प्रारम्भसे ही पाठशालाके सभापति होते आ रहे है और आपका वरद हस्त सदा पाठशालाके ऊपर रहता है]

"पूज्य श्री वर्णी जी"

भारतके महामना आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराजने अपनी जीवनगाथा (पृ० ३४८) मे सागरके नररत्न जैन जातिभूषण श्री सिघई कुन्दनलालजीका जो परिचय दिया है उसकी चार पक्तियाँ प्रारम्भमे उल्लेखकर सिंघईजीका एक दिव्य और भव्य चित्र हमने पाठकोके समक्ष प्रस्तुत किया है। पाठकोकी जिज्ञासा बढ़ना स्वाभाविक है, अतः विस्तृत जानकारी भी आगे दे रहा हूँ।

जन्म समय और सम्वत्

यह बता देना आवश्यक है कि पूज्य श्री वर्णीजी सिंघईजीसे वड़े भैया कहते हैं। इसका कारण केवल यही है कि वर्णीजीसे सिंघई जी ३ वर्ष वडे हैं। वर्णीजीने उस समयका उल्लेख करते हुए लिखा है—"वह समय ही ऐसा था जो आजकी अपेक्षा बहुत ही अल्प द्रव्यसे कुटुम्बका भरण पोषण हो जाता था। उस समय एक रुपयामे एक मनसे अधिक गेहूँ तीन सेर घी और आठ सेर तिलका तैल मिलता था। शेष वस्तुएँ इसी अनुपातसे मिलती थीं। सब लोग कपड़ा प्रायः घरके सूतका पहिनते थे। सबके घर चरखा चलता था। खानेके लिए घी दूध भरपूर मिलता था। जैसा कि आज कल देखा जाता है उस समय क्षय रोगियोंका अभाव था। उस समय मनुष्योंके शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ होते थे। वे अत्यन्त सरल प्रकृतिके होते थे। अनाचार नहीं के बराबर था। घर-घर गाय रहती थीं। दूध और दहीकी नदियाँ बहती थी। देहातमें दूध और दहीकी बिक्री नहीं होती थी। तीर्थयात्रा सब पैदल करते थे। लोग प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे। वर्षा कालमे लोग प्रायः घर ही रहते थे। वे इतने दिनोंका सामान अपने अपने घर ही रख लेते थे। व्यापारी लोग बैलोंका लादना बन्द कर देते थे। यह समय ही ऐसा था जो इस समय सबको आश्चर्यमें डाल देता है।"

हाँ, तो इसी सुख-समृद्धि और शान्तिके समय विक्रम सं० १९२८ के ज्येष्ठ कृष्णा ९ शनिवारको श्री सिंघईजीका जन्म हुआ। आपके पिता श्री सिंघई कारेलालजी और माता श्री सिंघैन उद्योतीबाईजी सागरके जैन गृहस्थ परिवारोंमें साधारण परिस्थिति के होते हुए भी अपनी धार्मिकता, सच्चरित्रता एवं परोपकारी प्रवृत्तिके कारण आदर्श गृहस्थ माने जाते थे।
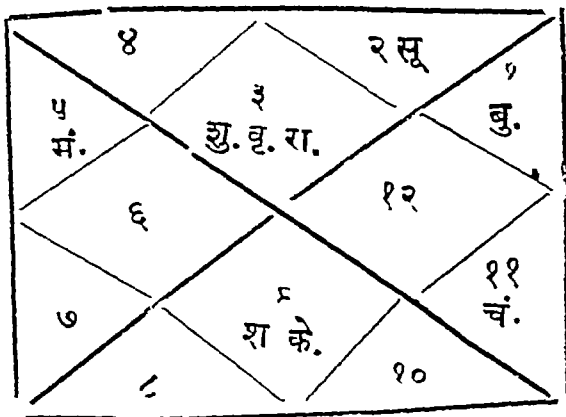
सिघईजीका यह जन्मकुण्डलीचक्र उनके समस्त जीवनके सुख-दु:खकी मूक कहानीका बोलता हुआ चित्र है। इसका स्पष्ट कथन बहुतोंका खटक सकता है, अतः ज्योतिषियोंके लिए ही इसे छोड़ता हूँ। कहनेका तात्पर्य यह कि सिंघईजीके जीवनमे अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे उनके बहुतसे सम्बन्धियोंको उनका स्पष्ट होना रुचिकर न होगा। अत: हम केवल यही कहना चाहते हैं कि उन सब आपत्तियों विपत्तियोंके सागरको पार करता हुआ सागरका यह मनस्वी मानव मानवताके हृदय-सागरके बीच टापूपर जा पहुँचा जहाँसे उसने आपत्तियोंके भ्रममे फँसनेवाले अनेक लोगोंको हस्तावलम्बन देकर सुखके मार्ग पर पहुँचाया।

सिंघईजी अपने ५ छोटे भाइयो और १ बहिनके बीच सबसे बड़े थे।

अपनी रामकहानी

ता० २० जौलाई ५७, आकाश मेघाछन्न थे, बादलोंकी गड़गड़ाहट, पानी जोरोंसे आ गया। सिंघईजी अपने विश्रान्तिगृहमें आग तापते बैठे थे। उनकी स्पष्ट मधुर वाणीमे णमोकार मन्त्र सुनाई

पड़ रहा था। सागरमें जोरोंसे पड़नेवाले इन्फ्लुएन्जा तथा हैजेसे मरनेवालोंकी करुण कथा सुनकर वे प्रार्थना कर रहे थे। पंक्तियोंका लेखक यह न बताकर कि जीवनी प्रकाशित करना है अन्यथा वे कभी न बताते, अतः साधारण जिज्ञासा सूचक प्रश्न किए और इनके स्वर्गीय इकलौते पुत्रकी अस्वस्थताकी करुण कहानीवाला प्रसङ्ग छेड़ा कि ऐसे ही महामारी प्लेगके समय भैयाका स्वर्गवास हुआ था कि सिंघईजी रो पड़े और अश्रुप्रवाहके साथ अपनी राम कहानी कहने लगे। अत. इनकी कहानी इन्हींकी जबानी सुनी प्रस्तुत करता हूँ। सिंघई-जीने कहा—

भैया।

"छह वर्षकी उमरसे हमने पढ़ना प्रारम्भ किया था जितनी उमरमें हमने अपने भैया (पुत्र) को पढ़ाना प्रारम्भ किया था। उस समय काठकी पट्टीपर वर्तनासे लिखा जाता था। हमारे गुरु प० मदनलालजी पासमें ही रहते थे। वे हमारे प्रारम्भिक विद्या-गुरु थे। बादमें रामरतनजी मा० सा० से ४ कक्षा हिन्दी और १ कक्षा अंग्रेजी पढ़ी। ५-६ वर्ष तक पढ़ा। पढ़ना जारी ही था कि अकस्मात् तीर्थयात्राकी तैयारी हो गई। सोनागिरि, शिखर-जी, गिरिनारजी आदि समस्त जैन तीर्थोंकी यात्रामें ५ माह बीत गये। इस बीचमें जो पढ़ाई बन्द हुई सो फिर पढ़ना बन्द ही रहा। उपयोग तो है चल-विचल हुआ सो हुआ।

आजीविकाका प्रश्न सामने आ गया अतः कठरयाई किराना की दूकान की। १६ वर्षकी अवस्थामें शादी हो गई। शादीके पश्चात् घी तथा गल्लाकी दूकान की। पिताजीसे २००) की पूँजी ली सो दूसरे ही वर्ष वापिस की। शिवकरण बलदेवकी हवेली थी उसीमें रहते थे। हवेली छोटे भाई नत्थालालको दे दी। एक मकान मझले भाई श्री रज्जीलालजीको भी बनवा दिया। परन्तु

कुछ कौटुम्बिक कलह हो जानेके कारण गल्ला बाजार चले गये। वहाँ एक खण्डहर लिया और उसे ही वर्तमान मकानका रूप दिया। कौटुम्बिक कलहने किन-किन समर्थ पुरुषोंको भी बरबाद नहीं किया? हाँ तो रात्रिके १२ बजे जब भैयाको (अपने इकलौते पुत्र नन्हेलालको) लेकर गल्ला बाजार गए उस समयका दृश्य बड़ा ही करुण था। भैयाको लिए पीछे-पीछे उसकी माँ चल रही थी और आगे-आगे लालटेन लेकर मैं चल रहा था। काली रात्रिके सन्नाटेको भंग करनेवाले चमगीदड़ जब कभी हमारे हाथकी लालटेनका प्रकाश देखकर चीं ची, चूँ चूँ, करते फिर उसी डालपर उलटे लटक जाते संसारका स्वरूप स्पष्ट होता जाता—"संसार एक बाजार है, मोह काली रात्रि है, हम लोग क्रेता विक्रेता हैं जो अपने सुकर्म दुष्कर्मका लेखा लगाते हुए और जानते हुए भी मोहकी काली रातमे संसारका बाजार करनेसे नहीं चूकते।" सोचते हुए गल्ला बाजार पहुँच गये। कुटुम्बसे अलग होते कितना दुःख होता है यह उसी दिन अनुभव हुआ। अस्तु।

"यह बड़ा बाजारका मकान भैया (अपने पुत्र) के विवाहके लिए बनवाया था।" कहते कहते सिघईजीकी आँखोंसे आँसुओं-की झड़ी लग गई। रुद्ध कण्ठसे उन्होंने कुछ देर बाद पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भैया गौरवर्ण थे, धार्मिक प्रकृति थी, निरभिमानी थे, देख-कर सन्तोष होता था—वह स्वस्थ सन्तुष्ट बालक जैनधर्मकी सेवा करता हुआ हमारी कुल परम्पराको अक्षुण्ण रखेगा। परन्तु भैया! भावना कब किसकी पूर्ण हुई? कौन शाश्वत रह सका?

कहाँ गये चक्री जिन जीता भरतखण्ड सारा।
कहाँ गये वे राम लक्ष्मण जिन रावण मारा॥

तब हम संसारियोंकी क्या गिनती ? सेठ मोहनलाल बजाज की लड़कीके साथ उसका सम्बन्ध तय हुआ था। एक माह ही शेष था। दोनों ओर विवाहकी तैयारियाँ हो रही थीं। सागरमें प्लेगका तूफान आया, लोग शहर छोड़कर भाग गये। विवाहकी तैयारियाँ दोनों ओर बन्द हो गईं। भैया भी अपने आजा आजीसे पास मनेसिया गाँव चले गये। परन्तु कुछ दिनों पश्चात् भैयाके मामा श्री कुन्दनलालजी घीवाले बीना बारहाके दर्शन कराने ले आये। वहाँसे जैसे ही लौटा सो प्लेगमें फँस गया। और प्लेगमें फँसा सो ऐसा कि हम जीभर दवा भी न कर पाये। प्लेगमें पानी माँगा सो लोगोंने मना कर दिया। प्लेगमें पानी नहीं दिया जाता, दो बूँद पानीके लिए पपीहरेकी तरह ......तड़प ... . तड़प.... कर. . ...प्राण.. .. ...त्या...... ग .. . ... दि..... ...ये।

> मणि . मन्त्र ... . तन्त्र ब ...हु.. .. हो... ई
> मरते....... न....... ब .. ... चा... .. वे . ....कोई ।'

लड़खड़ाती बोलीमें इतना कहनेके पश्चात् सिंघईजी फिर फूट-फूटकर रो पड़े और उनकी कहानी उन्हींकी जबानी सुनना बन्द हो गया।

उदारताकी मूर्ति—

सिंघईजी वैसे ही धार्मिक प्रकृतिके व्यक्ति होनेके कारण अत्यन्त दयालु और उदार पहिलेसे ही थे, इनके इकलौते पुत्र वियोगने करुणाके प्रवाहको और भी वेगवान् बना दिया। ऐसा कोई दयाका काम नहीं जिसमें भाग लेनेवाले दानियोंमें सिंघईजी आगे न रहते हों। अज्ञात दान तो न जाने कितने बार दिया है। रातको दुकानसे चले एक हाथमें लालटेन और कंधे पर कपड़ोंका गट्ठा। ठंडमें जो दीन-दुखी सड़क किनारे

पेड़की छायामे ठिठुरा पड़ा दिखाई दिया—रजाई, कम्बल, चद्दर जो जैसा दिखा; चुपचाप उढ़ा दिया और घर वापिस आ गये। पानेवाले गरीब जानते थे रात्रिमे भगवान् आगये और कपड़े बाट गये। वेचारोंको क्या पता कि जहां प्रेम, उदारता, दयालुता और निर्लोभता आदि गुण होते हैं वही भगवान् है।

शिक्षा प्रेमी—

शिक्षा-प्रेम तो इतना विशाल है कि द्रोणागिरि और सागरमें चलनेवाले दो ज्ञान कल्पतरुओं के संरक्षणका प्रमुख भार आज भी आपके ऊपर निर्भर है।

अनेक छात्रोको छात्रवृति, कपड़े आदि देते हैं। आपकी ओरसे ५ विद्यार्थी सदा जैन विद्यालय सागरमे प्रविष्ट किये जाते हैं जिनका खर्च आप स्वय वहन करते हैं।

द्रोणागिरि तथा सागर विद्यालयके संस्थापनमे आपके योग दानका उल्लेख पूज्य श्री वर्णी जीने इस प्रकार किया है—

"मै जब पपौराके परवारसभाके अधिवेशनमे गया तब द्रोणगिरिनिवासी एक भाईने मुझसे कहा कि—"वर्णी जी! द्रोणगिरिमे पाठशालाकी आवश्यता है।"

मैंने कहा—"अच्छा! जब आऊँगा तब प्रयत्न करूंगा।"

जब द्रोणागिरि आया तब उसका स्मरण हो आया पर इस ग्राममे क्या धरा था? मेला भी अभी दूर था। घुवारामे जल-विहार था वहाँ जानेका अवसर मिला। एकत्रित लोगोको समझाया। बड़ा परिश्रम करने पर पचास रुपये मासिकका ही चन्दा हो सका। घुवारासे गज गये वहाँ २५०) रुपयेके लगभग चन्दा हुआ। पश्चात् मेलेका सुअवर आगया। सिघई कुन्दनलालजी से भी कहा कि यह प्रान्त बहुत पिछड़ा हुआ है अतः आप कुछ सहायता कीजिये। उन्होंने १००) रुपये वर्ष देना स्वीकृत किया।

फलस्वरूप वैशाख वदि ७ सं १९८५ मे पाठशालाकी स्थापना हो गई। एक वर्ष वीतनेके वाद हम लोग फिर आये। पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ। प० श्री गोरेलाल जी शास्त्रीके कार्यसे प्रसन्न होकर इस वर्ष सिंघईजीने वड़े आनन्दसे ५०००) देना स्वीकृत कर लिया। पाठशाला अच्छी तरहसे चलने लगी। इसमें विशेष सहायता श्री सिंघईजी की रहती है। आप प्रतिवर्ष मेलाके अवसर पर आते हैं। आप क्षेत्र कमेटीके सभापति हैं।

इस प्रान्तमें आप वहुत ही धार्मिक व्यक्ति हैं। अनेक संस्थाओं की यथा समय सहायता करते रहते हैं। इस पाठशालाका नाम श्री गुरुदत्त दि० जैन पाठशाला रखा गया।"

(मेरी जीवन गाथा पृष्ठ ३५८-३६०)

वर्तमानमें इसके सुयोग्य मंत्री सिंघई जीके दामाद श्री वावू वालचन्द्रजी मलैया B.Sc हैं। पूज्य श्रीवर्णीजीके आदेशानुसार इस पाठशालाकी शाखा श्री गुरुदत्त दि० जैन गुरुकुलके नामसे वड़ा मलहरा (छतरपुरमें) स्थापित हुई। परन्तु एक ही प्रकारकी पढ़ाई होनेसे दोनों संस्थाओं के छात्र द्रोणगिरि पाठशालामें भेज दिये गये और मलहराके गुरुकुल भवनमें एक हाईस्कूल— "जनता हाईस्कूल" के नामसे स्थापित किया गया। विन्ध्यप्रदेशकी सरकारने ७५ प्रतिशत सहायता देना प्रारम्भ किया और पहले ही मैट्रिकके बैचने अद्भुत सफलता प्राप्त की। विन्ध्यप्रदेश भरमें चलनेवाले लड़कोंके हाईस्कूलोंमें यह स्कूल सर्व प्रथम आया। लोग दंग रह गये। इसका श्रेय सिंघई जीके दामाद श्री मलैया जी, जो स्कूलके अध्यक्ष हैं तथा इनके भतीजे श्री नाथूराम जी गोदरे जो स्कूलके मंत्री हैं, को है। अप्रासङ्गिक होनेपर भी वहाँके प्रधान अध्यापक श्री हुकुमचन्द जी जैन M. A. को नहीं भुलाया जा सकता। जिन्होंने संस्थाको समुन्नत बनानेमें हर सम्भव प्रयत्न

किया। स्कूलके लिये एक भवन १ लाख रुपये की लागतका बनाया जा रहा है।

सागर विद्यालयके सम्बन्धमें सिंघई जीके अपूर्व सहयोगका उल्लेख करते हुए वर्णी जीने लिखा है—

"अक्षय तृतीया वि० सं० १९६५ को (सागरमें) पाठशाला खोलनेका मुहूर्त निश्चित किया गया। इसी समय श्री सिंघई कुन्दनलाल जीसे मेरा घनिष्ट परिचय हो गया। आप मुझे अपने भाईके समान मानने लगे, मासमे प्रायः १० दिन आपके घर भोजन करना पड़ता था। एक दिन मैंने आपसे पाठशालाकी आय सम्बन्धी चर्चा की तो आपने बड़ी सान्त्वना देते हुए कहा कि चिन्ता मत करो हम कोशिश करेंगे। आप घी और गल्लेके बड़े भारी व्यापारी हैं। आपके प्रभावसे एक पैसा प्रति गाड़ी धर्मादाय गल्ले बाजारसे हो गया। इसी प्रकार आपने घीके व्यापारियोंसे भी कोशिश की जिससे फी मन आधा पाव घी पाठशालाको मिलने लगा। इस प्रकार हजारो रुपये पाठशालाकी आय हो गई। इस तरह बुन्देलखण्डके केन्द्रस्थानमे श्री सत्तर्कसुधातरङ्गिणी जैन पाठशालाका पाया कुछ ही समयमे स्थिर हो गया।"

(मेरी जीवन गाथा पृ० २१६)

वर्तमानमें यह सस्था पूज्य श्री वर्णी जीके नाम पर श्री गणेश दि० जैन सस्कृत विद्यालय सागरके नामसे प्रख्यात है। सिंघई जी इसके अध्यक्ष हैं। आचार्य कक्षा तक सस्कृत विभागमें २०० विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। इसीके उपविभाग जैन हाईस्कूलमे लगभग १ हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं। इसकी व्यवस्था आपके दामाद श्री बालचन्द्र जी मलैया बी. एस सी. अध्यक्ष तथा आपही के भतीजे नाथूराम जी गोंदरे मत्री पद पर रहकर करते हैं। श्री बालचन्द्र जी मलैया महोदयने वर्णी जीके पैदल यात्रा करते हुए

सागर पधारनेके अवसर पर बृहत् सम्मेलनके समय ४० हजार रुपया हाईस्कूल भवनके निर्माण हेतु प्रदान किये हैं। सागरके सरोवरके किनारे यह भवन बनाया जा रहा है।

सिंघई जी इन संस्थाओं को हराभरा देख कर ऐसे ही प्रसन्न होते हैं जैसे कोई अपने परिवारको फूलता-फलता देखकर प्रसन्न होता है।

अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति—

सिंघईजी जैसे शिक्षाप्रेमी हैं वैसे ही धर्मनिष्ठ भी हैं। ऐसा कोई भी जैनतीर्थ नहीं है जिसकी यात्रा सिंघईजीने सकुटुम्ब न की हो। द्रोणगिरि क्षेत्र, बम्होरी, ईशरवारा और पचनारीके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कार्य भी आपने कराया है। धर्मशाला, जिन चैत्यालय, मानस्तम्भका निर्माण. वेदीनिर्माण और कलशारोहण कार्य जिस शानके साथ सिंघईजीने सम्पन्न कराये उसे आज भी लोग भूले नहीं हैं। इस सबका विवरण पूज्य श्री वर्णीजीने स्वयं इस प्रकार दिया है—

"एक दिन सिंघईजी बाईजीके यहाँ बैठे थे। साथमें आपके साले कुन्दनलालजी घीवाले भी थे। मैंने कहा—'देखो सागर इतना बड़ा शहर है परन्तु यहाँपर कोई धर्मशाला नहीं है।' उन्होंने कहा—'हो जावेगो।'

दूसरे ही दिन कुन्दनलालजी घीवालों ने कटराके नुक्कड़-पर बैरिस्टर बिहारीलाल जी रायके सामने एक मकान ३४००) में ले लिया और इतना ही रुपया उसके बनानेमें लगा दिया। आज कल वह २५०००) की लागतकी है और सिंघईजीकी धर्मशालाके नामसे प्रसिद्ध है। हम उसी मकानमें रहने लगे।

एक दिन मैंने सिंघईजीसे कहा कि यह सब तो ठीक हुआ

परन्तु आपके मन्दिरमे सरस्वती भवनके लिये एक मकान जुदा होना चाहिए। आपने तीन मासके अन्दर ही सरस्वती भगवनके नामसे एक मकान बनवा दिया जिसमें ४०० आदमी आनन्दसे शास्त्र प्रवचन सुन सकते है। महिलाओं और पुरुषों के बैठनेके लिए पृथक् पृथक् स्थान हैं।

एक दिन सिघईजी पाठशालामें आये, मैंने कहा यहाँ और तो सब सुभीता है परन्तु सरस्वतीभवन नहीं है। विद्यालयकी शोभा सरस्वतीमन्दिरके बिना नहीं। कहनेकी देर थी कि आपने मोराजीके उत्तरकी श्रेणीमें एक विशाल सरस्वीतभवन बनवा दिया।

सरस्वतीभवनका उद्घाटन समारोहके साथ होना चाहिये और इसके लिए जयधवला तथा धवल ग्रंथराज आना चाहिये.... ...' आपसे मैंने कहा।

यहाँ कहाँ मिल सकेंगे ? . ... आपने कहा।'

'सीताराम शास्त्री सहारनपुरमे हैं। उनसे हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है। उनके पास दोनों ही ग्रन्थराज हैं परन्तु २०००) लिखाईके माँगते हैं'........... मैंने कहा।

'मँगा लीजिए'.. ... .. आपने प्रसन्नतासे उत्तर दिया।

"मैने दोनों ग्रन्थराज मंगा लिये। जब शास्त्रीजी ग्रन्थ लेकर आये तब उन्हे २०००) के अतिरिक्त सुसज्जित वस्त्र और विदाई देकर विदा किया। सरस्वतीभवनके उद्घाटनका मुहूर्त आया। किसीने आपकी धर्मपत्नीसे कह दिया कि आप सरस्वतीभवनमें प्रतिमा जी पधरा दो जिससे निरन्तर पूजा होती रहेगी। सरस्वती भवनसे क्या होगा ? उससे तो केवल पढ़े लिखे लोग ही लाभ उठा सकेंगे। सिघैनजीके मनमें बात जम गयी, फिर क्या था ? पत्रिका छप गई कि अमुक तिथिमे सरस्वतीभवनमे प्रतिमाजी विराजमान होगी।

यह सब देखकर मुझे मनमें बहुत व्यग्रता हुई। मेरा कहना था कि मोराजीमें एक चैत्यालय तो है ही अब दूसरेकी आवश्यकता क्या है? पर सुननेवाला कौन था? मैं मन ही मन व्यग्र होता रहा।

एक दिन सिंघईजीने निमन्त्रण किया। मैंने मनमें ठान ली कि चूँकि सिंघईजी हमारा कहना नहीं मान रहे हैं अतः उनके यहाँ भोजनके लिए नहीं जाऊँगा। जब यह बात बाईजीने सुनी तब हमसे बोलीं—

'भैया! कल सिंघईजीके यहाँ निमन्त्रण है।'

मैंने कहा—'हाँ, है तो परन्तु मेरा विचार जानेका नहीं है।'

बाईजीने कहा—'क्यों नहीं जानेका है?'

मैंने कहा—'वे सरस्वतीभवनमें प्रतिमाजी स्थापित करना चाहते हैं।'

बाईजीने कहा—'बस यही, पर इसमें तुम्हारी क्या क्षति हुई? मान लो, यदि तुम भोजनके लिए न गये और उस कारण सिंघईजी तुमसे अप्रसन्न हो गये तो उनके द्वारा पाठशालाको जो सहायता मिलती है वह मिलती रहेगी क्या?'

हमारा उत्तर सुनकर बाईजीने कहा कि 'तुम अत्यन्त नादान हो। तुमने कहा हमारा क्या जायगा? अरे मूर्ख तेरा तो सर्वस्व चला जायगा। आज पाठशालामें ६००) मासिकसे अधिक व्यय है यह कहाँसे आता है। इन्हीं लोगों की बदौलत तो आता है। अतः भूलकर भी न कहना सिंघईजीके यहाँ भोजनके लिये नहीं जाऊँगा।'

मैंने बाईजीकी आज्ञाका पालन किया।

सरस्वतीभवनके उद्घाटनके पहिले दिन प्रतिमाजी विराजमान करनेका मुहूर्त हो गया। दूसरे दिन सरस्वती भवनके

उद्घाटनका अवसर आया। मैंने दो आलमारी पुस्तकें सरस्वती भवनके लिए भेंट कीं। प्राय: उनमें हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत थे।

अन्तमें मैंने कहा कि 'उद्घाटन तो हो गया परन्तु इसकी रक्षाके लिये कुछ द्रव्यकी आवश्यकता है।' सिंघईजी ने २५०१) प्रदान किये। अब मैंने आपकी धर्मपत्नीसे कहा कि 'यह द्रव्य बहुत स्वल्प है अत: आपके द्वारा भी कुछ होना चाहिए।' आप सुनकर हँस गईं। मैंने प्रगट कर दिया कि '२५०१) सिंघैनजीका लिखो।' इस प्रकार ५००२) भवनकी रक्षाके लिये हो गये।

यह सरस्वतीभवन सुन्दर रूपसे चलता है लगभग ५००० पुस्तकें होंगी।" (मेरी जीवनगाथा पृ०३४८-३५८)

स्मरण रहे यह सरस्वतीभवन सिंघईजीने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सिंघैन दुर्गाबाई जीके नामसे अपने स्वर्गीय पुत्र श्री नन्हेलालजीकी पुण्यस्मृतिमें बनवाया है। मन्दिरका कलशारोहण उत्सव लोग अब भी स्मरण करते हैं। उत्सवके महीनों बाद भी आनेवाले साधर्मी भाइयोंका कलशारोहणके निमित्तसे भोजन होता रहा। अजैन गाड़ीवाले बन्धु भी सत्कृत हुए। उनके बच्चोंको भी सिंघई जी मिठाई भेजते रहे।

मानस्तम्भका निर्माण

वर्णीजीने लिखा है—"कुछ दिन हुए सागरमें हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। मैंने सिंघई जीसे कहा—आप एक मानस्तम्भ बनवा दो उसमें ऊपर चार मूर्तियाँ स्थापित होंगी, हर कोई अन्दरसे दर्शन कर सकेगा। सिंघई जीके उदार हृदयमें यह बात आगई। दूसरे ही दिनसे मानस्तम्भका कार्य प्रारम्भ हो गया और ३ मासमें बनकर तैयार हो गया। पं०

मोतीलालजी वर्णी द्वारा समारोहसे प्रतिष्ठा हुई। उत्तुङ्ग मान-स्तम्भको देखकर समवशरणके दृश्यकी याद आ जाती है। सागरमें प्रतिवर्ष महावीर जयन्तीके दिन विधिपूर्वक मानस्तम्भ और तत्रस्थ प्रतिमाओंका अभिषेक होता है जिसमें समस्त जैन नर-नारियोंका जमाव होता है।'

(मेरी जीवनगाथा पृ० ३५२)

वेदी-निर्माण—

पूज्य वर्णी जीके अनन्य भक्त होनेके कारण उनकी कोई भी आज्ञा सिंघईजी टालते नहीं हैं। जैसे उनसे बड़े हों सिंघईजी ऐसा ही मानते हैं। सागरमें सरस्वीतभवन और मानस्तम्भकी तरह द्रोणगिरिके मन्दिर जिसमें देशी पाषाणकी सुन्दर वेदीका निर्माण भी पूज्य वर्णीजीके उपदेशसे हुआ है। ५-५ हजारकी रकम सिंघई जीके नामसे उनसे बिना पूछे ही वर्णी जी लिखा देते हैं। सिंघई जी कभी न नहीं करते। बाईजीके अन्त समय कहे गये अपने वचनका अब भी पालन करते हैं। इसका कारण यह है कि सिंघईजी और वर्णीजीका सम्बन्ध ही ऐसा हो गया है। दोनों भाई भाईकी तरह हैं। अन्तर केवल इतना है दोनो के मार्ग पृथक-पृथक हैं। एक वीतराग मार्ग पर दूसरा गृहस्थ मार्ग पर। गृहस्थ मार्ग होने पर भी सिंघईजी त्याग मार्गमें ही श्रद्धा और सदा उस मार्गकी ओर उन्मुख होनेका प्रयत्न करते हैं। वर्णी जी सदा अपने आध्यात्मिक पत्रों द्वारा सिंघई जीको उपदेश देते रहते हैं। सिंघईजीकी धर्मपत्नी श्रीमती सिंघैन दुर्गाबाईजी भी उनके धार्मिक कार्योंमें सतत सहयोग देती हैं। स्वयं धर्ममें दृढ़ श्रद्धावान् हैं। सदा उदारता पूर्वक दान देती रहती हैं।

सागरके स्वाध्याय मण्डलमें सिंघई जी प्रति दिन सम्मिलित होते हैं। श्रीमान् पं० ताराचन्द्र जी सर्राफ बीचके मन्दिरमें

प्रवचन करते हैं। सिघईजी आपकी प्रवचनशैलीसे वहुत
प्रभावित होकर वही शास्त्र सुनने जाते हैं। कभी विना दर्शन
किये भोजन नही करते। अस्वस्थ अवस्थामे भी जव तक पार्श्व-
नाथ स्वामीके रजत चित्रके दर्शन न कर लें, स्वाध्याय न सुन लें
और सामायिक न कर ले तव तक दवा भी नहीं लेते।

पारिवारिक जीवन—

आपके दो भाई और है। एक श्री रज्जीलाल जी जिन्हो ने
सदासे देशकी मौन सेवा की हैं। अपनी सेवाओं का प्रचार वे
नहीं चाहते। सागरमे ऐसे वहुत कम लोग है जो इस प्रचारकी
दुनियाँसे परे रहनेवाले इस राजनैतिक व्यक्तिको नहीं जानते।
सागरका सन् १६४२ का आन्दोलन लेखकने देखा है, सिघई
श्री रज्जीलाल जीके कार्योंको भी देखा है। जव आश्चर्य किया
तव लोगो ने कहा यह उनका पुराना व्रत है। तुम नये हो इस
लिये आश्चर्य करते हो। वात सही थी तव मै नया ही था।

आपके दो पुत्र है एक श्री डा० वावूलाल जी। सुलझे विचार,
जनसेवी और योजना मस्तिष्कके व्यक्ति। दूसरे श्री लक्ष्मीचन्द्र
जी—अच्छे व्यापारी और अच्छे ही किसानकलाकोविद।

सिंघई जीके दूसरे भाई हैं श्री नाथूराम जी। अच्छे कुशल
व्यापारी और धर्मात्मा। आपका वनवाया हुआ १० हजार रुपये
का चाँदीका विमान सागरमे वेजोड़ है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती
सिंघैन चम्पावाई जी विदुषी एव धार्मिक प्रकृतिकी उत्साही
महिला हैं। सागरके महिला समाजकी शिरोमणि मानी जाती
हैं। आपका भजन संगीत सुनकर मन्दिरमे सन्नाटा छा जाता
है। आपके एक सुपुत्र है श्री जैनेन्द्रकुमार जी वहुत ही सज्जन
और कुशल व्यापारी।

सिंघई जी की दो पुत्रियाँ हैं। एक श्रीमती सौ० गुलाववाईजी

जो सागरके प्रतिष्ठित धार्मिक एवं कुशल व्यापारी श्रीमान् वाबू वालचन्द्र जी मलैयाके घरकी शोभा हैं। धन जनका सौभाग्य जैसा श्रीगुलाववाई जी को मिला है वैसा और बहुत ही कम लोगोंको देखनेमे आता है। परन्तु श्री वहिन गुलाववाईजी अपनी धार्मिकताको ही सच्चा धन मानतीं हैं। इन्हें अपने लौकिक धनका जरा भी अभिमान नहीं है। सचमुचमें गुलाववाई जी मलैया कुलकी कुललक्ष्मी हैं। आपके ५ पुत्र और २ पुत्रियाँ हैं। सभी सरस्वती मन्दिरमें सरस्वतीकी साधनामें संलग्न हैं। विनयी, सदाचारी और नीतिकुशल हैं। इनके वयस्क होने पर सागर समाजकी शोभा वढ़ेगी।

श्रीमान् वावू वालचन्द्र जी मलैया—सिंघई जीके वड़े दामादके सम्बन्धमे क्या कहा जाय, संस्थाओंके सचालनमे जो सहायता आप करते हैं उसका उल्लेख हम कर चुके हैं। जैन-हाईस्कूल सागर और जनता हाईस्कूल वड़ा मलहराके अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहते हुए आप समाजकी शिक्षासंवन्धी कमीको पूर्ण कर रहे हैं। द्रोणगिरि क्षेत्रकी सम्हालका पूर्ण उत्तरदायित्व आप ही सम्हाल रहे हैं। अपने सागर, सतना और दमोहके तीनों आइलमिल्सके मालिक हैं। इतनी वडी विभूति पाकर भी अत्यन्त नम्र और आश्चर्य यह कि सुलझे विचारोंके नितान्त धार्मिक पुरुष हैं। लक्ष्मी और सरस्वती दोनोकी कृपा एक साथ देखनी हो तो मलैयाजीके घरानेमें देखलें। अनेक छात्रोंको छात्रवृत्ति देते हैं, वे रोजगारोंको रोजगार देते हैं और भूले भटकोंको सच्ची सलाह भी देते हैं।

सिंघईजीकी दूसरी सुपुत्री हैं—श्रीमती सौ० वहिन तारावाईजी। आप एक कुशल महिला हैं, स्पष्टवादिनी हैं और जैसी ही धार्मिक हैं वैसी ही दयालु हैं। सिंघईजीके पास जब कभी कोई सहायता हेतु आता है उसकी सिफारिश वहिन तारावाई उसकी

करुण कथा विस्तृत करके कर देती हैं। उसकी सफलताका श्रेय भी वे नही चाहती धन्यवाद भी नहीं। यदा कदा स्वयं भी सहायता कर देती हैं। आप श्री चौधरी वाबूलालजी बोरियाबालोको व्याही हैं। सिघईजीके यही दूसरे दामाद हैं। अत्यन्त धार्मिक एवं कुशल व्यापारी है। सिंघईजीको पिता तुल्य मानते हैं। आजकल उन्हींके पास ही रहते हैं। आपके ४ पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। बड़ा सुपुत्र और सुपुत्री उच्च शिक्षा पा रहे हैं।

इस तरह सिंघईजीकी दोनो पुत्रियाँ सुखी हैं, सम्पन्न हैं। सिंघईजीका पारिवारिक जीवन सुखद एवं शान्त है।

शुभकामनाएँ

सिंघईजी अपने जीवनके ८५ वर्ष पूर्ण कर रहे हैं और जनता के समक्ष एक आदर्श गृहस्थका आदर्श उपस्थित कर चुके हैं।

दुर्भाग्यवश कुछ दिनोसे अस्वस्थ्य हैं। आखिर बुढ़ापा जो ठहरा वैसे ही इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है। परन्तु सिंघईजीकी धार्मिकतामे कोई शिथिलता देखनेमें नहीं आती। आज तक सिंघईजीने अपने जीवनमे लगभग ढाई लाख रुपयोका दान किया है। अतः वर्णीजीके शब्दोमे ही मैं उनके प्रति शुभकामना करता हूँ।

"इस प्रकार सिंघई कुन्दनलालजीके द्वारा सतत धार्मिक कार्य होते रहते हैं। ऐसा परोपकारी जीव चिरायु हो।"

(मेरी जीवनगाथा पृ० ३५३)

रक्षाबन्धन
वि० स० २०१४

लेखक—
विद्यार्थी नरेन्द्र

परिचय व पत्रक्रम निर्देशसूची

—:❀:—

श्री जिनाय नमः

वर्णी-वाणी

[पत्र-पारिजात]

(पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी न्यायाचार्य महाराज द्वारा लिखे गये पत्रोंका संग्रह)
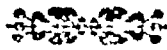
मङ्गलाचरण

यः पूजातिशयाभिमण्डितवपुः सत्कीर्तिधर्मोज्ज्वलः
सच्चक्राम्बुजमोदकः सुमनसां प्रज्ञासुधामोददः ।
सोऽयं जैनतपैकरक्षणकर्ता जीयाद् ध्रुवं पावनः
श्रीचिद्रसपूर्णसर्वसुभगो वर्णी गणेशः सुधीः ॥

[१--१]

[पूज्य श्री वर्णी जी स्वयं अपनी दृष्टि में]

श्रीमान् वर्णी जी ! योग्य इच्छाकार

बहुत समयसे आपके समाचार नहीं पाये, इससे चित्तवृत्ति संदिग्ध रहती है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। सम्भव है आप उससे कुछ उद्विग्न रहते हों और यह उद्विग्नता आपके अन्तस्तत्वकी निर्मलताके कृश करनेमें भी समर्थ हुई हो। यद्यपि आप सावधान हैं परन्तु जब तक इस शरीरसे ममता है तब सावधानीका भी ह्रास हो सकता है। आपने बालकपनेसे ऐसे पदार्थोंका सेवन किया जो स्वादिष्ट और उत्तम थे। इसका मूल कारण यह था कि आपके पूर्व पुण्योदयसे श्री चिरौंजाबाईजी का संसर्ग हुआ। तथा श्रीयुत सर्राफ मूलचन्द्रजी का संसर्ग हुआ। जो सामग्री आप चाहते थे, इनके द्वारा आपको मिलती थी। आपने निरन्तर देहरादूनसे चावल मगाकर खाए, उन मेवादिका भक्षण किया जो अन्य हीन पुण्यवालो को दुर्लभ थे तथा उन तैलादि पदार्थोंका उपयोग किया जो धनाढ्यो को ही सुलभ थे। केवल तुमने यह अति अनुचित कार्य किया किन्तु तुम्हारे आत्मामें चिरकालसे एक बात अति उत्तम थी कि तुम्हें धर्मकी दृढ़ श्रद्धा और हृदयमें दया थी, उसका उपयोग तुमने सर्वदा किया। तुम निरन्तर दुखी जीव देखकर उत्तमसे उत्तम वस्त्र तथा भोजनको देनेमें संकोच नहीं करते थे, यही तुम्हारे श्रेयोमार्गके लिये एक मार्ग था। न तुमने कभी भी मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया, न स्थिरतासे पुस्तकोंका अवलोकन ही किया, न चारित्रका पालन किया और न तुम्हारी शारीरिकसम्पदा चारित्र पालनकी थी। तुमने केवल आवेगमें आकर व्रत ले लिया। व्रत लेना और बात है और उसका

आगमानुकूल पालन करना अन्य बात है। लोग तो भोले हैं जो वाचाल और बाह्यसे संसार असार है ऐसी कायकी चेष्टासे जनाते हैं उन्हींके चक्रमें आ जाते हैं, उन्हींको साधु पुरुष मानने लगते हैं और उनके तन, मन, धनसे आज्ञाकारी सेवक बन जाते हैं। वास्तव मे न तो धर्मका लाभ उन्हें होता है और न आत्मामें शान्ति ही का लाभ होता है। केवल दम्भिगणोंकी सेवा कर अन्तमें दम्भ करनेके ही भाव हो जाते हैं। इससे आत्मा अधोगतिका ही पात्र होता है।

इस जीवको मैंने बहुत कुछ समझाया कि तूँ परपदार्थोंके साथ जो एकत्वबुद्धि रखता है उसे छोड़ दे परन्तु यह इतना मूढ़ है कि अपनी प्रकृतिको नहीं छोड़ता, फलतः निरन्तर आकुलित रहता है। क्षणमात्र भी चैन नहीं पाता।

ईसरी
माघ शुक्ल १३ सं० १९९९

आपका शुभचिन्तक—
गणेश वर्णी

आचार्य सूर्यसागर महाराज

[श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजका जन्म कार्तिक शुक्ला ६ शुक्रवार वि० सं० १६४० को ग्वालियर रियासतके शिवपुर जिला न्तर्गत पेमसर ग्राममें हुआ था। पिताका नाम हीरालाल जी और माता का नाम गेंदाबाई था। ये जातिके पोरवाल थे। बाल्यपनका नाम हजारीमल था। इनका लालन पालन इनके पिताके सहोदर भाई बलदेव जी झालरापाटनवालोंके यहाँ हुआ था। बादमें उन्हींके ये दत्तक पुत्र हो गए थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी तक सीमित थी।

विवाह होने पर भी बचपनसे ही इनकी रुचि धर्मकी ओर होनेसे सं० १६८१ में एक स्वप्नके फल स्वरूप ये संसारसे विरक्त हो गये और इसी वर्षकी आसोज शुक्ला ६ को इन्होंने इन्दौरमें आचार्य शान्तिसागर (छाणी) के पास ऐलक पदकी दीक्षा ले ली। दीक्षा नाम सूर्यसागर रखा गया। इसके बाद कुछ दिनोंमें इन्होंने उन्हींके पास हाटपीपल्यामें मगसिर कृष्णा ११ को मुनि पदकी भी दीक्षा ले ली और कुछ कालमें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये।

आचार्य सूर्यसागर महाराज स्वभावके निर्भीक और स्वतन्त्र विचारक थे। उत्तर भारतमें इस कालमें इनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। आचार-विचारमें मूल परम्पराकी इन्होंने जीवनके अन्तिम क्षण तक रक्षा की है। स्वाध्याय और अध्ययन द्वारा इन्होंने अपने ज्ञानको खूब बढ़ाया और कई ग्रंथोंकी रचना की।

अन्तमें जीवनको नश्वर जान इन्होंने डालमियानगरमें समाधि ले ली थी। वहाँ नगरके बाहर दाहसंस्कारके स्थान पर प्रसिद्ध उद्योगपति शाहु शान्तिप्रसादजी द्वारा निर्मित इनकी संगमरमरकी भव्य समाधि बनी हुई है।

पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णी इनको अपना गुरुके समान मानते रहे। इनका पूज्य वर्णीजीके साथ पत्र व्यवहार होता रहता था। उनमेंसे उपलब्ध हुए तीन पत्र यहाँ दिये जाते हैं।]

[२—१]

महाराजके चरणकमलोंमें श्रद्धाञ्जलि

संसारमें वही महापुरुष वन्दनीय होते हैं जिन्होंने ऐहिक, पारलौकिक कार्योंसे तटस्थ हो आत्मकल्याणके लिये आत्म-परिणतिको निर्मल बना लिया है। आपकी हम तुच्छ मनुष्य क्या प्रशंसा करें! आपने तो उभय लोकसे परे श्रेयोमार्गको अपनाया है। हम तो आपके चरणाम्बुज रजसे ही कृतकृत्य अपनेको मानते हैं।

सागर } आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[२—२]

हे श्री १०८ महात्मन्! आपको अनेकशः नमस्कार

आप स्वयं समर्थ हैं। आपको परकृत वैय्यावृत्यकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु जिनको प्रबल पुण्योदय मिला है वे स्वयं आपके सानिध्यमें वैयावृत्य तपका लाभ ले रहे हैं। हम अन्तरङ्गसे इस महायोगका दृश्य देखनेको लालायित हैं परन्तु आपका आदेश चाहते हैं। आगम इसका बाधक नहीं परन्तु हम तो 'गुरोराज्ञा बलीयसी' का पालन करनेवालोंमें हैं, आज्ञाकी प्रतीक्षामें हैं। आशा है इस ओर नेक दृष्टिपात करेंगे। उद्देश्य हमारा अच्छा है। उत्सर्ग वही है जो अपवादसापेक्ष है। अपवाद वही है जो उत्सर्गनिरपेक्ष न हो। प्रवृत्तिमार्ग निर्दोष ही है सो नहीं, अन्यथा प्रायश्चित्त शास्त्र किस उपयोग का? हाँ, अपवादमें छल नहीं होना चाहिये। हमारे तो कोई छल नहीं। केवल एक

महात्माकी अन्तिम अवस्याकी चरणरजका स्पर्श कर अपनी निर्मलताका पात्र बनूँ, यही भावना है। यदि आप लोगोंकी उक्तियोंसे संकोच करें तब हम क्या कह सकते हैं? हम तो आपकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करनेवालोंमें हैं।

सागर
श्रावण वदी ७, सं० २००६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[२–३]

श्री १०८ आचार्य्य सूरिसागरजी महाराजके चरण कमलोंमें

सहस्रशः नमस्कार

महाराज! मेरी तो अनन्यभक्ति आपके गुणोंमें निरन्तर रहती है। आपके पादमूलमें रहकर सुमार्गभागी हूँ। परन्तु इतना सौभाग्य नहीं, न हो परन्तु वही अनुराग जो प्रत्यक्षमें प्राणीके होता है मेरेको है। इससे निरन्तर आपके गुणोंका स्मरण कर प्रसन्न रहता हूँ। विशेष बात श्री नरेन्द्र कहेगा। क्या लिखूँ? मनकी बात व्यक्त नहीं कर सकता, वचनोंमें वह सामर्थ्य नहीं!

शान्तिनिकुञ्ज, सागर

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

बाबा भागीरथ जी वर्णी

[श्रद्धेय बाबा भागीरथ जी का जन्म मथुरा जिलेके पण्डापुर ग्राममें वि० सं० १६२५ को हुआ था। पिताका नाम बलदेवदास और माताका नाम मानकौर था। जब ये तीन वर्ष के थे, तब पिताका और ग्यारह वर्षकी उम्रमें माताका देहावसान हो गया था। बचपनमें इनकी पढ़ाई लिखाई कुछ भी न हो सकी। माताके देहावसानके बाद आजीविका निमित्त ये दिल्ली चले गये। जन्मसे ये वैष्णव थे।

दिल्लीमें ये जैनियोंके मुहल्ले में रहने लगे। और वहीं पर आपने एक जैनबन्धुके सम्पर्कसे ज्ञान सम्पादन किया। एक दिन जैन मन्दिरके पाससे जाते समय इनके कानोंमें पद्मपुराण (जैन रामायण) के कुछ शब्द पड़ गये। इनके वैष्णव धर्मसे जैनधर्ममें दीक्षित होनेमें यही कारण है।

जैन होनेके बाद धीरे-धीरे इनको प्रपञ्चसे निवृत्ति होने लगी और कुछ काल बाद इन्होंने विधिवत् ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली। इनका संयमी जीवन अत्यन्त श्लाघनीय रहा है। ये निर्वाहके लिए दो चादर और दो लंगोट मात्र ही परिग्रह रखते थे। तथा नमक और मीठेका आजन्मके लिए त्याग कर दिया था।

स्वाध्याय और आत्मचिन्तन ये दो कार्य इनके मुख्य थे। इनसे चित्तवृत्तिके हटने पर इनका अधिकतर समय परोपकारमें व्यतीत होता था। जैनियों की प्रमुख संस्था श्री स्याद्वाद महाविद्यालयके संस्थापकोंमें ये प्रमुख हैं। अधिष्ठाता पदपर रहकर इन्होंने इस संस्थाकी कई वर्ष तक सेवा भी की है।

पूज्य वर्णीजी और बाबाजी दो शरीर और एक आत्मा कहें तो अत्युक्ति न होगी। पूज्य वर्णी जीके जीवनपर इनकी गहरी छाप है, जैसा कि पूज्य वर्णी जी द्वारा इनको लिखे गये पत्रोंसे ज्ञात होता है। यहाँ उनमेंसे कतिपय पत्र दिये जा रहे हैं।]

[३–१]

मेरे परमोपकारी श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी महाराज !

योग्य प्रणाम

संसार यातनाओंका गृह है। इससे बचनेके अनेक उपाय महर्षियोंने प्रदर्शित किये हैं परन्तु उनके अन्तस्तत्त्वपर यदि विचार किया जावे तब ? त्यागमें सब उपायोंका का समावेश हो जाता है। हम दुःखी क्यो हैं ? पर पदार्थोंमें निजत्व कल्पनाके जालमे फँसे हैं। उस जालसे मुक्त होनेके लिये ही प्रथम उपाय सम्यग्दर्शन जैनागममें आचार्योंने बताया है। वस्तुतः सम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेका प्रयास हमारा कर्तव्य नहीं किन्तु हमारी आत्मा अनादिकालसे इन परपदार्थोंमें जो निजत्व कल्पना कर रही है उस कल्पनाको न होने देना ही हमारा पुरुषार्थ होना चाहिए। ऐसी चेष्टा निरन्तर प्रत्येक प्राणीकी होनी चाहिये। संसारमें जितने भी चरणानुयोग और अनुयोगोंके निरूपण हैं वे सभी एतत्पर हैं। उपासनातत्त्वका भी यही तात्पर्य है कि जो सत्य आत्माकी परिणतिमें हमारा उपयोग लग जावे। सत्यसे तात्पर्य रागद्वेष हीन आत्माकी परिणति ही नित्य और सत्य है। इसके विपरीत जो परपदार्थके सम्बन्धसे हो तथा जिसमें अभ्यन्तरमें विपरीत कल्पना हो वह परिणति ही मिथ्या और संसारवर्द्धक है।

ईसरी
अगहन कृष्ण १० सं० १९९४ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-२]

श्रीयुत महाशय जी इच्छाकार

अब पर्यायकी क्षीणता होगी और इससे अनिवार्य निर्बलता होगी, किन्तु इसमे आत्मगुणको क्या बाधा है? आप तो नहीं, परन्तु अन्य भोले प्राणी कहेंगे कि जब इन्द्रियाँ शिथिल होगी तब इन्द्रियजन्य ज्ञान भी शिथिल होगा ही। परन्तु उससे आत्मा की क्षति नही। जिससे आत्माकी क्षति है उसकी घातक यह इन्द्रियदुर्बलता नहीं।

ईसरी
चैत्रकृष्ण १२ सं० १९९५

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-३]

इच्छाकार

आपका पीयूष पूरित पत्र आया, समाचार जाने। मैं आपका विशेष भक्त हूँ। भक्त ही नही आपके सिवाय इस समय मेरी तो किसी भी त्यागी मे भक्ति नहीं, अतः आप मेरे लिये आशीर्वादको छोड़कर शब्दान्तर न लिखे। आपके सम्पर्कमे मेरी जो निर्मलता थी वह केवलमे नहीं। महाराज! मेरी तो यह श्रद्धा है कि जो भी वेष हैं सब कषायोंके ही कार्य हैं। परन्तु यह सब चर्चा भी कषायोंके उदयमें ही होती है। आप मेरी एक तुच्छ सम्मति मानिये। वह यह कि अब आपकी आयु दीर्घ नही अतः सब तरफ से सङ्कोचकर खतौली मे ही समाधिमरणकी योग्यता जानकर क्षेत्रन्यास कीजिये। कषायो के उदय जीवसे नाना कार्य कराते हैं। परन्तु पुरुषार्थकी भी वह तीक्ष्ण खड्गधार है कि उन उदय

जन्य रागादिककी सन्ततिको निर्मूल कर देती है। अर्जित रागादिककी उत्पत्तिको हम नहीं रोक सकते। परन्तु उदयमें आये रागादिकों द्वारा हर्ष-विषाद न करें यह हमारे पुरुषार्थका कार्य है। सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियकी मुख्यता पुरुषार्थ द्वारा ही कल्याण करनेकी है। कषायोंके उदयपर रोना आपसे निस्पृही व्यक्तिको तो सर्वथा अनुचित ही है। द्रव्य द्वारा किसी जाति या धर्मकी उन्नति न हुई, और न होगी। चक्रवर्ती जैसे शक्ति और प्रभाव सम्पन्न महापुरुषोंसे भी संसारमें शान्ति नहीं आई और न धर्मकी ही उन्नति हुई, किन्तु श्रीवीतराग सर्वज्ञ परम महर्षि तीर्थङ्करके निमित्तको पाकर शान्ति या धर्मका वैभव संसारमें व्यापकरूपसे प्रसारित हुआ, जिसका आंशिक रूप अब भी संसारमें है। चक्रवर्तीकी कोई भी वस्तु आज तक नहीं रही, क्योंकि भौतिक पदार्थ तो पुद्गलकृत हैं और धर्मका असर आत्मामें होता है, इसलिए अब भी बहुत आत्माएँ ऐसी हैं जिनमें तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित धर्मका अंश है। यह मानना ही मिथ्या है कि धनिकोंका धन धर्ममें नहीं लगता। धनसे धर्म होता ही नहीं, फिर यह कल्पना करना कि अमुक व्यक्तिका धन धर्ममें नहीं लगा व्यर्थ है। हम भी क्या करें ? मोहके द्वारा असंख्य कल्पना करके भी शान्त नहीं होते।

ईसरी आषाढ कृष्ण २ सं० १९९९	आपका गुणानुरागी गणेश वर्णी

[३-४]

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

दुःखका मूल कारण शारीरिक व्याधि नहीं, किन्तु शरीरसे ममत्वबुद्धि है। वही दुःखका मूल है। दुःख क्या वस्तु है ?

आत्मामे जो परिणमन न सुहावे वही तो दुःख है। अर्थात् जिस वस्तुके होनेमे आकुलता हो, चैन न पड़े, वही तो दुःख है। अतः जो यह वैषयिक सुख है वह भी दुःख रूप ही है; क्योंकि जव तक वह होते नही तव तक तो उनके सद्भावकी आकुलता रहती है और होने पर भोगनेकी आकुलता रहती है। आकुलता ही जीवको नहीं सुहाती। अतः वही दु.खावस्था है। भोगविषयिणी आकुलता दु:खात्मक है। इसमे तो किसीको विवाद ही नही। परन्तु शुभोपयोगसे सम्बन्ध रखनेवाली जो आकुलता है वह भी दु.खात्मक है। यदि ऐसा न होता तो उसके दूर करनेके अर्थ जो प्रयास है वह निरर्थक हो जावे। कहाँ तक इसकी मीमांसा की जावे। जो शुद्धोपयोगके प्राप्त करनेकी अभिलाषा है वह भी आकुलताकी जननी है। अत: जो भाव आकुलताके उत्पादक हैं वे सर्व ही हेय हैं। परन्तु संसारमे अधिकतर भाव तो ऐसे ही हैं और उन्हीके पोषक प्रायः सव मनुष्य हैं।

ईसरी
श्रावण कृष्ण १ सं० १९९६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३--५]

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

दशधा धर्मका पालन आपने सम्यक् रीतिसे किया होगा। हमने यथाशक्ति धर्म साधन कर पर्वकी पूर्णता की यह एक प्रकारसे पर्वके अनन्तर लिखनेकी पद्धति है। जैसे छोटी-छोटी लड़कियोमे गुड़ियोका खेल खेलनेकी पद्धति है। धर्म वस्तु तो निवृत्तिरूप है, प्रवृत्तिसे तो उसका आंशिक घात ही है। ऐसा न होता तो महाव्रतको साङ्गोपाङ्ग पालनेवाले श्री मुनि महाराजके

चारित्रको प्रमत्तचारित्र न कहते और यह प्रमत्तचारित्र करणानु-योगकी दृष्टिसे है। अथ च यदि इस प्रवृत्तिकी एकान्तसे मुख्यता हो जावे तब चारित्रका घात तो निर्विवाद ही है। सम्यग्दर्शनका भी घात दुर्निवार है। आजकलके वातावरणके जालमें आकर जीवोंने मूल धर्मकी विवेचना करनेवालोंको एक स्वरसे जैनधर्म-द्रोही बना दिया है और स्वकीय प्रवृत्तिको तथा अपनी जो शुभात्मक प्रवृत्ति हो रही है उसे ही निवृत्ति मार्गका साधक मान रहे हैं। सो इनके शुद्धोपयोग तो दूर रहो, अहम्मन्यताने इनके शुभोपयोगको भी कलङ्कित कर रक्खा है। अत. इन व्यवहाराभास-विषयक चर्चा करनेवाले मनुष्योंकी सङ्गति छोड़ना श्रेयस्कर है। इनका ही संसर्ग न छोड़ो किन्तु जो एकान्तकी मुख्यतासे निश्चय धर्मका मनन कर अपनेको परमार्थ मार्गका पथिक मान रहे हैं उनका भी समागम छोड़ दो। शुभोपयोगके त्यागसे शुद्धोपयोग नहीं हो किन्तु शुभोपयोगमें जो शुद्धोपयोगकी कल्पना है उसके त्याग और अन्तरङ्गमें रागादिकी निवृत्तिसे शुद्धोपयोग होता है। अत. ससार निवृत्तिके जो भाव हैं वही मोक्षमार्ग है। जब तक जीव इन भावोंके पात्र न होंगे, केवल कषायमय भावोंका आदर करेंगे, संसारके पात्र होंगे। अत. इस पर्वमें अविरुद्ध निवृत्ति तत्त्वकी चर्चा करना ही हमारा मुख्य ध्येय होना चाहिये। पर्व बहुत हैं परन्तु यह पर्व कुछ विशेषता रखता है। जैसे आष्टाह्निक पर्व है। उसमें श्री जिनेन्द्र देवके अकृत्रिम बिम्बों-की पूजाकी मुख्यता है। भगवान्के पञ्चकल्याणकके जो दिन हैं उनमें भी गर्भादिकी मुख्यतासे पूजन विधिकी मुख्यता है। षोडस-कारण व्रतमें उपवासादिकी मुख्यता है। एक यह दशलक्षण पर्व ही भगवान्के दीक्षा कल्याणककी तरह मुख्यता रखता है, जिसकी प्रभुता लौकान्तिक देवों की तरह विरले ही जानते हैं।

इसी पर्वके अन्तर्गत आकिंचन धर्मके दिवस रत्नत्रय व्रतका उदय हो जाता है, जो कि साक्षात् मोक्षमार्ग है। अतः इस व्रतकी सफलता उन्हीं भव्य जीवोंके होती है जिनके अभ्यन्तरमें कषायादि भावोंकी निवृत्ति होकर शान्तिरस आता है। अन्यथा रत्नद्वीपमें जाकर रत्नोंको पत्थर जान उनसे पराङ्मुख होकर रिक्तहस्त घर आनेके तुल्य है। या कोई कहे—

कहाँ गये थे ?
दिल्ली।
कितने दिन रहे ?
बारह वर्ष।
क्या व्यापार किया ?
भाड़ झोंका।
क्या खाया ?
चना।

अस्तु, इस विषयका विवेचन करना हम जैसे अनुभवशून्य प्राणियोंसे होना असम्भव है। अवगत १२ मासमें यदि प्रमादादि द्वारा हमसे जो अनुचित प्रवृत्ति हुई हो और उसके द्वारा जो आत्मघात किया हो तथा इसी तरह इस अज्ञानी जीवकी प्रवृत्ति यदि आपके विभाव भावमें कदाचित् निमित्त हुई हो तो उन भावोंको औदयिक तथा अनात्मीय जान शान्तिरसके ही रसिक बनना। आप तो स्वयमेव तात्त्विक ज्ञानी हैं। आपके इन कुत्सित भावोंकी सम्भावना नहीं। परन्तु मैंने अपनी शल्यको दूर करनेके लिये यह प्रयास किया है। होना भी असम्भव नहीं। कर्मोदयकी बलवत्तामें ग्यारहवें गुणस्थानसे भी पतन हो जाता है। इस पर्वका मुख्य फल क्षमादि भावोंका उदय है। जिनके कर्मकी बलवत्तासे यह न हो सके तब वे श्रद्धा ही इस तत्त्वकी करें। बुद्धिपूर्वक हमने भी

इस कार्यके करनेमें निष्प्रमादतया प्रयास किया है। फल क्या हुआ यह दिव्यज्ञानी ही जानें ऐसा सन्तोष करना अच्छा नहीं। यदि अन्तरङ्ग आत्मासे विचार करोगे तब तुम इसके ज्ञाता द्रष्टा स्वयं हो। तुम्हारे ज्ञानमें यदि उसका अस्तित्व न आया तब तुम्हारी प्रवृत्ति जो उत्तरोत्तर आत्माकी उत्कर्षताके लिये होगी, कैसे होगी? अत. इसका निष्कर्ष यही निकला कि हम स्वयं उसके ज्ञाता हैं। और एक दिन यही प्रयास करते-करते यहाँ तक उसकी सीमावृद्धि होगी कि हम स्वयं अनन्त सुखके पात्र होंगे। अत. दशधा धर्म पालनके इस तत्त्वको जान निरन्तर पर्व मनाना चाहिये; क्योंकि विशिष्ट कार्यकी उत्पत्ति विशिष्ट कारणसे ही होती है।

ईसरी आश्विन कृष्ण २, सं० १९९	आपका गुणानुरागी गणेश वर्णी

[३–६]

श्रीमान बाबा जी महराज, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया। मैंने स्वामिकार्तिकेय ग्रन्थ देखा। उसमें सामान्य वर्णन है, विशेषरूपसे वर्णन नहीं है। उसमें तो कुछ भी नहीं निकलता। हाँ, गुरु परम्परासे जो कुछ हो। फिर भी उत्सर्गमें और अपवादमें मैत्रीभाव रहना चाहिये। यदि अपवादमें लीन हो जावे तब असंयम ही के तुल्य हो जाता है। करना और बात है और कहना और बात है। अनादि कालसे इस अज्ञानी जीवने केवल इन बाह्य वस्तुओंके द्वारा ही कल्याणके मार्गको दूषित बना रक्खा है। वह चरणानुयोगके मार्मिक भावका वेत्ता न होकर केवल

बाह्य त्यागकी मुख्यताकर बाह्यका भी नाश करता है। बाह्य क्रिया वही सराहनीय है जो आभ्यन्तरकी विशुद्धतामे अनुकूल पड़े। केवल आचरणसे कुछ नहीं होता जब तक कि उसके गर्भमे सुवासना न हो। सेमरका फूल देखनेमें अति सुन्दर होता है परन्तु सुगन्धि शून्य होनेसे किसीके उपयोगमे नही आता।

ईसरी,
मार्गशीर्ष शुक्ल ६ सं० १९९६ } आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३--७]

मेरे परमोपकारी श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी महाराज,

योग्य प्रणाम

बहुत कालसे आपकी अनुपम अनुभूतिका प्रकाशक पत्र नहीं आया सो यदि नियममें बाधा न हो तो देना। महाराज क्या ऐसा भी कोई उपाय आपके दिव्य अनुभवमे आया है जो हम जैसे मूढ़ो के सुधारका हो। यदि नही है तब तो कथासे लाभ ही नहीं और यदि वह है तो कृपाकर उस उपायकी एक कणिका इधर भी वितरण कर दीजिये। बाह्य उपाय हमने भी बहुतसे किये परन्तु उनसे तो शान्तिकी गन्ध भी नही आई। क्या शान्तिका कारण इन उपायों का त्याग तो नही हैं ? सन्तोषके लिए इसे मान भी लिया जावे तब फिर उपायोके जालसे बचनेका कौन सा निरपाय उपाय है ? कुछ समझमे नही आता। क्या इन मन, वचन, कायके व्यापारोको निरहंकार, निर्माण सरल करना ही तो उपाय नहीं है। फिर भी यह शङ्का होती है कि निरहंकार निर्माण होनेके लिए क्या उपाय है ? यह अन्योन्यशृङ्खला कैसे दूर हो। यद्यपि महर्षियोने बाह्यसे

उस परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिका उपाय परिग्रहत्याग बतलाया है, परन्तु तत्त्वदृष्टिसे देखा जावे तो धनधान्य जो बाह्य हैं वे तो यदि भीतरी विचारोंसे देखें तो त्यागरूप ही हैं; क्योंकि वस्तु वास्तवमें अन्यापोह पूर्वक ही विधिरूप है। केवल आत्मगत जो मूर्च्छा है वही त्यागनेके लिये आचार्योंका इस बाह्य परिग्रह त्यागनेका मूल उद्देश्य है।

आपके निरीह परिवर्तनसे मैंने बाह्यसे बहुत सा उपाय बाह्य परिग्रहके त्यागका किया और करनेकी चेष्टा में हूँ। मेरे पास डाकखानेकी पुस्तकमें ७००) थे उनके रखनेका उद्देश्य यही था कि यदि कभी असातादिका उदय आया तो काम आवेंगे। परन्तु आपके व्रत को देखकर निश्चय किया कि भवितव्य अनिवार है, अत. उन्हें स्याद्वाद विद्यालयमें दे दिया और बाईजीके नामपर ४३००) के स्थानमें ५०००) करवा दिये। किन्तु फिर भी जो शांति का लाभ चाहिये वह नहीं हुआ। इससे यही निश्चय किया कि शांति बाह्य त्यागमें नहीं, आभ्यन्तर त्यागमें है। उसका अभी उदय नहीं है परन्तु श्रद्धा अवश्य है। शांतिका मार्ग अपने ही मे है, केवल एक गुत्थीके विदारणका पुरुषार्थ करना है पर वह इस पर्याय मे कठिन है। मेरी तो यह श्रद्धा है कि यदि जीव पर्यायके अनुकूल शांति करे तो कृतकार्य हो सकता है। देशव्रती यदि महाव्रतीके तुल्य क्षमादिक चाहे तो महाव्रती हो जावे। केवल वचनोंकी चतुरतासे शांति लाभ चाहना मिश्रीकी कथासे मीठा स्वाद लेने जैसा प्रयास है। अतः यही निश्चय किया कि जितनी पर्यायकी अनुकूलता है उतना ही साधन करनेसे कल्याण मार्गके अधिकारी बने रहोगे। पर्यायके प्रतिकूल कार्य करनेपर मेढकीके नालकी दशा होगी। इसीमें सन्तोष है।

आपके समागमसे और नहीं तो एक बात अवश्य अकाट्यरूप

से ध्यानमें आ गई है कि यह परिग्रह का संचय ही पापकी जड़ है। इसे उन्मूलित करना चाहिये। बाह्यरूपसे तो इसे उन्मूलितकर द्रव्यलिङ्गवत् बहुत बार स्वांग किया सो दिव्य ज्ञानका ही विषय है परन्तु जिसे मूर्छा कहते हैं वह कैसे जाती है, यह ग्रन्थी अभी तक नहीं खुली। खुलनेकी कुञ्जी ध्यानमे आती तो है, परन्तु वह इतनी चपल है कि एक सेकेण्ड तो क्या उसके सहस्रांश भी हाथ मे नही रहती। क्या बेढब गोरखधन्धा है! एक कड़ी निवारण करता हूँ तो अन्य आकर फँस जाती है। अतः इस गोरखधन्धाके सुलझानेके अर्थ केवल महती बुद्धिमत्ताकी ही आवश्यकता नहीं, साथ-साथ पुरुषार्थकी भी उतनी ही आवश्यकता है। शास्त्रोमे अनेक ऋषिप्रणीत उपायोकी योजना है, परन्तु उन सर्व उपायोमें वचनशैलीकी विभिन्नता है, न कि अर्थकी विभिन्नता। अतः किसी भी ऋषिके ग्रन्थका मनन कर निर्दिष्ट पथका अनुसरण कर अपनी मनोवृत्तिकी स्थिरताकर स्वार्थ या आत्माकी सिद्धि करना बुद्धिमान् मनुष्योका मुख्य ध्येय होना चाहिए। व्यर्थके झंझटोमें पड़कर बुद्धिका दुरुपयोग कर लक्ष्यसे च्युत होना अकार्यकर है। जितने अधिक बाह्य कारण संचय किये जायेंगे उतना ही अधिक जालमे फँसते रहेगे। अतः मैंने अब एक ही उपाय अवलम्बन करनेका निश्चय किया है। आजकल शारीरिक व्यवस्था कुछ अनुकूल नही। दशमी प्रतिमाके विषयमे श्रीमानोका जो उत्तर 'जैनसन्देश' मे है—अपवादरूपसे जल ले सकता है, इसमे ऐसा जानना कि अपवाद तो परमार्थसे कभी-कभी होता है यदि उसमे रत हो जावे तो यह मूलघात ही है।

ईसरी,
मार्गशीर्ष कृ० ४ सं० १९९६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

२

[३-८]

इच्छाकार

जिसे लोकमें स्वास्थ्य कहते है उसे जाननेकी आकांक्षा है। वास्तवमें जिसे स्वास्थ्य कहते हैं वह तो निवृत्तिमार्ग है। निवृत्ति-मार्गमें जो चल रहे हैं उनका स्वास्थ्य प्रतिदिन उन्नतिरूप ही होता जाता है। महाराज! मैं आपको व्यवहारसे अपना परम हितैषी मानता हूँ। आपके द्वारा तथा आपकी निरीहतासे मैंने बहुत कुछ लाभ उठाया है। उस ऋणको मैं इस पर्यायमें नहीं चुका सकता। स्वर्गीया श्री बाईजीकी वैय्यावृत्त्यका तो अन्तमे बहुत अशोंमे सन्तोष कर चुका परन्तु आपकी अन्त अवस्थाका दृश्य अब इस पर्यायमे देखनेको मिलना असम्भव है, ऐसे कारण उपस्थित हैं, फिर भी आपकी शान्तिका अभिलाषी हूँ। समाधिमरणके लिए कौन-कौनसे अस्त्र हैं वही संक्षेपमें मुझे लिख दीजिये। पुस्तकोंके तो थोड़े बहुत मैं जानता हूँ परन्तु आपके अनुभूत जाननेका अभि-लाषी हूँ; क्योंकि अब मेरी श्रद्धा इसी योग्य हो रही है। आशा है आप उपेक्षा न करेंगे।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-९]

इच्छाकार

महाराज! कषायोंके उदय नाना प्रकारके हैं परन्तु आप जैसे निस्पृह व्यक्तियोंके लिये नहीं। हम सदृश बहुतसे व्यक्ति उसके लिये हैं। आप तक उसका प्रभाव नहीं जा सकता। क्या ही सुन्दर पद्य श्री १०८ मानतुङ्ग मुनिराजने कहा है—

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैः
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥

और वास्तवमें श्री कुन्दकुन्द मुनिराजने समयसारमें कहा भी है—

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं।
ण दु ते मज्झ सहाया जाणगभावो दु अहमिक्को॥

आपकी प्रशममूर्ति रहने पर भी यदि बलभद्र आदिने ज्ञानामृत-का पान न किया तब फिर इस स्वातिकी बूँदका मिलना दुर्लभ ही नहीं किन्तु असम्भव भी है। अस्तु, अब क्या करें? जो होना होता है वह होकर ही रहता है। मैं चाहता हूँ आपकी उपदेशा-मृतपूरित पत्रिका एक माहमे एक मिलती जावे तो अच्छा है। इस अवस्थामे स्वात्मचर्चाको त्यागकर केवल विषयान्तरकी कथा उप-योगिनी नहीं। धनिक वर्ग धनको निज सम्पत्ति समझ रहे है जो कि सर्वथा विपरीत है।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-१०]

इच्छाकार

आपने लिखा सो अक्षरशः सत्य है कि आत्माका स्वभाव ज्ञाता दृष्टा ही है तथा तत्त्वदृष्टिसे दो भाव नहीं किन्तु एक ही भाव है। परन्तु पदार्थके द्विविधपनसे आत्माके ज्ञातृत्व और दृष्टत्व व्यवहार होता है। इसकी विकृतावस्थामें औदयिक रागादिकोकी

उत्पत्ति होती है। अथवा यों कहिये कि औदयिक रागादिक भावोंकी सहचारिता ही इसकी विकृतावस्था है। दीपकका दृष्टान्त जो दिया गया है वह पदार्थमें, उसमें जो ज्ञेयकी सरलता है और प्रकाशक भाव है वही वास्तविक दीपक है। अन्य जो विक्रिया है वह पवनादि निमित्तक है। यह बात लिखनेमें अति सरल है परन्तु जब तक प्रवृत्तिमें न आवे तब तक हम सरीखे अनुभवशून्य ज्ञानियोंका यह ज्ञान अन्धेकी लालटेनके सदृश है। आपकी बात नहीं, क्योंकि आप विशेष अन्तरङ्गसे एक विरक्त पुरुष हैं। सुख तो अन्तरङ्गमें रागादिक दोषके अभावमें है। उसके जाननेका उपाय यथार्थमें तत्त्वज्ञान है। तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिका मूल उपाय आगमाभ्यास और निरीह वृत्ति है।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-११]

इच्छाकार

मैं आपको उत्कृष्ट और महान् समझता हूँ। अत. आपके द्वारा मुझे खेद पहुँचा यह मैं स्वीकार नहीं करता। आपकी महती अनुकम्पा होगी यदि आप कार्तिक बाद दर्शन देंगे।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

क्षु० पूर्णसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षु० पूर्णसागरजी महाराज जिला सागरके अन्तर्गत रामगढ़ (दमोह) के रहनेवाले है ! जन्म तिथि आश्विन वदि १४ वि० सं० १९५९ है। पिताका नाम परमलाल जी और माताका नाम जमुनाबाई है और जाति परवार है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है और महाजनी हिसाब किताबका इनको अच्छा अनुभव है।

विवाह होने के बाद ये कुछ दिन अपने घर ही कार्य करते रहे। उसके बाद दमोह श्रीमान् सेठ गुलाबचन्द्र जीके यहाँ और सिवनी श्रीमन्त सेठ पूरणसाह जी व उनके उत्तराधिकारी श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी के यहां कार्य करने लगे। प्रारम्भसे धार्मिक रुचि होनेके कारण घरमें ही ये श्रावकधर्मके अनुरूप दया आदि आचारका उत्तमरूपसे पालन करते थे और किसीको विशेषतः एकेन्द्रियादि मूक प्राणियोंको कष्ट न हो इसका पूरा ख्याल रखते थे।

पत्नी वियोगके बाद ये घरमें बहुत ही कम समय तक रह सके और अन्त में श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजके शिष्य होकर गृहत्यागीका जीवन बिताने लगे। इस समय आप ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रत पाल रहे हैं। दीक्षा तिथि आश्विन वदि १ वि० सं० २००२ है। अपने कर्तव्यके पालन करनेमें ये पूर्ण निष्ठावान् हैं और मध्ययुगीन पुरानी सामाजिक परम्पराके पूरे समर्थक हैं।

इन्होने एक केन्द्रीय महासमितिकी दिल्लीमें स्थापना की है और उसके द्वारा अन्य संस्थाओंकी सहायता करते रहते हैं। पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके इन्हें जो पत्र प्राप्त हुए उनमेंसे उपलब्ध कुछ पत्र यहां दिये जा रहे हैं।

[४–१]

श्री क्षुल्लक पूर्णसागर जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। श्री १०८ पूज्य आचार्य महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है यह अवगत कर महती प्रसन्नता हुई। परन्तु थोड़े ही दिनोके पश्चात् जैनसन्देशमे महाराजका स्वास्थ्य फिरसे गिर रहा है बाँचकर अत्यन्त खेद हो रहा है। तत्त्वदृष्टिसे महाराजका स्वास्थ्य तो उत्तम ही है। हम जिस शरीरसे ममता रखते हैं महाराजने उसे पर समझा है। यह ही नहीं समझा, अटूट श्रद्धा भी तदनुकूल है। इतनेसे ही सन्तोष नहीं, आचरण भी उसी प्रकार है। यही कारण है जो इस प्रकार असह्य वेदना के निमित्त समुपस्थित होने पर स्वात्मरमण से विचलित नहीं होते। ऐसे महापुरुषोसे यह भू भूषित है। मैं आपको धन्य मानता हूँ जो ऐसे महापुरुषकी वैयावृत्य कर आत्माको कर्मभारसे मुक्त कर रहे हैं। मैं तो आप लोगोंके चरित्रकी भावनासे ही अपनेको मनुष्योंकी गणनामें मानकर प्रसन्न रहता हूँ। इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकता हूँ ? प्रथम पत्रमे कुछ विनय की थी, परन्तु श्री पूज्य महराज की आज्ञा विना असमर्थ हूँ। मुझे तो महाराजकी आज्ञा ही आगम है। मेरी वो यह दृढ़तम श्रद्धा है कि महापुरुषके जो उद्गार हैं वही आगम है, क्योंकि जिनके रागादि दोषोंकी निवृत्ति हो चुकी है उनकी जो वचनावली निकलेगी वह स्वपरकल्याणकारिका होगी तथा उनका जो आचरण है वही चरणानुयोग है। उनकी प्रवृत्तिको जो शब्दो में गुम्फित कर लिखा जाता है वही चरणानुयोग शब्दोंसे कहा जाता है। जहां उनका विहार होता है वही तीर्थ शब्दसे व्यवहार होता है। मेरी लेखनीमें यह शक्ति नहीं कि महाराजके चरित्रका अंश भी लिख सकूं। फिर भी अन्तरङ्गमें

व्यग्र नहीं, यह भी गुरु पदाब्जोके रजका प्रभाव है। मेरी प्रार्थना श्री पूज्य महाराजसे निवेदन करना जो मेरे योग्य जो आज्ञा हो शिरसा माननेको प्रस्तुत हूँ। ब्रह्मचारी लक्ष्मीचन्दजीसे इच्छाकार कहना। उन्हें क्या लिखूं? वह तो महाराजके अनन्य चरणानुरागी है।

शान्तिनिकुञ्ज, सागर
आषाढ वदी ४, सं० २००८ } आ. शु चि.
गणेश वर्णी

[४—२]

श्रीयुत १०५ क्षु० पूर्णसागरजी महाराज,

योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। श्री १०८ पूज्य आचार्य महाराज के वैयावृत्त तपका अवसर आप महापुरुषोको प्राप्त हुआ। धन्य-भाग्य आपका जो अन्तरङ्ग तप अनायास हो रहा है। हम तो अनुमोदना करके ही सन्तोष कर लेते हैं। मेरी तो आचार्य महाराजके चरणोमे जो श्रद्धा है सो उसीके प्रसादसे अपनेको कृत-कृत्य मानता हूँ। महाराजकी आज्ञा नहीं हुई अन्यथा मैं वहीं आ जाता। और वैयावृत्य कर जन्म सार्थक करता। परन्तु 'गुरोराज्ञा गरीयसी' जान सन्तोष किया। यदि आयु शेष है तब एक बार महाराजका दर्शन होगा, अन्यथा परलोकमे तो नियमसे होगा। संसारका कारण मोह है। जिसने इसपर विजय प्राप्त की वह परमात्मपदका अधिकारी है। परमात्माकी उपासना व जपसे परमात्मा नहीं होता। परमात्माप्रतिपाद्य मार्ग पर चलनेसे परमात्मा हो जाता है।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे वन्धो या स्याज्जीवित्ते स्पृहा॥

मैं न तो देह हूँ और न मेरी देह है और मैं न जीव हूँ। दश प्राणधारी जीव भी नहीं हूँ। वन्धका कारण जीव (दश प्राण-धारी) पर्यायमें जो श्रद्धा है अर्थात् इस पर्यायमें जो निजत्वकी श्रद्धा है वही वन्ध है; क्योंकि यह प्राण औपाधिक हैं, आत्माका स्वरूप नहीं। अनादिकालसे हमारी पर्यायबुद्धि रही। इसीसे भव भ्रमण हो रहा है। अतः पुरुषार्थ इस प्रकार किया जावे कि ये उपद्रव शान्त हो जावें।

शान्तिनिकुञ्ज, सागर
आषाढ़ सुदी २, सं० २००६ } आ शु चि.
गणेश वर्णी

[४-३]

योग्य इच्छाकार

आपका परम सौभाग्य है जो साक्षात् महाराजकी वैय्यावृत्य कर शेष संसारकी निर्जरा कर रहे हैं। श्री लक्ष्मीचन्द्रजी! तुम्हें क्या लिखें? तुम तो विना ही तपस्वी वने वैय्यावृत्य कर तपस्वी सदृश लाभ ले रहे हो। हमारी सुधि महाराजको दिलाते रहना।

शान्तिनिकुञ्ज,
सागर } आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

क्षु० मनोहरलालजी वर्णी

श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णीका जन्म कार्तिक कृष्णा १० वि० सं० १९७२ को झांसी जिलाके दुमदुमा ग्राममें हुआ है। इनके पिताका नाम गुलाबरायजी और माताका नाम तुलसाबाई है जो अब परलोकवासी हो गये हैं। जन्म नाम मगनलालजी और जाति गोलालारे है। प्रायमरी स्कूलकी शिक्षाके बाद संस्कृत शिक्षाका विशेष अभ्यास इन्होंने श्री गणेश जैन विद्यालय सागरमें किया है और वहींसे न्यायतीर्थ परीक्षा पास की है। प्रकृतिसे भद्र देख वहाँ पर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया था।

विवाह होनेके बाद गृहस्थीमें ये बहुत ही कम समय तक रह सके हैं। अन्तमें पत्नीका वियोग हो जानेसे ये सांसारिक प्रपञ्चोंसे विरक्त हो गये और वर्तमानमें ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रत पालते हुए जीवन संशोधनमें लगे हुए हैं। इनके विद्यागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज ही हैं। वर्तमानमें ये सहजानन्द महाराज तथा छोटे वर्णीजी इन नामोंसे भी पुकारे जाते हैं।

इन्होंने सहजानन्द ग्रन्थमाला इस नामकी एक संस्था स्थापित की है। इसमें इनके द्वारा निर्मित पुस्तकोंका प्रकाशन होता है। इन्होंने एक अध्यात्म गीतकी भी रचना की है। इसका प्रारम्भ 'मैं स्वतन्त्र निर्मल निष्काम' पदसे होता है। आज कल प्रार्थनाके रूपमें इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। अध्यात्म विद्या (समयसार) के ये अच्छे वक्ता हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके लिए विशेष शुभाशीर्वाद प्राप्त है। प्रारम्भसे अबतक पूज्य वर्णीजी महाराजने उत्तरस्वरूप इन्हें जो पत्र लिखे हैं उनमेंसे कुछ उपलब्ध हुए पत्र यहां दिये जा रहे हैं।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे वन्धो या स्याज्जीविते स्पृहा॥

मैं न तो देह हूँ और न मेरी देह है और मैं न जीव हूँ। दश प्राणधारी जीव भी नहीं हूँ। वन्धका कारण जीव (दश प्राण-धारी) पर्यायमें जो श्रद्धा है अर्थात् इस पर्यायमें जो निजत्वकी श्रद्धा है वही वन्ध है, क्योंकि यह प्राण औपाधिक हैं, आत्माका स्वरूप नहीं। अनादिकालसे हमारी पर्यायबुद्धि रही। इसीसे भव भ्रमण हो रहा है। अत. पुरुषार्थ इस प्रकार किया जावे कि ये उपद्रव शान्त हो जावें।

शान्तिनिकुञ्ज, सागर
आषाढ़ सुदी २, सं० २००६ }

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

[४-३]

योग्य इच्छाकार

आपका परम सौभाग्य है जो साक्षात् महाराजकी वैय्यावृत्य कर शेष ससारकी निर्जरा कर रहे हैं। श्री लक्ष्मीचन्द्रजी! तुम्हें क्या लिखें? तुम तो विना ही तपस्वी वने वैय्यावृत्य कर तपस्वी सदृश लाभ ले रहे हो। हमारी सुधि महाराजको दिलाते रहना।

शान्तिनिकुञ्ज,
सागर }

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

क्षु० मनोहरलालजी वर्णी

श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णीका जन्म कार्तिक कृष्णा १० वि० सं० १९७२ को झांसी जिलाके दुमदुमा ग्राममें हुआ है। इनके पिताका नाम गुलाबरायजी और माताका नाम तुलसाबाई है जो अब परलोकवासी हो गये हैं। जन्म नाम मगनलालजी और जाति गोलालारे है। प्रायमरी स्कूलकी शिक्षाके बाद संस्कृत शिक्षाका विशेष अभ्यास इन्होंने श्री गणेश जैन विद्यालय सागरमें किया है और वहींसे न्यायतीर्थ परीक्षा पास की है। प्रकृतिसे भद्र देख वहाँ पर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया था।

विवाह होनेके बाद गृहस्थीमें ये बहुत ही कम समय तक रह सके हैं। अन्तमें पत्नीका वियोग हो जानेसे ये सांसारिक प्रपञ्चोंसे विरक्त हो गये और वर्तमानमें ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रत पालते हुए जीवन संशोधनमें लगे हुए हैं। इनके विद्यागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज ही हैं। वर्तमानमें ये सहजानन्द महाराज तथा छोटे वर्णीजी इन नामोंसे भी पुकारे जाते हैं।

इन्होंने सहजानन्द ग्रन्थमाला इस नामकी एक संस्था स्थापित की है। इसमें इनके द्वारा निर्मित पुस्तकोंका प्रकाशन होता है। इन्होंने एक अध्यात्म गीतकी भी रचना की है। इसका प्रारम्भ 'मैं स्वतन्त्र निर्मल निष्काम' पदसे होता है। आज कल प्रार्थनाके रूपमें इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। अध्यात्म विद्या (समयसार) के ये अच्छे वक्ता हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके लिए विशेष शुभाशीर्वाद प्राप्त है। प्रारम्भसे अबतक पूज्य वर्णीजी महाराजने उत्तरस्वरूप इन्हें जो पत्र लिखे हैं उनमेंसे कुछ उपलब्ध हुए पत्र यहां दिये जा रहे हैं।

[५—१]

श्रीयुत महाशय प० मनोहरलालजी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके भाव प्रशस्त हैं। आपने जो विचार प्रकट किया वह अति उत्तम है। किन्तु शीघ्रता न करना। काल निकृष्ट है। मेरी तो यह सम्मत्ति है कि आप २ वर्ष सागर-विद्यालयमें रहे और धर्मशास्त्र तथा साहित्यका अध्ययन करें। तत्पश्चात् जो आपकी इच्छा हो वही करें। सबसे उत्तम तो यही है कि उस प्रान्तमे बरुवासागरमे रहकर वहाँकी पाठशालाका उद्धार करे। वह प्रान्त अति दुखी है। जलवायु भी उत्तम है। रुपया जहाँ कहोगे वहाँ जमा कर देवेगे। परन्तु अभी जायदादको न बेचो। मेरा आपसे अति स्नेह है; क्योंकि आप एक धार्मिक स्वावलम्बीके पुत्र हैं।

ईसरी
चैत्र शुक्ल ४ सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२]

श्रीमान् प० मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके विचार प्रस्तुत्य है और मैं आपसे अन्तरङ्गसे प्रसन्न हूँ, क्योंकि आपके पितासे जो कि एक धार्मिक जीव थे, हमारा घनिष्ट सम्बन्ध था। मेरी तो यह धारणा है जो आपके द्वारा समाजका बहुत हित हो सकता है। आप ब्रह्मचर्य्यव्रत पालें या ब्रह्मचारी होकर सप्तम प्रतिमाको

अङ्गीकार करे। किन्तु यदि आप दो वर्ष सागर रहकर साहित्य और धर्मशास्त्रका अध्ययन करे तब बहुत ही उत्तम कार्य होगा। जब आपने घर त्याग दिया तब आपके द्वारा उत्तम ही कार्य होगा। सागर आपको अनुकूल होगा। मै श्री पण्डित दयाचन्दजी और श्री पण्डित पन्नालालजीको लिख दूंगा। आपको कोई कष्ट न होगा। बनारसमे भी प्रबन्ध हो सकता है, परन्तु वहाँ शुद्ध भोजनकी व्यवस्था कठिनतासे होगी। रुपया आपका आपके अभिप्रायके अनुकूल ही व्यय होगा। आजीवन आपको व्याज मिल जावेगा। आपके छोटे भाईकी क्या व्यवस्था है? द्रव्यलिङ्गी का उत्तर मोक्षमार्गसे जानो।

ईसरी वैसाख कृष्ण ४ सं० २०००	आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[५—३]

श्रीयुत पं० मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने जो विचार किये, बहुत उत्कृष्ट हैं। मेरी तो यही सम्मति है जो आप अपना अमूल्य समय अब एक मिनट भी नही खोवें। जितना शीघ्र आप अध्ययन कार्य कर सके, अच्छा है। हमें विश्वास है जो आपकी आत्मासे आप ही का नहीं अनेकोंका कल्याण होगा। वर्षा ऋतुके योग्य यह क्षेत्र नहीं। यहाँ प्रायः उस ऋतुमे मलेरिया हो जाता है। अतः इस ओर शीतकालमे आना अच्छा है। हम २७ माससे मलेरियाके मित्र बन रहे हैं। कभी १० दिन बाद तो कभी १५ दिन बाद और कभी एक मासमे अपनी प्रभुता दिखा जाता है। अस्तु, आपको जो इष्ट हो सो करना। परन्तु हम आपका हित चाहते हैं।

आपका क्षयोपशम अच्छा है और हमें आशा है जो उसका सदुपयोग होगा। अब भी कुछ नहीं गया है। पारसनाथ नहीं लिखना चाहिए।

ईसरी
वैसाख सुदी ५ सं० २००० }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४]

श्रीयुत भव्यमूर्ति पं० मनोहरलालजी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके विचार प्रशस्त हैं। उस विषयमें हम आपको कुछ नहीं कहना चाहते हैं। व्रतग्रहण के पहिले एक वार आप सागारधर्मामृतको देखें। परिग्रहका प्रसार दुःखमूलक शल्य है यह जो लिखा सो ठीक है। परन्तु इतनी मूर्च्छा भी तो नहीं गई जो उसके विना जीवन निर्वाह हो सके। सर्वोत्तम पद तो निर्ग्रन्थ ही है। किन्तु उस योग्य परिणाम भी तो होना चाहिये। वातको कह देना जितना सरल है, उतना कार्यमें परिणत होना सरल नहीं। आप ब्रह्मचर्यव्रत पालो, इससे उत्तम और क्या है? किन्तु उद्वेगसे कोई लाभ नहीं। एकवार आप आवेंगे, सर्व व्यवस्था उस समय ही निश्चित होगी। हमारी तो यह सम्मति है कि अभी आपके जो विचार हैं, स्थिर रक्खें, किन्तु प्रकाशित मत करें। समय पाकर आप ही व्यक्त हो जावेंगे। आप यदि कुछ काल अध्ययन करेंगे तब बहुत कुछ परका उपकार कर सकेंगे। अपना उपकार तो सर्व कोई कर सकता है, परका उपकार विशिष्ट पुण्यशाली ही कर सकता

है। जायदादके विषयमे बाबू रामस्वरूपकी सम्मतिसे कार्य करना। श्री श्रेयांससे भी सम्मति लेना।

ईसरी
वैसाख शुक्ल ११ सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--५]

इच्छाकार

सागरमे जितनी अधिक संस्था होगी, उतनी ही अधिक प्रबन्धादिकी असुविधा होगी। तथा जो मूल कारण धन है वह वहाँ अत्यन्त न्यून है। लोग उस प्रान्तमे वास्तविक कार्योंमे धन नहीं देना चाहते। हमने कई पत्र वहाँ दिये हैं? यदि उनकी पूर्ति होनेकी चेष्टा हुई तब हम एक बार उस प्रान्तमे आवेंगे और बनारस छोड़ते ही परिग्रहके भारसे मुक्त होगे। केवल वस्त्र और पुस्तकोको छोड़ सर्व द्वन्द्वसे छूट जावेगे। देखें, कौन धर्मात्मा इसमे सहायक होता है। आप मंत्री, सिंघईजी आदिसे मिलकर उत्तर देना।

ईसरी,
आश्विन कृष्ण १, सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--६]

दर्शनविशुद्धि

जिसमें आपकी आत्मा निरन्तर पवित्रताकी ओर जावे वही यत्न करिये। जहाँ आपको शान्ति मिले वहीं रहो। यदि सागर में हमारी अभिलाषाकी पूर्ति होनेकी चेष्टा होगी तब एक बार उस प्रान्तमे आवेंगे। मेरी सम्मति सागरमें उदासीनाश्रम की नहीं,

फिर जो भगवानने देखा होगा। सागरमें जिज्ञासु १० भी हों. भोजन मिल सकता है। फिर भोजनशाला खोलना अच्छा नहीं। यह उदासीनाश्रम कुछ काल बाद भट्टारकोंकी गद्दी धारण करेंगे।

ईसरी,
आश्विन कृष्ण २, सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-७]

श्रीयुत महाशय पं० मनोहरलालजी,

योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मैं कोडरमा आगया और यहाँ से अगहन वदि ३ को चलूंगा और अगहन वदि १० या ११ तक गया जाऊँगा। सागर समाजकी इच्छा। हम इस अभिप्रायसे नहीं आते जो किसीको कष्ट हो। केवल अन्तरङ्ग भावना देशके बालकोंके उद्धार की हो गयी। याचना तो हम भगवानसे भी नहीं करते। हाँ, उनके चरणोंमें दृढ़ अनुराग है, किन्तु लौकिक कार्य के लिये नहीं। बनारस कब पहुँचेंगे, गया जाकर लिखेंगे। हम वहाँ आते हैं सो प्रान्त भरमें भ्रमण करेंगे। सर्व मनुष्योंसे लाभ उठायेंगे। सागर अधिकसे अधिक ८ दिन रहेंगे।

कोडरमा,
कार्तिक सुदि ११ सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-८]

श्रीयुत ब्र० मनोहरलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपकी इच्छा जहाँ चाहे जाओ। जिसमें आपकी आत्माको शान्ति मिले, करो। करते भी

यही हो। हमने लिखा सो मोहसे लिखा। हमारा विश्वास है—कोई किसीका न मित्र है न शत्रु. न हितकारी न विपरीत। मोहमे सर्व दिखा रहा है। मेरा निजका विश्वास है—वीतराग सर्वज्ञ भी किसीके हितकर्त्ता नही। विशेष क्या लिखूँ। सिघईजी से दर्शन विशुद्धि। हमने जो लिखा था उसका उत्तर तुमने उनसे नहीं पूँछा। श्रुतपञ्चमीका उत्सव कर जाना अच्छा है।

शुभ मिति ज्येष्ठ वदि १३, } आ० शु० चि०
सं० २००२ } गणेश वर्णी

[५-६]

श्रीयुत महाशय ब्र० मनोहरलाल जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

मुझसे कल सागरके महाशयोंने जबरन सागर आनेके लिये वचन ले लिया। पहले तो मोटरमे चलो, नहीं तो डोलीसे चलो। युक्तियोकी कमी नहीं थी। आपको चलना चाहिये—चाहे सुखसे पहुँचो, चाहे दुखसे पहुँचो। अस्तु मैं कल चलूँगा। प्रबन्ध क्या है सो दैव है। मेरा भाव जो है सो आप जानते हैं। आप यदि मेरी सम्मति मानें तब; मानोगे तो नही। जो मनमें आवेगी, करोगे। फिर भी गृहस्थोके चक्रमे न पड़ना तथा निरपेक्ष त्यागी रहना। पत्थर पर सोना पर चटाई न मॉगना। लॅगोटी न मिले तब द्रव्य मुनि ही बन जाना पर लॅगोटी न मांगना। सूखी रोटी मिल जावे पर घी की इच्छा मत करना। मैं इन कष्टोको जानता हूँ। यदि गर्मीके प्रकोपने न सताया तब दश दिन बाद आप त्यागी वर्गके क्षुल्लक महाराजोंके दर्शन करूँगा। तथा विद्वानोके भाषण सुनूँना। विद्वद्गणसे मेरी जो उनके योग्य हो, कहना। कहना—

विद्वत्ताकी प्राप्ति भाग्यसे होती है। जितना उसका उपयोग बने करलो। स्थायी वस्तु नहीं परन्तु स्थायी पदका कारण है। प्रातः कालसे लू चलती है। फिर सागरवालोंने मेरे ऊपर परम अनुकम्पा की जो परीषह सहनेका अवसर दिया। क्या कहूँ, मेरी मोहकी सत्ता इतनी प्रवल है कि जो मैं झटिति चक्रमे आ जाता हूँ। मेरी जो भावना है सो वहीं पर कहूँगा।

शाहगढ़,
ज्येष्ठ सुदि ४, सं० २००४

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१०]

श्रीयुत महाशय ब्र० मनोहर लाल जी.

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। उपदेश क्या लिखें-निरपेक्षता ही परम धर्म है। हम और आपको यही उपादेय है। मैं पहिले सागरके लिये उन्हीं लोगोंकी सापेक्षताका पक्षपाती था। सिंघई जीसे वहुत कुछ आशा रखता था। परन्तु अब यही निश्चय किया जो हो अपनेको तटस्थ रहना। मैं तो द्रोणगिरिसे वरुआसागर ही जाता था। साधनोंके अभावसे यहीं 'पुनर्मूषको भव' की कथाको चरितार्थ करनेके लिये आ रहा हूँ। परन्तु उपयोग वरुआसागर पर है। आषाढ़ वदि ३ तक सागर पहुँचूँगा। २४ घण्टे गर्मी रहती है परन्तु इस गर्मीका तो प्रतिकार प्रतिदिन हो जाता है। जो आताप आत्मस्थ है, उसका प्रतिकार पास होने पर भी अभी दूर है। यह आताप जो वाह्य है उसका तो सरल उपाय है। प्रायः सर्व ही उपकार कर देते हैं। जो आभ्यन्तर आताप है

उसको दूर करनेके लिये किसीकी अपेक्षा को आवश्यकता नहीं। परकी सहायता न चाहना ही इसका मूल उपाय है। परन्तु हम लोग इसके विरुद्ध चलते है, यही महती भूल है। आने पर जो मेरा भाव है, व्यक्त करूँगा।

आ० शु० चि०

ज्येष्ठ सु० १३, सं० २००४ } गणेश वर्णी

[५-११]

श्रीयुत पं० मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अब उत्तम है। अच्छे संयमका इतना भी फल न होगा क्या ? आप मेरी सर्व धर्मानुबन्धुओंसे दर्शन-विशुद्धि कहना। मेरा तो जबलपुरमे रहनेसे आभ्यन्तर लाभ नही हुआ। हाँ, इतना अवश्य हुआ, जनता प्रतिदिन ३००० से कम नही आती थी। श्रद्धापूर्वक शास्त्रमे बैठती थी। विशेष वक्ता पं० कस्तूरचंद जी, पं० शिखरचन्द्र जी तथा ब्र० चम्पालाल जी व हम भी प्रातः सामान्य वक्ता हो जाते थे। शान्तिका उदय जब हममे ही नही, तब समाजको हमारे द्वारा शान्ति मिलना दुर्लभ है।

आ० शु० चि०

जबलपुर } गणेश वर्णी

[५-१२]

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहर वर्णी जी,

योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे मुझे परम आनन्द हुआ। आप मेरे निमित्तका कोई भी विकल्प न करें। आपके प्रबन्धसे गुरुकुल की उन्नति हो

यही हमारी भावना है। मैं प्राय: सरल प्रकृतिके द्वारा प्रत्येक व्यक्तिके चक्रमें आ जाता हूँ। फल उसका विपरीत ही होता है। मेरा स्वास्थ्य अवस्थाके अनुरूप पक्वपानसदृश है। परन्तु इससे मेरे चित्तमें अशान्ति नहीं। जब मेरी अन्तिम दशा होगी, आप को बुलाऊँगा। मुझे हृदयसे विश्वास है. जो आप मेरे समाधि-मार्गमें आचार्यका कार्य करेंगे। पवनकुमार निर्मल व्यक्ति हैं। वैयावृत्त्य तपके अधिकारी हैं। मेरा आशीर्वाद कहना। श्री जीवा-नन्दसे इच्छाकार तथा अन्य मण्डली महाशयोंसे यथायोग्य इच्छाकारादि कहना।

आ० शु० चि०
सागर } गणेश वर्णी

[५-१३]

श्रीयुत ब्र० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

सुमेरचन्दजीका समागम आपको अचल बनावेगा। श्री चम्पालाल तो चम्पाकी सुगन्ध हैं। थिरताकी आवश्यकता कार्य जननी है। यहाँसे आप लोग चले गये; इसका हमें अणुमात्र भी खेद नहीं। आप कृतसफलीभूत हैं यह भावना है। इसका अर्थ परिणामोंमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं आना चाहिए। जितना दो लाखका होना कठिन नहीं उतना कर्तृत्वका अभिमान जाना कठिन है। दो लाख होने पर लौकिक प्रतिष्ठा मिल सकती है। कर्तृत्वभावनाके जानेसे अलौकिक सुख की प्राप्ति होना सरल है। यद्यपि आप तीनों (ब्र० मनोहर, ब्र० सुमेरचन्द तथा ब्र० चम्पा-लाल) रत्नत्रय मिलकर, जो चाहें. सो कर सकेंगे, किन्तु तीनोंकी

एकता न विघटना चाहिये। प्रतिज्ञाका निर्वाह करना तथा ऐसा करना जो कार्यमें सहायक होते हुए भी धर्मके पात्र हो।

मढ़ियाजी जबलपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--१४]

श्री महाशय १०५ क्षुल्लक सदानन्द जी,
योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। आँखके ऊपर फुड़िया शान्त हो गई होगी। जीवानन्द वास्तव नित्यानन्द हैं। सन्तोषी हैं। और सर्व आनन्दोंसे इच्छाकार। विशेष क्या लिखें ? सहजानन्दके सामने अन्य सर्व आनन्द फीके है।

कातिक सुदी १५,
सं० २००५ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--१५]

श्रीयुत वर्णी जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। निरुद्देश्य बुलाना कोई तत्त्व नही रखता। निरुद्देश्य दिल्ली गये उसका कोई फल नहीं। ऐसे ही मुजफ्फरनगर बुलाकर क्या लाभ मिलेगा यह बुद्धिमें नही आता। केवल बाह्य धन्यवाद प्रणालीसे कृतकृत्य मान लेना मैं उचित नहीं मानता। अभी आप वहाँ पर है और आपकी शान्तिसे वहाँका वातावरण अच्छा है हमको इसमें प्रसन्नता है, किन्तु हमारे आनेसे विशेष क्या होगा यह हमारे ज्ञानमे जब तक न आ जावे हम वहाँ आवे बुद्धि में नही आता। अतः आप पञ्च महाशयोंसे स्पष्ट कह दो—यदि कोई विशेष कार्य हो तब हमको

लिखित जो हम गयावालोंसे इन्कार करनेका प्रयत्न करें, अन्यथा इसे उष्णकालमें यात्रा करें यह उचित नहीं।

शास्त्र सुनते जावो. चौथा काल वर्त्त रहा है बोलते जावो. धन्य धन्यकी झंकार करते जावो। मैं तो इन बाह्य आडम्बरोंसे ऊब गया हूँ। मैं तो उस दिनसे अपनेको मनुष्य मानूँगा जब पञ्चपरमेष्टीका स्मरण भले ही न करें किन्तु उनने जो मार्ग बताया है उस पर अमल करें। तभी इस धर्मके मर्मको समझूँगा. अतः हमारे अर्थ प्रयास न करना। हम अब इच्छापूर्वक जहाँ जावे जाने दो। वहाँ भी आ सकते हैं परन्तु आपकी प्रतिबन्धकता नहीं चाहते।

ज्येष्ठ बदी ६ | आ० शु० चि०
सं० २००६ | गणेश वर्णी

[५-१६]

श्रीयुत महाशय वर्णी मनोहरलालजी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ गया था, पर पैर चलना कठिन था। अब अच्छा है। आज ५० हाथ चले। ज्वर प्रतिदिन आता है। अब आशा है वह भी शान्त हो जावेगा। मैं तो आपके प्रति निरन्तर यही भावना भा रहा हूँ जो आपको पंडिताऊपन किसीका न करना पड़े तथा ऐसी वृत्ति शीघ्र ही हो जावे जो कहीं मान न चूमने पड़े। आप विज्ञ हैं। हमारी चिन्ता न करिये। बा० भगवानदासजीसे इच्छाकार तथा बा० मूलचन्दजीसे इच्छाकार।

ज्येष्ठ बदी १ | आ० शु० चि०
सं० २००६ | गणेश वर्णी

[५-१७]

श्रीयुत महाशय वर्णी मनोहरलालजी साहब,

योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मेरा तो यह विश्वास है कि संसारमे कोई किसीका नहीं, यह तो सिद्धान्त है। साथ ही यह निश्चय है कि कोई किसीका उपकारी नहीं। इसका यह अर्थ नहीं जो मैंने आपका उपकार किया हो और न यह मानता हूँ जो आप मेरा उपकार करेंगे। हाँ यह व्यवहार अवश्य होगा जो वर्णीजीकी वर्णी मनोहरने सम्यक् सल्लेखना करायी। परन्तु मेरा तो यह कहना है—जो आपने गुरुकुलकी नींव डाली है उसे पूर्ण करिये। हमारी चिन्ता छोड़िये। हमारी सल्लेखना हमारे भवितव्यके अनुकूल हो ही जावेगी। अथवा आप लोगोंके भव्य भावोंसे ही हमारा काम बन जावेगा। वहाँ पर जो ब्रह्मचारी सुन्दरलालजी उनसे इच्छाकार, श्री जीवारामजी से इच्छाकार। वहाँकी समाजसे यथायोग्य। वहाँ जो हकीमजी हैं उनसे आशीर्वाद।

इटावा प्रथम आषाढ़ बदी १३, सं० २००७	}	आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[५-१८]

श्रीयुत महानुभाव क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी,

योग्य इच्छाकार

आप कैराना गये, अच्छा किया। मेरी सम्मत्ति तो यह है—वहाँ गर्मीके १० दिन या १५ दिन बिताकर आपको मुजफ्फरनगर ही रहना चाहिये। वहाँकी जनता बहुत ही धर्मपिपासु है। तथा

धर्मपिपासुके साथ साथ उदार भी है। गुरुकुलकी रक्षा होगी तब उससे ही होगी। सहारनपुरका तो है ही, उनकी तो उस पर सदा देखरेख रहेगी ही। गुरुकुलसे उदासीन रहना सर्वथा ही अनुचित है। अत. आप सर्व विकल्प छोड़ मुजफ्फरनगर जाइए। हम तो १५० मील दूर हैं। इस वर्ष तो किसी भी प्रकार नहीं आ सकते। बीचमें ही रहनेसे कुछ लाभ नहीं तथा अब हमारी शक्ति भी नहीं जो १ घंटा भीड़में शास्त्र पढ़ सकें। लोगोंका प्रेम शास्त्र पढ़नेसे है, होना ही चाहिए। अगर शास्त्र न सुनाया जावे तब वह क्यों इतना कष्ट उठावें। मेरी तो यही धारणा है—आज कल आदर्श मनुष्य तो विरला ही होगा। आदर्श और वक्ता यह तो अतिकठिन है। मेरी धारणा है, मिथ्या भी हो सकती है। अस्तु, अभी आपकी अवस्था इसके अनुरूप है। अतः एक स्थानको लक्ष्य करके उसका उपयोग कर लो। उत्तरप्रान्तका गुरुकुल आपकी अमर कीर्ति रहेगी। इसका यह अर्थ नहीं कि आपको इच्छा यशकी है, परन्तु जनता तो यही कहेगी—वर्णी मनोहर हमारे प्रान्तका उपकार कर गए। हमारा तो न अब उपकारमें मन जाता है और न अनुपकारमें ही जाता है। इसका यह अर्थ नहीं जो इससे परे हैं। शक्तिहीनसे उपकार अनुपकार नहीं बन सकते। अन्तरङ्गसे तो कषाय अनुरूप परिणाम होते ही हैं।

प्रथम आषाढ वदी १४, सं० २००७ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[५-१६]

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने प्रसन्नता हुई और आपका समागम मुझे इष्ट है। परन्तु आप जानते हैं—मैं स्वप्नमें भी गुरु नहीं

बनना चाहता। परमार्थसे है भी नहीं। सर्व आत्माएँ स्वतन्त्र है। जिसमें आपको शांति मिले सो करे।

कार्तिक सुदी १, सं० २००७ — आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[५-२०]

श्रीयुत महाशय वर्णी जी मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, हमारा स्वास्थ्य अच्छा है इसकी कोई चिन्ता न करो। आप सब विकल्प त्यागो। कोई प्रसन्न हो या कोई अप्रसन्न हो, अपनी आत्मा प्रसन्न रक्खो। आत्मीय परिणति ही कल्याणका प्रयोजक है। फिर आप तो जिनागमके मर्मज्ञ हैं। इतनी आकुलता क्यो रखते हो? यदि गुरुकुल चलानेकी इच्छा है तब उस प्रान्तके जो विज्ञ पुरुष हैं उनके साथ परामर्श कर जो मार्ग निकले उस पर अमल करो। अन्यथा विकल्प छोड़ो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२१]

श्रीयुत वर्णी जी क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्दसे है बाँचकर प्रसन्नता हुई। हम चैत्र सुदी १५ तक यहीं रहेंगे और फिर भी ८ दिन और रहेंगे। आप निर्विकल्प रहो और आत्मशुद्धि करो। कोई शक्ति न तो आत्मीय कल्याणमे बाधक है और न साधक है। हम स्वयं साधक बाधक अपने परिणाम द्वारा उसे मान लेते हैं। इसका अर्थ यह नही कि निमित्त कोई नहीं–अर्थात् मोक्ष भी जब होगा तब उस समय क्षेत्रादि भी तो होगे, उन्हे कौन निवारण कर सकता है? अत.

आनन्दसे धर्म साधन करो और किसीसे भय न करो। परिणाम मलीन न हो यही चेष्टा करो। हम क्या लिखें? स्वयं गल्पवादमें पड़े हैं। हमको तो इसकी प्रसन्नता होती है जो कोई शुद्ध मार्गमें रहे।

चैत्र सुदी १०. } आ० शु० चि०
सं २००८ } गणेश वर्णी

[५-२२]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

अपवाद मार्ग भी है परन्तु उत्सर्ग निरपेक्ष नहीं। उत्सर्ग भी है परन्तु वह भी अपवाद निरपेक्ष नहीं। वह कब और किस प्रकार होता है इसका कोई नियम नहीं, साधकके परिणामोंके ऊपर निर्भर है। आपने लिखा—मैं अगहनमें आऊँगा। मुझे आपका सहवास सदा इष्ट है। इससे विशेष क्या लिखूँ? मेरा वृद्ध शरीर चल नहीं सकता। ४ मील चलना कठिन है। अस्तु जहाँ तक बनेगा निर्वाह करूँगा। मेरा श्रीयुत जीवारामजीसे स्नेह इच्छाकार कहना। वह बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं।

बरुआसागर } आ० शु० चि०
वैसाख बदी ४, सं० २००८ } गणेश वर्णी

[५-२३]

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

मेरा तो यह विश्वास है जो परके कल्याण मार्गका कर्तृत्वभाव भी मोक्षमार्गका साधक नहीं। मोक्षमार्गका साक्षादुपाय रागादि दोषनिवृत्ति है। रागादिककी अनुत्पत्ति ही संवर है। रागादि निवृत्ति तो प्राणिमात्रके होती है। किंतु रागादिकी अनुत्पत्ति

सम्यज्ञानी ही के होती है। अभी तो हम बरुवासागर हैं! अब तो पक्वपान है, न जाने कब झड़ जावे। श्रीजीवारामजीसे हमारा इच्छाकार कहना।

बरुवासागर
वैसाख वदी ६, सं० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२४]

श्रीयुत महाशय १०५ क्षुल्लक मनोहर वर्णी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हमारा स्वास्थ्य अवस्थाके अनुकूल अच्छा है। पक्कपान हैं। हमको तो आपके उत्कर्षमें आनन्द है। हमारा उपदेश न कोई माने, न हम देना चाहते हैं। हम स्वयं अपनी आज्ञा नहीं मानते, अन्य पर क्या आज्ञा करें? आप जहाँ तक बने चेतन परिग्रहसे तटस्थ रहना। जितना परिग्रह जो त्यागेगा सुखी होगा। विशेष क्या लिखें? आप स्वयं विज्ञ हैं। विज्ञ ही नहीं विवेकी हैं। जितने त्यागी हो सबको इच्छाकार।

बरुवासागर
वैसाख वदी ६, स० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२५]

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, हमारी तो श्रद्धा यह है—न हमारे द्वारा किसीका उपकार हुआ और न अन्यके द्वारा हमारा हुआ। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका हम निषेध नहीं करते। हम क्या कोई नहीं निषेध कर सकता। बोलना और बात है। आपका हमारा अन्तरङ्गसे सम्बन्ध है परन्तु यह भी एक कल्पना है। आपका बोध निर्मल है, अतः जो आपका अन्तरङ्ग साक्षी देवे वही अंगीकार करो। न तो

हमारी वात मानो और न मित्रवर्गकी मानो। हम क्या कहे, होता यही है, परन्तु मोहकी कल्पनामें जो चाहे कहो। हमारा अब यही अभिप्राय है—एक स्थानमें शांतिसे कालयापन करना। यह भी एक मोहकी कल्पना है। यदि आप हमारा अन्तरङ्गसे हित चाहते हो तब यह पत्रव्यवहार छोड़ो। दूसरी सम्मति यह है—इन मित्रवर्गोंको यही उपदेश दो कि त्यागमार्गमें आवें। केवल गल्पवादसे जल विलोलन सदृश कुछ तत्त्व नहीं। मुनि महाराजका स्वरूप तो आगममें है उसीसे सन्तोष करो। चरणानुयोगमें क्या है सो पण्डितवर्ग जाने। कर्तव्यपथमें मुनिमहाराज जानें। अ० सु० १४ को प्रात.काल ललितपुर पहुँचेगे।

आषाढ सुदी ११, सं० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२६]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप स्वय योग्य हैं। कल्याणका आचरण कर रहे हैं। व्यर्थकी चिन्तामें कुछ लाभ नहीं। हम तो आपके सदा शुभ-चिन्तक ही नहीं शुद्धचिन्तक हैं। श्री जीवारामजीसे इच्छाकार।

भाद्र वदी ११,
सं० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२७]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। ज्ञान पानेका फल यही है जो स्वपरोपकार करना। मेरे वहाँ आनेकी अपेक्षा आप उसी प्रान्त में रहें। आपके पास सम्यग्ज्ञान है और चारित्र भी है। हम तो

कुछ उपकार नहीं कर सकते, क्योंकि वृद्ध हैं। आप अभी तरुण हैं। सर्व कुछ कर सकते हो। हम का० सु० ३ को पपोरा जावेंगे।

ललितपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२८]

श्रीयुत १०५ क्षुल्लक सहजानन्द जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। आप सानन्द पहुँच गये। यह सर्व जीवानन्दकी महिमा है। यह प्रसन्नताकी कथा है जो आपका फोड़ा अच्छा हो गया। हमारा अच्छा हो रहा है। उदयकी बलवत्ता मानना व्यर्थ है। यदि श्रद्धानमे विपरीतता आवे तब मैं उसे उदयकी बलवत्ता मानता हूँ। यो तो शारीरिक वेदना प्रतिदिन होती ही रहती है। आपके आनेसे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मेरा धार्मिक पुरुषोसे यह कहना है जो यदि कल्याणका लाभ इष्ट है तब इन पर पदार्थोंसे मूर्च्छा त्यागो। कल्याणका सर्वसे प्रचण्ड बाधक परसमता है। जिसने इसे त्यागा उसने अनन्त संसारको मिटा दिया। मेरा सर्व आनन्द-मूर्तियोसे इच्छाकार कहना।

ललितपुर
अगहन बदी १, सं २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२९]

श्रीयुत क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे? हमारा फोड़ा अब अच्छा है। २ मास पूर्ण सतत प्रयत्न करने पर उत्तम हुवा। यद्यपि हमारेमे उसकी योग्यता थी परन्तु कुछ कारणकूट भी थे। जिस समय डाक्टरने

उसे चीरा उस समय सर्वके व्यापार पृथक् २ थे। फिर भी एक दूसरेका निमित्त था। हम अष्टमी तक आहार रहेंगे।

ललितपुर
पौष वदी ४, सं० २००८

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३०]

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

जहाँ पर विरुद्ध कारणके सद्भावमें शान्ति रहे प्रशंसा तो तब है और जहाँ हाँ में हाँ मिले वहाँ आत्मोत्कर्षकी वृद्धि नहीं होती। अस्तु; विशेष क्या लिखें? आप तत्त्वज्ञ हैं। जिसमें आपको शान्ति मिले सो करिये। हमारा तो जीवन यो ही गया। शान्ति का स्वाद न आया, परन्तु रुदन करनेसे क्या लाभ? श्रद्धा अटल रहनी चाहिये। चरणानुयोगके अनुसार आत्माको बनाना कल्याणप्रद नहीं। किन्तु हमारी प्रवृत्ति ऐसी हो जो उसे देखकर अनुमान करें कि व्रत तो यह है। भोजनादिके त्यागसे आत्महित नहीं, आत्महित तो अन्तरङ्ग निर्मल अभिप्रायसे है। श्री जीवानन्द जीसे इच्छाकार कहना।

आ० सु० ६, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३१]

महाशय श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपको मैं ज्ञानी और विरक्त मानता हूँ। मैं अपनेको कुछ नहीं मानता। मैंने जिन बालकोंको पढ़ाया था वे मुझे १० वर्ष पढ़ा सकते हैं। मैं उनको महान् मानता हूँ। मैं तो कुछ जानता

ही नही और न इससे मुझे दुःख है। आपको यही सम्मति दूंगा जो तुम्हें समझ कहे उसको मानो, पर की सुनी मत मानो और शान्तभावसे कार्य करो। हमको गुरु मत मानो। अपनी निर्मल परिणतिको ही अपना कल्याणमार्गमें साथी मानो। रेलके यातायातमें विकल्प मत करो। जहाँ पर विशेष लाभ समझो जावो, न समझो मत जावो। हमसे आपका हित हुआ यह लिखना तुम्हारी कृतज्ञता है। यह भी भूषण है। किन्तु बात मर्यादित ही हितकर होती है। आत्मा ही गुरु है। वह जिस कार्य में सम्मति देवे, करो।

आ० सु० १०
सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३२]

श्री वर्णी मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जिसमें आपका कल्याण हो वही करो, आप ज्ञानी हैं। किसीके द्वारा कुछ नही होता। हमारी दुर्बलता जिस दिन चली जावेगी अनायास कल्याण हो जावेगा। मेरी तो यह श्रद्धा है जो दो द्रव्योका परिणामन एकरूप नहीं होता। हाँ सजातीय द्रव्योमें एक स्कन्ध पर्याय अनेक पुद्गल परमाणुओकी हो जाती है फिर भी दो परमाणुका अन्य परमाणुओके साथ तादात्म्य नही होता—"तदात्वे व्यतिरेकाभावात्।" बद्धस्पृष्टत्वादि व्यवहारमें कोई वाधा नही। यदि इसको ही लोक तादात्म्य माने तव कोई आपत्ति नही। यही जीव और पुद्गलकी बद्धावस्थामें तादात्म्य मान ले तव लोकोंकी इच्छा। किन्तु दो एक नहीं हो जाते। यदि ऐसा होता तव इसकी क्या आवश्यकता थी—

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवं तहेव अण्णाणं ॥ ८७ ॥

जीवस्स दु कम्मेण सह परिणामा हि होंति रागादि ॥

इत्यादि, कर्त्ता-कर्म अधिकारकी गाथा देखो ।

हमारी तो यह श्रद्धा है–राग दूर करनेकी चेष्टा करना रागादि की निवृत्ति नहीं करता । रागमें जो कार्य हो उसमें हर्ष विषाद न करना ही उसके विनाशका कारण है ।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

नोट–जितनी उपेक्षा करोगे उतनी शान्ति पाओगे। सुख शान्ति का लाभ परमेश्वरकी देन नहीं, उपेक्षाकी देन है। परमात्मामें उपेक्षा करो—इसका यह अर्थ नहीं जो परसे सम्बन्ध छोड़ दो। छोड़ना वशकी बात नहीं। वशकी बात है यदि इस पर दृढ़ रहो। वासना तो और है करना कुछ और है। इसे त्यागो। अब विशेष पत्र देनेका कष्ट न करना। विकल्प त्यागना अच्छा। हमको निज मानना अच्छा नहीं।

[५–३३]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरजी, योग्य इच्छाकार

क्या लिखूं। यही भावना होती है—एकत्व अन्यत्व भावना जो है वही आत्माको कल्याणपथप्रदा है, अत. किसी एक स्थानमें रह कर उसीका ध्यान करू, क्योंकि आज तक कुछ भी नहीं किया। अब कोईका आश्रय चाहना या किसीको देना दोनों ही विरुद्ध विचार हैं। अवस्था अनुकूल नहीं, कोई साथी नहीं, यह धारणावाला एकत्व अन्यत्व भावनाका पात्र नहीं। मेरी तो यह श्रद्धा है जो सम्यग्दृष्टि दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओंको नहीं

चाहता, हो जाती हैं। मेरी तो अन्तरङ्गसे यह श्रद्धा है—वह शुभोपयोगको नहीं चाहता, हो जाना अन्य बात है। मुनिव्रत भी नही चाहता। वह तो कुछ नही चाहता। क्या आपको लिखूं, क्योकि आप जो हैं सो मैं उसका निर्वचन ही नहीं कर सकता। यह जानता हूँ जो आप हीमे रमण करनेवाले हैं। कुछ मोहके नशेमे लिख मारा—जो मुझे कुछ उपदेश लिखिये। आप जो प्रति-दिन उपदेश करते हो वही अपनी ओर लावो। इससे अधिक क्या लिखूं। तत्त्वसे मुझसे पूछिये तो इन गृहस्थों को उचित यह है जो ये अब स्वोन्मुख होवे। जो ५० वर्षके होगये, लड़का आदिसे पूर्ण हैं, एकदम निवृत्तिमार्गके पथिक बनें। धन्य धन्य वक्ता को दान देने मे कुछ न मिलेगा। मिलना तो उस मार्गमें गमन करने से होगा। मेरा जन्म तो यों ही गया। अब कुछ उस मार्गकी सुध आई सो शक्ति विकल हूँ परन्तु कुछ भयकी बात नहीं। आत्मद्रव्य तो वही है जो युवावस्था मे थी। दृष्टि परिवर्तन की आवश्यकता है। आपका जिसमें कल्याण हो सो करो, और क्या लिखें। परमार्थसे परोपकारी कोई नही। श्री जीवाराम जी को इच्छाकार।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३४]

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप अब विकल्प न करें और न यह चिन्ता करे जो सहारनपुरवाले द्रव्य न देवेंगे। हमारा तो विश्वास है न कोई देनेवाला है और न कोई दिलानेवाला है और न कोई लेने वाला है। व्यर्थ ही संकल्प विकल्पके जालसे यह नृत्य हो रहा है। इन्दौर जाने का विचार किया सो अति उत्तम है।

आपको क्या लिखे वहाँ क्या करना, किन्तु यह अवश्य ध्यान रखना जो निरपेक्ष रहना। इस शब्दका अर्थ व्यापक लेना। संसार के काम चले चाहे न चले स्वयं इसके कर्ता न बनना।

जेठ सुदी ६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३५]

श्रीयुत १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

दश लक्षण पर्व सानन्दसे गया। मैंने आपका अपराध किया नहीं और न आपने मेरा किया, अतः क्षमा मांगना सर्वथा ही अनुचित है। हाँ यह अवश्य अपराध है जो मैं आपको और आप मुझको अपना हितू समझते हैं। एतदर्थ ऐसी भावना भावो जो यह मान्यता समाप्त हो। तथा इतने निःशंक रहो जो हमारा न कोई सुधार करता है और न इसके विरुद्ध करनेवाला है। मेरा यह विश्वास है जो सम्यग्दृष्टि श्रद्धासे तो केवली सदृश है। चारित्र-मोहकृत तरतमताका कोई लोप नहीं कर सकता। वह गुणस्थान परिपाटीसे होती है। मेरा आपके साथ जो भी ब्रह्मचारी हों उनसे इच्छाकार कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३६]

श्रीयुत १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार,

पत्र आया, समाचार जाने। मुझे तो आनन्द इस बातका है जो आप अपने स्वरूपमें ही रत रहते हैं। श्रीमान् पं० वंशीधर जी तो एक ही व्यक्ति हैं जो पदार्थोंके अन्तस्तल को स्पर्श करते हैं। उनके विषयमें क्या लिखूं ? उनके

सद्भावसे प्रायः वहुत जीवोका कल्याण होगा। हमारा इच्छाकार कहना। तुम्हारी प्रतिभा ही तुम्हारे कल्याणमें सहायक होगी, अन्यके आश्रयकी आवश्यकता नही। इस वर्षा-योग वाद कहां जावेंगे निश्चय नहीं। जावेंगे अवश्य। पैरोमें विशेष शक्ति नही, अत: २ मील या ४ मील चलेंगे। प्राय. इसी प्रान्तम जावेगे। आषाढ़ मास तक ललितपुर पहुँचेगे या आपके प्रान्तमें पहुचें असम्भव नही, परन्तु शक्ति पतितोन्मुख है।

कार्तिक वदी २, } आ० शु० चि०
सं० २००९ } गणेश वर्णी

[५-३७]

श्रीयुत १०५ महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। पदार्थका निरूपण विवक्षाधीन है। नयांके विषयमें लिखा सो ठीक। मेरी समझमें वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। जो सामान्य को कहता है वह द्रव्यार्थिक है जिसका विषय केवल द्रव्य है। दूसरा विशेषको विषय करनेवाला है। उसे व्यवहारनय कहते हैं। इसमें अनेक विकल्प हैं। अस्तु, निमित्तको न माननेवाले ही निमित्तसे काम ले रहे हैं। वहां निमित्तको न माननेवालोकी प्रचुरता है फिर आपको किस अर्थ ले गये कुछ समझमें नही आता। अस्तु, फोकट चर्चा निमित्त की है। मेरा तो यह विश्वास है जो यथार्थ निरूपण करनेवाला है वही सम्यक्त्वका निमित्त हो सकता है। सम्यक्त्व जिसके होगा उसकी श्रद्धा होगी तभी तो होगा। विशेष क्या लिखें?

कार्तिक वदी १२, } आ० शु० चि०
सं० २००९ } गणेश वर्णी

[५-३८]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरजी, योग्य इच्छाकार

अन्तरङ्गसे निर्मल रहना चाहिये। परके लिये उपसर्गोंसे आत्माकी क्षति नहीं। आत्मीय निर्मलताकी त्रुटिसे आत्माकी क्षति होती है। एवं परकी प्रशंसासे आत्माकी कोई उत्कर्षता नहीं है। केवल स्वशुद्धि ही कल्याणका मार्ग है। हम तो आज तक अपनी दुर्वलतासे ही फँसे, कोई फंसानेवाला नहीं। अतः जहाँ तक वने परकृत उपद्रवोंको उपद्रव न मानो. जो मनमे संक्लेशता होती है उसका मूल कारण मिटाओ। परमार्थसे वह भी औदायिक भाव है। सुतरां नाशमान है। कोई भी कुछ नहीं। निर्विकल्प रहना ही अच्छा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३९]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जिसमें आपको शान्ति मिले वह करो। मेरा तो यह विश्वास है जो भी कार्य किया जाता है शान्ति अर्थ किया जाता है; तथा अपने ही हितके लिये किया जाता है। कार्य चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो। भद्र मानुष वही है जो लोकेपणासे परे है। मैं तो रेल आदिके विकल्पको अनुपादेय समझता हूं। जव आवश्यकता प्रतीत हुई वैठ गए, नहीं हुई नहीं वैठे। जगत कुछ कहे इसका विकल्प ही व्यर्थ है। मैं तो चरणानुयोग इतना ही मानता हूँ—जिससे संक्लेश

परिणाम हो मत करो। पं० जीसे हमारी इच्छाकार। अति-योग्यतम व्यक्ति हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४०]

श्रीयुत क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आपके २ पत्र मिले, मैंने उत्तर दे दिया। आप सानन्द धर्म साधन करते हैं मुझे आनन्द है। संसारमें जिसने आत्मीय कल्याणको कर लिया यही महती महत्ता है। प्रशंसा निन्दा तो कर्मकृत विकार है। जो मोक्षमार्गी है वह दोनोसे परे है। यहां पर सरदी बहुत पड़ती है। अतः मैंने यही निश्चय किया जो दो मास एक स्थान ही पर बिताऊं ? आप भी मेरठ मुजफ्फरनगर आदि स्थानो पर ही बिताइए। यहां आना अच्छा नहीं। फागुन मासमें मै आपको लिखूंगा। साथमें ब्रह्मचारी हों उनसे इच्छाकार। गृहस्थोंसे दर्शनविशुद्धि।

अगहन वदी ८,
सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४१]

श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आत्माकी निर्मल परिणति ही स्वमार्ग में सहायक होती है। अन्य सर्व व्यवहार है। अब इस प्रान्तमें आवो तब शीतऋतु बाद आना। तथा आपके पास जो त्यागी वर्ग हो उससे हमारा इच्छाकार कहना। स्वावलम्बन

ही तो श्रेयोमार्ग है। आपका स्वास्थ अच्छा रहे इसमें आपका ही नहीं जनताका भी कल्याण है। हमारी तो अब वृद्धावस्था है। एक स्थान पर ही निवासकी इच्छा है; क्योंकि अब विशेष भ्रमण नहीं कर सकते।

अगहन सुदी ४, सं० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

नोट—हमारी तो यह भावना है—आप उसी प्रान्तमें एक केन्द्र बनावें जहाँ मुमुक्षु जीवोंको स्थान मिल सके। ज्ञानचरित्र पाने का यही फल है।

[५-४२]

श्रीयुत १०५ मनोहरलाल जी क्षुल्लक, योग्य इच्छाकार

सानन्दसे धर्मसाधन करो. कोई किसी का नहीं। आत्मा सर्व रूपसे स्वतन्त्र है। आपने जो निर्मलता पायी है वह तुम्हारे संसारतट सान्निव्यताका कार्य है। इसका सदुपयोग कर ही रहे हो। विशेष क्या लिखें? हम तो यही चाहते हैं जो किसीकी परतन्त्रता न हो। अब हमारा विचार एक स्थान पर रहनेका है। अभी यहीं पर ही हैं। यहां से प्रस्थान करेंगे, लिखेंगे।

अगहन सुदी १३. सं० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४३]

श्री १०५ क्षु० मनोहरलाल वर्णी, योग्य इच्छाकार

यह तो ध्रुव सत्य है जो मोह के सद्भाव मे आत्मकल्याण असम्भव है। तथा मोह का अभाव कैसे हो इस चिन्ता से कुछ

कार्य की सिद्धि नहीं। तत्त्वदृष्टिसे यह स्वाभाविक परिणमन तो है नहीं फिर भी तद्वत् ही अनादिसे आ रहा है। अनादि होने पर भी पर्य्यायोका अन्त देखा जाता है। अतः इसके विषयमें चिन्ता करना मैं उपयुक्त नही मानता। अब मेरा विचार एक स्थान पर रहनेका है। क्या होगा कुछ नही कह सकता।

पौष बदी ३, स० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४४]

महाशय श्री १०५ क्षु० मनोहरलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप स्वयं बहुज्ञानी हैं किन्तु जहाँ तक बने उपेक्षास्त्र को न भूलना। रागांश भी राग ही है, अतः प्रत्येक समयका भी बन्ध करनेवाला है। वैसे तो एक समय जो औदायिक राग होगा वह जितना होगा बन्धक और विकारी ही होगा। मेरी भावना अब गिरिराज पर ही रहने की हो गयी। यह प्रान्त छोड़ दिया है। आप को अब कुछ काल जबलपुर और सागरको भी देना चाहिये। मैं आदेश नहीं करता। किन्तु प्रान्तका ध्यान जब तक राग है रखना ही चाहिये। विशेष क्या लिखूं। मैं वैसाखमे जहां हूँगा आपको लिखूंगा। मेरी तो वृद्धावस्था है, पक्वपान हूँ।

कटनी
का० बदी ३०, सं० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० चम्पालालजी सेठी

श्रीमान् ब्र० चम्पालाल जी सेठी का जन्म वि० स० १९४८ में मन्दसौर मे हुआ था। पिताका नाम मुन्नालालजी और जाति खण्डेलवाल थी। संस्कृत शिक्षाके साथ इन्होंने राजवार्तिक और पञ्चाध्यायी आदि उच्चकोटिके ग्रन्थोंका अध्ययन किया था।

गृहस्थावस्थामें रहते हुए भी इनका चित्त आत्मकल्याणकी ओर विशेष था, इसलिए धीरे धीरे ये गृहस्थावस्थासे निवृत्त होकर मोक्षमार्गमें लग गये। ये ब्रह्मचर्य प्रतिमाका उत्तम रीतिसे पालन करते थे।

पूज्य वर्णीजी की चर्या और उपदेशोंका इनके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्हींकी सलाहसे बहुत समय तक ये और श्रीमान् ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णीके साथ रह कर उत्तरप्रान्तीय जैन गुरुकुल हस्तिनापुरकी सेवा करते रहे। कुशल वक्ता होनेसे इनका समाज पर स्थायी प्रभाव दृष्टिगोचर होता था।

सम्भवतः इनका स्वर्गवास चार वर्ष पूर्व कुण्डलपुरमें हुआ था। ऐसे योग्य व्यक्तिके असमयमें उठ जानेसे समाजको महती क्षति हुई है। यहां पर पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें और इनके अन्य साथियोंको संयुक्तरूपमें लिखे गये पत्र दिये जाते हैं।

[६-१]

श्रीयुत महाशय पं० मनोहरलालजी व ब्र० श्रीयुत चम्पालालजी
योग्य इच्छाकार

बनारस में सर्वार्थसिद्धि उत्तम संस्करण में छप रही है। अतः आप भी गुरुकुल के वास्ते २५ पुस्तकें ले लो। मूल्य पहले भेजने से जल्दी मुद्रित हो जावेगी। २००) में २५ पुस्तकें आजावेंगी। पं० फूलचन्दजी छपा रहे है। पुस्तक अच्छी लिखी है।

६-२]

योग्य इच्छाकार

आप लोग सानन्दसे रहे। कषायकी समानता ही में लक्ष्य की सिद्धि होगी। एकजन्य मैत्रीभाव रखना क्या कठिन है, आप लोग विज्ञ हैं। उसका उपयोग करना ही तो कल्याणपथका साधक है। हम ८ दिन बाद जबलपुर पहुँचेंगे। इसका यह अर्थ न लगाना जो हम आपको उपदेश करते हैं। प्रत्युत यह अर्थ करना जो आपकी सद्भावनाको पुष्ट करते है। स्वास्थ्यके लिये द्वितीयेन्द्रिय पर विजय आवश्यक है। इन्द्रियोमें रसना, व्रतोमें ब्रह्मचर्य, गुप्तिमें मनोगुप्ति, कर्म में मोहनीय प्रबल हैं। हम तो आजन्म असम्बद्ध मन रहे। उसका फल अच्छा नहीं पाया। अतः अनुभवसे कहते हैं कि मनोवृत्ति स्वच्छ रखना शूरका काम है। आप दोनो शूर हैं। अतः उसमें वृद्धि करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

शान्तिकुटी
मढ़ियाजी जबलपुर

[६-३]

श्रीयुत महाशय पं० मनोहरलालजी व श्रीयुत पं० चम्पालाल जी व श्रीयुत त्यागी सुमेरुचन्द्रजी योग्य इच्छाकार

मेरी तो यह सम्मति है जो इस प्रान्तमें मेरठकी आव-हवा वहुत उत्तम है, परन्तु हम लोगोंमें इतनी उदारता कहाँ जो अपने द्रव्यको दूसरी जगह प्रदान करें? परकी मूर्च्छा ही परिग्रह है। अपने रागादिको दूर करनेका उपाय यही है जो इन पर पदार्थोंके साथ उपेक्षा का व्यवहार किया जावे। जिस वस्तुको हम दु.खकर जानते हैं उसको देकर भी अपनाते हैं! इस त्यागका कोई महत्त्व नहीं। सबसे महती त्रुटि तो हम लोगोंमें यह है जो हम दान देकर कर्त्ता वनते हैं। कर्त्ता ही नही यहाँतक अभिमानकी मात्रा वढ़ जाती है जो अन्यको तुच्छ देखने लगते हैं। जो देकर मान चाहते हैं उनने लोभका त्याग नहीं किया। यदि लोभ करते मान न मिलता। अस्तु, जो वने सो करो। दु.खी न होना, पर पदार्थोंका परिणमन स्वाधीन नहीं। हमको वड़े वेगसे पुराने मित्रने वही रूप दिखाया जो ईशरीमें था। आज रात्रि वड़े सानन्दसे वीती। नींद का नाम न था। ससारमें यही होता है। आप लोक व्यग्रतामें न पड़ना। जितनी विशुद्धि रक्खोगे उतना ही जल्दी काम वनेगा। और जितनी अहम्बुद्धि करोगे देर से काम होगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६-४]

श्रीमान् महाशय ब्र० मनोहरलालजी व श्रीमान् महाशय सेठी चम्पालालजी व महोदय सुमेरचन्द जी, योग्य इच्छाकार

आप लोग सानन्द कालका सदुपयोग कर रहे हैं. यह अपार

हर्षका सुअवसर है। किन्तु इतनी हमारी आशा है जो आगामी चतुर्मास्यमें आप लोगोंका शुभ समागम हमको प्राप्त हो। यद्यपि आप लोग विज्ञ हैं तथा साथमे संसारसे भयभीत भी हैं। शायद समागममे उसकी त्रुटि आप लोग देखें। तथापि जहाँ तक होगा हमसे त्रुटि न होगी।

जगत एक जाल है। इसमें हम जैसे अल्प सत्त्ववालोंका फँसना कोई बड़ी बात नहीं। आप सानन्दसे जीवन बिताओ।

मढ़ियाजी पो॰ गढ़ा (जबलपुर) } आ॰ शु॰ चि॰
गणेश वर्णी

[६—५]

योग्य इच्छाकार

आप लोगों का पत्र खूबचन्दजीके पास आया। बांचकर आनन्द हुआ। प्रारम्भ मे तो ऐसा ही होता है। अस्तु, यदि नगर-वासियो का अन्तरङ्ग न हो, तब तो प्रयास न करना ही श्रेयस्कर होगा। यदि नगरवाले अन्तरङ्गसे इसे अपनावें तब जो विचार है, उपयोग मे लाना। यहाँ भी वही प्रश्न है—स्नातक होने बाद क्या करेंगे, क्या भिक्षा माँगेंगे? जो भिक्षा एक दिन अमृत माना जाता था आज वह विषरूप हो गया! जो वैयावृत्ति, एक दिन आभ्यन्तर तपकी गणनामें थी तथा निर्जराकी साधक थी, आज वही तप ग्लानिमे गणनीय हो गया! यह सब हमारी अज्ञानता का विलास है। जो सिद्धान्तका ज्ञान आत्म-परके कल्याण का साधक था आज उसे लोगोंने आजीविकाका साधन बना रक्खा है। जिस सिद्धान्तके ज्ञानसे हम कर्मकलङ्कका प्रक्षालन करनेके अधिकारी थे, आज उसके द्वारा धनिकवर्गोंका स्तवन किया जाता है! यह सिद्धान्तका दोष नहीं, हमारी मोहकी बल-

वत्ता है। अतः हमको निज परिचयके साधक सिद्धान्तका सदुपयोग कर, कल्याणपथको सरल बनाना चाहिए। आप लोगोंसे मेरा यह कहना है; जहाँ तक बने, चन्दा करना; परन्तु दैन्यभाव न आवे। आत्मा अनन्तज्ञानका पात्र है तथा अनन्तसुखका धनी है। परन्तु हम अपनी अज्ञानताके ही वशीभूत हो दुर्दशा के पात्र बन गए हैं। आपका समागम हमे इष्ट है; परन्तु आप लोग ही चले गए। हम प्रतिज्ञा करते हैं—आप लोग जो कहेंगे, करेंगे। किन्तु एक वर्ष एक प्रान्त में रहनेका विचार है। अनन्तर जहाँ आप कहेगे, वहाँ ही चलेंगे। किन्तु आप लोगोंको स्थिर रहना चाहिए। अथवा जहाँ आप लोगोंका उपयोग स्थिर हो. रहिए। कल्याणका लक्ष्य रखिए। मैं यह आग्रह नहीं करता जो यहाँ ही आना चाहिए। उदयाधीन कार्य होता है। हम भी उसीके आधीन हैं। फिर विकल्प क्यों करना। जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे। अथवा जो भवितव्य होगा सो होगा, क्यों विकल्प करना।

पौष वदी १०, सं० २००२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६—६]

योग्य इच्छाकार

भगवन्! आपका सघ रत्नत्रयका कार्य करे। मैं तो चम्पाको सम्यग्दर्शन, मनोहरको सम्यग्ज्ञान. भगतको सम्यक्चारित्र समझता हूँ। यदि आप लोग संघशक्तिसे काम लेवेंगे तब अवश्य सफलीभूत होंगे, अन्यथा नहीं। हमारे प्राचीन मित्र (सलेरिया) दो घटेको आते हैं और यह उपदेश करते हैं—सचेत हो जाओ। तुम्हारी इतनी भी शक्ति नहीं जो हमसे सम्बन्ध छोड़

सको, तब भला संसारसे सम्बन्ध छोड़ोगे, दूर है। कल्याणके पथमें सर्वसे बाधक लोकेषणा है, जिसको प्रायः त्यागी गण अपनाने लगे हैं। कहनेको तो हम भी कहते हैं, आप लोग भी कहते हैं। परन्तु यह गल्पवाद है। न मानो; हृदयसे पूँछ लो। आप लोगोंसे जो हमारा सम्बन्ध है वह ही एक तरहकी बला है। मै तो इसे भी रोग मान रहा हूँ।

आ० शु० चि०

पौष सुदि १२, सं० २००२ } गणेश वर्णी

[६-७]

योग्य इच्छाकार

आप जानते हैं, संसारकी पद्धति इतनी गम्भीर है जो इसका अनुभव प्रत्येकको नही हो सकता। व्यर्थ ही मायावी बनते है। सर्वसे प्रबल यही कषाय है। इसका जलाना अति कठिन है। मेरा तो यह विश्वास है जो मैं अपनी रक्षा अभी तक इन कषायोंसे नहीं कर सका। पत्र लिखनेमे संकोच होता है। केवल संस्कारके बलसे लिख देता हूँ। निर्मलता कुछ और है, कह देना कुछ और है। मेरी वहाँके सर्व बन्धुओंसे दर्शनविशुद्धि। यदि वास्तवमे गुरुकुल खोलना है तव वह छात्र उत्तरकालमे क्या करेंगे, इस विकल्पको त्यागकर निर्ममत्वसे द्रव्यका सदुपयोग करिये और यथोचित करिये। उत्तम विद्वानको अध्यापक रखिए। वह छात्र प्रवेश करिये जो अपना जीवन इसमे लगा देवें। जिनको उत्तरकालमें आजीविकाकी चिन्ता रहेगी वह इस विद्यासे प्रेम न करेंगे। तथा आप ऐसा प्रबन्ध करिये जो स्नातक निकलेंगे, उन्हे आजन्म १००) मासिक यह संस्था देगी इत्यादि। हम तो जवलपुर आकर फँस

गए। कोई वास्तविक लाभ न हुआ। डेढ़ लाख देकर भी यही चिन्ता लोगोंको है कैसा शिक्षण दिया जावे। हमारा स्वास्थ्य अब पंकपत्रके सदृश है; परन्तु हमें चिन्ता नहीं।

पौष सुदी ५, }
सं० २००२ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६-८]

योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। आज हम बाहर जा रहे हैं। संसारकी लीला देख ज्ञाता–द्रष्टा रहना। कोई पदार्थका किसी पदार्थसे तात्त्विक सम्बन्ध नहीं। जो है उसे कोई वारण नहीं कर सकता यह हम भी जानते हैं। आप तो तीन हैं फिर भी मोहकी बलवत्ता प्रबल है जो बलात्कार परको आत्मीय मानता है तथा परको मनानेकी चेष्टा करता है। यही बात हममे है। इसीसे दुःखी हैं, थे और रहेंगे। परन्तु यह जो लिख रहे हैं सो अन्तःकरण से। इससे यह निश्चय है जो जिनवाक्यमें श्रद्धा है यही इस जालसे मुक्त होनेका मार्ग है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६--९]

योग्य इच्छाकार

कषायका परिणमन जिस समय आत्मामें हो रहा है उसका ज्ञान सम्यग्दृष्टिके है तब उस समय भेदज्ञानमें कौन सी बाधा है। जिस समय मुनि अपने उपयोग द्वारा आर्त्तध्यानरूप हो रहा है उस समय क्या उसके भेदविज्ञान नहीं है ? कषायसे भेदज्ञानमें

बाधा नहीं। वास्तवमें भेदविज्ञानका बाधक मिथ्यात्व है। उसका जिसके अभाव हो गया उसके सर्व अवस्थामें ज्ञान सम्यक् है।

मेरा स्वास्थ्य यथा अवस्था कभी अच्छा और कभी विपरीत हो जाता है। सर्वसे बड़ी अनुकम्पा मलेरियाकी रहती है। वह चिरपरिचित है। अतः उसके सद्भावसे मैं प्रसन्न हूँ। एक प्रकारकी असाताकी उदीरणा अनेक प्रकारकी वेदनासे उत्तम है। जिस कार्यको प्रारम्भ किया उसे पूर्ण करना। हमारे सदृश अव्यवस्थित चित्त न होना। जिनधर्मका विकाश धार्मिक संस्थाओंसे ही होगा। स्वास्थ्यसे यह कार्य कम नहीं। निर्जराका कारण तो अन्तरङ्ग मोहकी कृशता है। सो कार्यके कर्त्ता अभिप्रायसे न बनो। वचनोंमें कर्तृत्वव्यवहार बन्धका साधक नहीं।

आप तीनोंकी एकता ही कार्यकी साधक होगी। विशेष क्या लिखें—चपलता न करना। मेरा वकील सा० व मुख्तार सा० से दर्शनविशुद्धि कहना। यहाँसे क्षुल्लकजी व चिदानन्दजी चले गए। सागरमें श्री चिदानन्दजी हैं। आप किसीके कहनेमें न आना। यह उदासीनाश्रम कुछ नहीं, समाजका पैसा वर्बाद करने का एक यह भी फालतू कार्य है।

माघ वदी १३,
स० २००२

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६-१०]

योग्य इच्छाकार

भेदविज्ञानका अनुभव हो, चाहे कषायका अनुभव हो, बन्ध का कारण अन्तरङ्ग अभिप्राय है। मेरा भी यही विश्वास है—जिस समय अविरतसम्यग्दृष्टि विषयानुभव करता है उस समय तथा

जिस समय वह स्वात्मानुभव करता है उन दोनो अवस्थाओंमे चतुर्थगुणस्थान ही तो रहता है। कषायकी तरतमता रही, विशेष कुछ नहीं। तथा एक कालमे दो अनुभव नहीं होते। पत्र पहिले दिया है सो जानना। मेरा श्री नेमिचन्दजी वकील तथा रतनचन्दजी साहवसे दर्शनविशुद्धिः।

कार्तिक सुदी १५ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६-११]

योग्य इच्छाकार

मैंने आपसे आनेको कह दिया था; परन्तु पश्चात् आत्माने निषेध कर दिया। अत. अव नहीं आऊँगा। देखो! ससारमे सर्वसे वड़ा वन्धन स्नेहका है। यही मूल संसारकी है। संसारमें जिसने स्नेह त्याग दिया वही परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका पात्र होता है। मैं वहुत विचार करता हूँ जो इन गृहस्थोंके चक्रमें न आऊँ। परन्तु ऐसी परिस्थिति है जो इस चक्रसे निकलना कठिन है। यह विचार किया था जो गोदरेके वागमें इस आपत्तिसे वच जाऊँगा सो वहाँ भी वही आपत्ति। प्रथम तो गृहस्थका वाग एक चक्र, दूसरा भोजन आगमविरुद्ध, तीसरा जो चाहे जव चाहे आता है और उपदेश दे जाता है। जो आता है गुरु वनकर ही आता है, शिष्य कोई नहीं वनना चाहता। यही कहा जाता है कि आपकी सरलता ही आपके गुणोके विकाशमे वाधक है, वास्तविक वात है। मनमें आता है कि निर्जन स्थानमें रहूं। शक्तिविकलता रोक देती है। स्थान ऐसा नही जो ग्राममें आकर चर्या करूँ, पश्चात् स्वतन्त्र धर्मसाधन करूँ। परन्तु मैं अपने अनुभवसे कहता

हूँ जो मैं इनके चक्रमें पड़ गया हूँ; परन्तु आपको सम्मति देता हूँ जो इस चक्रमें न पड़ना।

लाला सुमेरचन्दजी! आप अधिष्ठाता पदके व त्यागीसम्मेलनके चक्रमें न पड़ो। श्री मनोहर तो निकल गये। आप लोगोंको निकलनेका मार्ग बता गए। कल श्री चिदानन्दजीके त्यागके अवसर पर अवश्य आऊँगा। आजके दिन ये भाव हैं। कभी स्थिर भी हो जावेंगे।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० दीपचन्द्रजी वर्णी

श्रीमान् ब्र० दीपचन्द्रजीका जन्म होशंगाबाद जिलेके नरसिंह पुरमें माघ शुक्ला ५ वि० सं० १९३६ को हुआ था। पिताका नाम बजाज नाथूरामजी और जाति परवार थी। इनकी शिक्षा हिन्दीमें नार्मल तक और इंगलिशमें मिडिल तक हुई थी। अभ्यास द्वारा चित्रकला और सिलाई आदिमें तथा ब्रह्मचारी होनेके बाद धर्मशास्त्रमें इन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की थी।

इनके क्रमशः दो विवाह हुए थे। किन्तु दोनों पत्नियोंका वियोग हो जाने पर इनका चित्त प्रपञ्चसे हटकर आत्मसाधनाकी ओर गया। ब्रह्मचर्य व्रत लेनेके पूर्व कुछ दिन तो ये पिताजीके साथ व्यापार करते रहे और उसके बाद शिक्षकका कार्य करने लगे।

इनकी दूसरी पत्नीका वियोग वि० स० १९६० में हुआ था। अनन्तर १९६२ में इन्होंने श्री १०५ ऐलक पन्नालालजीके पास ब्रह्मचर्य व्रतकी दीक्षा ले ली और कुछ काल बाद पूज्य वर्णीजी या पूज्य बाबा भागीरथजीके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

ये स्वभावके बड़े निर्भीक और कर्तव्यनिष्ठ थे। लेखक और वक्ता भी उत्कृष्ट कोटिके थे। सागर विद्यालय व दूसरी संस्थाओं की सार सम्हाल करना और समाजकी सेवा करते रहना यही इनकी दिनचर्या थी। संक्षेपमें ऐसा निष्ठावान् समाजसेवी त्यागी होना दुर्लभ है। फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा वि० सं० १९९४ को समाधि पूर्वक इन्होंने इह लीला समाप्त की थी।

पूज्य वर्णीजीमें इनकी विशेष भक्ति होनेसे इनका अधिकतर समय उन्हींके सानिध्यमें व्यतीत होता था। यदा कदा वियोग होने पर उसकी पूर्ति पत्रव्यवहारसे होती थी। उनमेंसे उपलब्ध हुए पत्र यहां दिये जा रहे है।

[७–१]

श्रीमान् वर्णीजी, योग्य इच्छाकार !

पत्र न देनेका कारण उपेक्षा नहीं किन्तु अयोग्यता है। मैं जब अन्तरङ्गसे विचार करता हूँ तो उपदेश देनेकी कथा तो दूर रही अभी मैं सुनने और बांचनेका भी पात्र नही। वचन चतुरतासे किसीको मोहित कर लेना पाण्डित्यका परिचायक नहीं। श्रीकुंदकुंदाचार्यने कहा है—

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स॥

अर्थ—समताके बिना वननिवास और कायक्लेश तथा नाना उपवास तथा अध्ययन मौन आदि कोई उपयोगी नही। अतः इन बाह्य साधनोका मोह व्यर्थ ही है। दीनता और स्वकार्यमें अतत्परता ही मोक्षमार्गका घातक है। जहाँ तक हो इस पराधीनताके भावोका उच्छेद करना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। विशेष कुछ समझमें नही आता। भीतर बहुत कुछ इच्छा लिखनेकी होती है परन्तु जब स्वकीय वास्तविक दशापर दृष्टि जाती है तो अश्रुधाराका प्रवाह बहने लगता है। हा आत्मन्! तूने यह मानव पर्यायको पाकर भी निजतत्त्वकी ओर लक्ष्य नही दिया। केवल इन बाह्य पंचेन्द्रिय विषयोकी निवृत्तिमें ही सतोष मानकर संसारको क्या अपने स्वरूपका अपहरण करके भी लज्जित न हुआ।

तद्विषयक अभिलाषाकी अनुत्पत्ति ही चारित्र है। मोक्षमार्गमे संवरतत्त्व ही मुख्य है। निर्जरा तत्त्वकी महिमा इसके बिना स्याद्वाद शून्यागम अथवा जीवनशून्य शरीर अथवा नेत्रहीन मुखकी तरह है। अतः जिन जीवोको मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य

ध्येय होना चाहिये कि जो अभिलाषाओंके उत्पादक चरणानुयोगोकी पद्धति प्रतिपादित साधनोंकी ओर लक्ष्य स्थिर कर निरंतर स्वात्मोत्थ सुखामृतके अभिलाषी होकर रागादि शत्रुओंकी प्रवल सेनाका विध्वस करनेमें भागीरथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जावे किन्तु व्यर्थ न जावे इसमे यत्नपर होना चाहिये। कहाँतक प्रयत्न करना उचित है? जहाँतक पूर्ण ज्ञानकी पूर्णता न होय।

तावदेव भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
यावत्तावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितम्॥

अर्थ—तवतक ही यह भेदविज्ञान अखड़धारासे है कि जव तक परद्रव्यसे रहित होकर ज्ञान ज्ञानमें (अपने स्वरूपमें) ठहरता है, क्योकि सिद्धिका मूलमंत्र भेदविज्ञान ही है। वही श्रीआत्मतत्त्वरसास्वादी अमृतचन्द्र सूरिने कहा है—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो वद्धा वद्धा ये किल केचन॥

अर्थ—जो कोई भी सिद्ध हुये हैं वे भेदविज्ञानसे ही सिद्ध हुये हैं और जो कोई वंधे हैं वे भेदविज्ञानके न होनेसे ही वन्धको प्राप्त हुये हैं।

अत. अव इन परनिमित्तक श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके प्रयत्नमें समयका उपयोग न करके स्वावलंवनकी ओर दृष्टि ही इस जर्जरावस्थामें महती उपयोगिनी रामवाण तुल्य अचूक औषधि है। तदुक्तम्—

इतो न किंचित् परतो न किंचित् यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित्॥

अर्थ—इस तरफ कुछ नही है और दूसरी तरफ भी कुछ

नही है तथा जहां जहां मैं जाता हूँ वहां वहां भी कुछ नहीं है। विचार करके देखता हूँ तो यह संसार भी कुछ नही है। स्वकीय आत्मज्ञानसे बढ़कर कोई नहीं है।

इसका भाव विचार स्वावलबनका शरण ही संसारबंधनके मोचनका मुख्य उपाय है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो संवर ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका मूल है।

मिथ्यात्वकी अनुत्पत्तिका नाम ही तो सम्यग्दर्शन है और अज्ञानकी अनुत्पत्तिका नाम सम्यग्ज्ञान तथा रागादिककी अनुत्पत्ति यथाख्यातचारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथाख्यात चारित्र है। अतः संवर ही दर्शन-ज्ञान-चारित्राराधनाके व्यपदेशको प्राप्त करता है तथा इसीका नाम तप है; क्योंकि इच्छानिरोधका नाम ही तप है।

मेरा तो दृढ़ विश्वास है जो इच्छाका न होना ही तप है। अतः तप आराधना भी यही है। इस प्रकार संवर ही चार आराधना है, अतः परसे श्रेयोमार्गकी आकांक्षाका त्याग ही श्रेयोमार्ग है।

सागर } आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

[७-२]

श्रीयुत् महानुभाव प० दीपचन्द जी वर्णी, इच्छाकार

कारणकूट अनुकूलके असद्भावमें पत्र नहीं दे सका। क्षमा करना। आपने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है। अब हमे आवश्यकता इस बातकी है कि प्रभुके उपदेशके अनुकूल प्रभुकी पूर्वावस्थावत् आचरण द्वारा प्रभु इव प्रभुताके पात्र हो जावे यद्यपि अध्यवसान भाव पर निमित्तक हैं। यथा—

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः।
तस्मिन् निमित्तं पर सग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥

आत्मा आत्मा सवंधी रागादिककी उत्पत्तिमें स्वयं कदाचित् निमित्तताको प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिकके उत्पन्न होनेमें अपने आप निमित्त कारण नहीं है किन्तु उनके होनेमें परवस्तु ही निमित्त है। जैसे अर्ककान्त मणि स्वयं अग्निरूप नही परणमता है किन्तु सूर्यकिरण उस परिणामनमें कारण है। तथापि सत्ता परमार्थकी गवेषणामें वह निमित्त क्या वलात्कार अध्यवसान भावके उत्पादक हो जाते हैं? नहीं, किन्तु हम स्वयं अध्यवसानमें उन्हे विषय करते हैं। जव ऐसी वस्तु मर्यादा है। तव पुरुषार्थ कर उस संसारजनक भावोंके नाशका उद्यम करना ही हम लोगोंको इष्ट होना चाहिये। चरणानुयोगकी पद्धतिमें निमित्तकी मुख्यतासे व्याख्यान होता है और अध्यात्मशास्त्रमें पुरुषार्थकी और उपदानकी मुख्यतासे व्याख्यान पद्धति है और प्रायः हमें इसी परिपाटीका अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा। शरीरकी क्षीणता यदि तत्त्वज्ञानने वाह्यदृष्टिसे कुछ वाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियोंकी प्रवृत्तिमें उतना वाधक नही हो सकती यदि वेदनाकी अनुभूतिमें विपरीतताकी कणिका न हो तव मेरी समझमें हमारी ज्ञानचेतनाकी कोई क्षति नहीं है।

विशेष नहीं लिख सका। आजकल यहां मलेरियाका प्रकोप है। प्रायः वहुतसे इसके लक्ष्य हो चुके हैं। आप लोगोंकी अनुकम्पासे मैं अभी तक तो कोई आपत्तिका पात्र नहीं हुआ। कलकी दिव्य ज्ञान जाने। अवकाश पाकर विशेष पत्र लिखनेकी चेष्टा करूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[७-२]

श्रीयुत महाशय दीपचन्दजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया। आपके पत्रसे मुझे हर्ष होता है और आपको मेरे पत्रसे हर्ष होता है यह केवल मोहज परिणामकी वासना है। आपके साहसने आपमें अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है। यही स्फूर्ति आपको संसार यातनाओंसे मुक्त करेगी। कहने और लिखने और वाक्‌चातुर्य्यमें मोक्षमार्ग नही। मोक्षमार्गका अंकुर तो अंतःकरणसे निज पदार्थमें ही उदय होता है। उसे यह परजन्य मन, वचन, काय क्या जानें। यह तो पुद्‌गल द्रव्यके विलास हैं। जहां पर इन पुद्‌गलकी पर्य्यायोने ही नाना प्रकारके नाटक दिखाकर उस ज्ञाता दृष्टाको इस ससारचक्रका पात्र बना रक्खा है। अतः अब तमोराशिको भेदकर और चन्द्रसे परपदार्थ जन्य आतापको शमन कर सुधासमुद्रमें अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होनेकी योग्यताके पात्र बनिये। वह पात्रता आपमें है। केवल साहस करनेका विलम्ब है। अब इस अनादि संसार जननी कायरताको दग्ध करनेसे ही कार्य सिद्धि होगी। निरन्तर चिन्ता करनेसे क्या लाभ, लाभ तो आभ्यन्तर विशुद्धिसे है। विशुद्धिका प्रयोजन भेदज्ञान है। भेदज्ञानका कारण निरन्तर अध्यात्मग्रन्थोकी चिन्तना है। अतः इस दशामें परमात्मप्रकाशग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीतिसे इस ग्रन्थमें सलग्न हो जाता है। उपक्षीण कायसे विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्यका बाधक होता है, अत. आप सानन्द निराकुलता पूर्वक धर्मध्यानमें अपना समय यापन कीजिये। शरीरकी दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्राय: सबकी है, परन्तु कोई भीतरसे दुःखी है तो कोई बाह्यसे

दु.खी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तवमें अघातिकर्म आसाताकर्मजन्य है। वह आत्मगुणघातक नहीं। आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है। जो कि आत्मगुणघातक है। अतः आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दुःखके पात्र नहीं। अतः आपको अव वड़ी प्रसन्नता इस तत्त्वकी होनी चाहिये जो मैं आभ्यन्तर रोगसे मुक्त हूँ।

मढ़ियाजी जवलपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

पं० छोटेलालसे दर्शनविशुद्धि। भाई साहव एक धर्मात्मा और साहसी वीर हैं उनकी परिचर्या करना वैयावृत्य तप है जो निर्जराका हेतु है। हमारा इतना शुभोदय नहीं जो इतने धीरवीर वरवीर दुखसीद वन्धुकी सेवा कर सकें।

[७-४]

श्रीयुत वर्णीजी, योग्य इच्छाकार

पत्र मिला। मैं वरावर आपकी स्मृति रखता हूँ किन्तु ठीक पता न होनेसे पत्र न दे सका। क्षमा करना। पैदल यात्रा आप धर्मात्माओंके प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभुके चरणप्रसादसे वहुत ही उत्तम भावोंसे हुई। मार्गमें अपूर्व शांति रही। कंटक भी नहीं लगा। तथा आभ्यन्तरकी भी अशान्ति नहीं हुई। किसी दिन तो १९ मीलतक चला। खेद इस वातका रहा कि आप और वावाजी साथमे न रहे। यदि रहते तो वास्तविक आनन्द रहता। इतना पुण्य कहाँ ? वन्धुवर। आप श्रीमोक्षमार्गप्रकाश और समाधिशतक समयासारका ही स्वाध्याय करिये। और विशेष त्यागके विकल्प में न पड़िये। केवल क्षमादिक परिणामोंके

द्वारा ही वास्तविक आत्माका हित होता है। काय कोई वस्तु नहीं तथा आप ही स्वयं कृश हो रही है। उसका क्या विकल्प? भोजन स्वयमेव न्यून हो गया है। जो कारण बाधक है आप बुद्धिपूर्वक स्वयं त्याग रहे हैं। मेरी तो यही भावना है—प्रभु पार्श्वनाथ आपकी आत्माको इस बंधनके तोड़नेमें अपूर्व सामर्थ्य दें। आपके पत्रसे आपके भावोंकी निर्मलताका अनुमान होता है। स्वतंत्र भाव ही आत्मकल्याणका मूल मंत्र है। क्योंकि आत्मा वास्तविक दृष्टिसे तो सदा शुद्ध ज्ञानानंद स्वभाववाला है। कर्म कलंकसे ही मलीन हो रहा है। सो इसके पृथक् करनेकी जो विधि है उस पर आप आरूढ़ है। बाह्य क्रियाकी त्रुटि आत्म-परिणामकी बाधक नहीं और न मानना ही चाहिये। सम्यग्दृष्टि जो निन्दा तथा गर्हा करता, वह अशुद्धोपयोगकी है न कि मन, वचन, कायके व्यापारकी। इस पर्यायमें हमारा आपका तभी सम्बन्ध हो। परन्तु मुझे अभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तरमें अवश्य मिलेंगे। अपने स्वास्थ्यसम्बन्धी समाचार अवश्य एक मासमें १ बार दिया करें।

वरुआसागर
चैत्र सुदी १, सं० १९९२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[७-५]

श्रीयुत पं० दीपचन्द जी धर्मरत्न, इच्छामि

पत्र पढ़कर सन्तोष हुआ। तथा आपका अभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको श्रावणप्रत्यक्ष करा दिया। सब लोग आपके आंशिक रत्नत्रयकी भूरिशः प्रसंशा करते हैं।

पं० भूधरदास जी की कविता आपके ऊपर नहीं घटती।

आप सूर हैं। देहको दशा जैसी कविने प्रतिपादित की है तदनुरूप ही है परन्तु इसमें हमारा क्या घात हुआ? यह हमारी बुद्धि-गोचर नहीं हुआ। घटके घातसे दीपकका घात नहीं होता। पदार्थका परिचायक ज्ञान है। अतः ज्ञानमें ऐसी अवस्था शरीर की प्रतिभासित होती है एतावत् क्या तद्रूप हो गया।

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयम्।
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादपि॥
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो।
रागद्वेषमयि भजन्ति सहजां मुंचत्युदासीनताम्॥

पूर्ण अद्वितीय नहीं च्युत है शुद्ध बोधकी महिमा जाकी ऐसा जो बोध है वह कभी भी बोध्य पदार्थके निमित्तसे प्रकाश्य (घटादि) पदार्थसे प्रदीपकी तरह कोई भी विक्रियाको प्राप्त नहीं होता है। इस मर्यादाविषयक बोधसे जिसकी बुद्धि वन्ध्या है वे अज्ञानी हैं। वे ही रागद्वेषादिकके पात्र होते हैं और स्वाभाविक जो उदा-सीनता है उसे त्याग देते हैं। आप विज्ञ हैं कभी भी इस असत्य भाव को अवलम्बन न देवेंगे। अनेकानेक मर चुके तथा मरते हैं और मरेंगे। इससे क्या आया। एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी। इसमें कौनसी आश्चर्यकी घटना है इसका तो आपसे विज्ञ पुरुषोंको विचार कोटिसे पृथक् रखना ही श्रेयस्कर है। जो यह वेदना असाताके उदय आदि कारणकूट होने पर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञानमें आयी, क्या वस्तु है? परमार्थसे विचारा जाय तो यह एक तरह से सुख गुणमें विकृति हुई वह हमारे ज्ञानमें आयी। उसे हम नहीं चाहते। इसमें कौनसी विपरीतता हुई? विपरीतता तो तब होती है जब हम उसे निज मान लेते। विकारज परिणतिको पृथक् करना अप्रशस्त नहीं, अप्रशस्तता तो

यदि हम उसीका निरन्तर चिन्तवन करते रहें और निजत्वको विस्मरण हो जावें तब है।

अतः जितनी भी अनिष्ट सामग्री मिले, मिलने दो। उसके प्रति आदरभावसे व्यवहार कर ऋण मोचन पुरुषकी तरह आनन्दसे साधुकी तरह प्रस्थान करना चाहिये। निदानको छोड़ कर आर्त-भय पष्ठ गुणस्थान तक होते हैं। दूसरे क्या वह गुण-स्थान पलायमान हो गया। थोड़े समय तक अर्जित कर्म आया, फल देकर चला गया। अच्छा हुआ आकर हलकापन कर गया। रोगका निकलना ही अच्छा है। मेरी सम्मतिमें निकलना, रहने की अपेक्षा प्रशस्त है। इसी प्रकार आपकी असाता यदि शरीरकी जीर्ण शीर्ण अवस्था कर निकल रही है तब आपको बहुत आनंद मानना चाहिये। अन्यथा यदि वह अभी न निकलती तब क्या स्वर्गमें निकलती ? मेरी दृष्टिमें केवल असाता ही नहीं निकल रही साथ ही मोहकी अरति आदि प्रकृतियां भी निकल रही हैं, क्योंकि आप इस असाताको सुखपूर्वक भोग रहे हैं। शांतिपूर्वक कर्मोंके रसको भोगना आगामी दुखकर नहीं।

बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ परन्तु ज्ञानकी न्यूनतासे लेखनी रुक जाती है। बन्धुवर। मै एक बातकी आपसे जिज्ञासा करता हूँ जितने लिखनेवाले और कथन करनेवाले तथा कथन कर वाह्य चरणानुयोगके अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाले तथा आर्षवाक्यो पर श्रद्धालु यावत् व्यक्ति हुये हैं, अथवा है और होंगे। क्या सर्व ही मोक्षमार्गी हैं ? मेरी तो श्रद्धा नहीं। अन्यथा कुन्दकुन्द-स्वामीने लिखा है। 'हे प्रभो ! हमारे शत्रुको भी द्रव्यलिंग न हो' इस वाक्यकी चरितार्थता न होती तो काहेको लिखते। अतः पर की प्रवृत्ति देख रञ्चमात्र भी विकल्पको आश्रय न होना ही हमारे लिये हितकर है। आपके ऊपर कुछ भी आपत्ति नहीं, जो आत्म-

हित करनेवाले हैं वह शिर पर आग लगाने पर तथा सर्वाङ्ग अग्निमय आभूषण धारण कराने पर तथा यंत्रादिद्वारा उपद्रित होनेपर मोक्षलक्ष्मीके पात्र होते हैं। मुझे तो इस आपकी असाता और श्रद्धा देखकर इतनी प्रसन्नता होती है. प्रभो! यह अवसर सबको दे। आपकी केवल श्रद्धा ही नहीं किन्तु आचरण भी अन्यथा नहीं। क्या मुनिको जब तीव्र व्याधिका उदय होता है तब बाह्य चरणानुयोग आचरणके असद्भावमें क्या उनके षष्ठ गुणस्थान चला जाता? यदि ऐसा है तब उसे समाधिमरणके समय हे मुने! इत्यादि सम्बोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार सगत होता? पीड़ा आदिमें चित्त चञ्चल रहता है इसका क्या यह आशय है पीड़ाका बारंबार स्मरण हो जाता है। हो जाओ, स्मरण ज्ञान है और जिसकी धारणा होती है उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है। किन्तु साथमें यह भाव तो रहता है—यह चञ्चलता सम्यक् नहीं। परन्तु मेरी समझमें इसपर भी गंभीर दृष्टि दीजिये। चञ्चलता तो कुछ बाधक नहीं। साथमें उसके अरतिका उदय और असाताकी उदीरणासे दु:खानुभव हो जाता है। उसे पृथक् करनेकी भावना रहती है। इसीसे इसकी महर्षियोंने आर्तध्यानकी कोटिमें गणना की है। क्या इस भावके होनेसे पञ्चम गुणस्थान मिट जाता है। यदि इस ध्यानके होने पर देशव्रतके विरुद्ध भावका उदय श्रद्धामें न हो तब मुझे तो दृढ़तम विश्वास है गुणस्थानकी कोई भी क्षति नहीं। तरतमता ही होती है वह भी उसी गुणस्थानमें। ये विचारे जिन्होंने कुछ नहीं जाना कहां जावेंगे—कहीं जाओ। हमें इसकी मीमांसासे क्या लाभ। हम विचारें इस भावसे हम कहां जावेंगे इस पर ही विचार करना चाहिये।

आपका सच्चिदानंद जैसा आपकी निर्मल दृष्टिने निर्णीत किया

है द्रव्यदृष्टिसे वैसा ही । परन्तु द्रव्य तो भोग्य नहीं, भोग्य तो पर्याय है, अतः उसके तात्त्विक स्वरूपके जो साधक हैं इन्हें पृथक् करनेकी चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है।

चोरकी सजा देखकर साधुको भय होना मेरे ज्ञानमें नहीं आता। अतः मिथ्यात्वादि क्रियासंयुक्त प्राणियोका पतन देख हमें भय होनेकी कोई भी बात नहीं। हमको तो जब सम्यक् रत्नत्रयकी तलवार हाथमें आ गई है और वह यद्यपि वर्तमानमें मौथरी धार-वाली है परन्तु है तो असि, कर्मेन्धनको धीरे धीरे छेदेगी। परन्तु छेदेगी ही बड़े आनन्द से। जीवनोत्सर्ग करना, अंस मात्र भी आकुलता श्रद्धामें न लाना। प्रभुने अच्छा ही देखा है। अन्यथा उसके मार्ग पर हम लोग न आते। समाधिमरणके योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव क्या परनिमित्त ही हैं ? नहीं।

जहां अपने परिणामोमें शान्ति आई वहीं सर्व सामग्री है। अतः हे भाई! आप सर्व उपद्रवोंके हरणमें समर्थ और कल्याणपथके कारणोमें प्रमुख जो आपकी दृढ़तम श्रद्धा है वह उपयोगिनी कर्मशत्रुवाहिनीको जयनशीला तीक्ष्ण असिधारा है। मैं तो आपके पत्र पढ़कर निश्चय कर चुका हूँ कि समाधिमरणकी महिमा अपने ही द्वारा होती है। क्या आप इससे लाभ न उठावेंगे ? अवश्य ही उठावेंगे। बाबाजीका इच्छाकर।

आषाढ़वदी १, } आ० शु० चि०
सं० १९९४ } गणेश वर्णी

नोट—मै विवश हो गया। अन्यथा अवश्य आपके समाधि-मरणमे सहकारी हो पुण्यलाभ करता। आप अच्छे स्थान पर ही जावेंगे। परन्तु पंचम काल है। अत. हमारे सम्बोधनके लिये आपका उपयोग ही इस ओर न जावेगा अथवा जावेगा ही। तव

कालकृत असमर्थता वाधक होकर आपको शांति न देगा। इससे कुछ उत्तरकालकी याचना नही करता।

[७-६]

श्रीयुत महाशय पं० दीपचन्द जी वर्णी, योग्य इच्छाकार

वन्धुवर ! आपका पत्र पढ़कर मेरी आत्मामे अपार हर्ष होता है कि आप इस रुग्णावस्थामें दृढ़श्रद्धालु हो गये हैं। यही ससार से उद्धारका प्रथम प्रयत्न है। कायकी क्षीणता कुछ आत्मतत्त्वकी क्षीणतामें निमित्त नहीं। इसको आप समीचीनतया जानते है। वास्तवमें आत्माके शत्रु तो राग द्वेष और मोह हैं। जो उसे निरंतर इस दु खमय संसारसें भ्रमण करा रहे हैं। अत. आवश्यकता इसकी है कि रागद्वेषके आधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानंदकी ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है।

औदयिक रागादि होवें इसका कुछ भी रञ्ज नही करना चाहिये। रागादिकोंका होना रुचिकर नही होना चाहिये। वड़े वड़े ज्ञानी जनोके राग होता है। परन्तु उस रागमे रञ्जके अभाव से अग्रे उसकी परिपाटीरोधका आत्माको अनायास अवसर मिल जाता है। इस प्रकार औदयिक रागादिकोंकी सन्तानका अपचय होते होते एक दिन समूलतलसे उसका अभाव हो जाता है और तव आत्मा अपने स्वच्छ स्वरुप होकर इन संसारकी वासनाओंका पात्र नहीं होता। मैं आपको क्या लिखू। यही मेरी सम्मति है कि अव विशेष विकल्पोंको त्यागकर जिस उपायसे रागद्वेपका आशयमें अभाव हो वही आपका व मेरा कर्त्तव्य है, क्योंकि पर्यायका अवसान है। यद्यपि पर्यायका अवसान तो होगा ही किन्तु फिर भी सम्वोधनके लिये कहा जाता है तथा

मूढ़ोको वास्तविक पदार्थका परिचय न होनेसे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है।

विचारसे देखिये तब आश्चर्यको स्थान नही। भौतिक पदार्थोंकी परिणति देखकर बहुतसे जन क्षुब्ध हो जाते हैं। भला जब पदार्थमात्र अनन्त शक्तियोका पुञ्ज है तब क्या पुद्गलमें वह बात न हो, यह कहांका न्याय है। आजकल विज्ञानके प्रभाव को देख लोगोकी श्रद्धा पुद्गलद्रव्यमें ही जाग्रत हो गई है। भला यह तो विचारिये उसका उपयोग किसने किया। जिसने किया उसको न मानना यही तो जड़भाव है।

विना रागादिकके कार्मण वर्गणा क्या कर्मादि रूप परिणमन को समर्थ हो सकती है? तब यो कहिये—अपनी अनन्तशक्ति के विकाशका वाधक आप ही मोहकर्म द्वारा करा रहा है फिर भी हम ऐसे अन्धे हैं जो मोहकी महिमा आलाप रहे है। मोहमें वलवत्ता देनेवाली शक्तिमान वस्तुकी ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाववाले पदार्थको कि जिसकी वक्र दृष्टिसे यह जगत अनादिसे बन रहा है और जहां उसने वक्रदृष्टि को संकोच कर एक समय मात्र सुदृष्टिका अवलम्बन किया कि इस संसारका अस्तित्व ही नही रहता। सो ही समयसारमें कहा है—

कषायकलिरेकतः शान्तिरस्त्येकतो।
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः॥
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः।
स्वभावमहितात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः॥

अर्थ—एक तरफसे कषायकालिमा स्पर्श करती है और एक तरफसे शान्ति स्पर्श करती है। एक तरफ संसारका आघात

है और एक तरफ मुक्ति है। एक तरफ तीनो लोक प्रकाशमान हैं और एक तरफ चेतन आत्माका प्रकाश कर रहा है। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आत्माकी स्वभावमहिमा विजयको प्राप्त होती है। इत्यादि अनेक पद्यमय भावोंसे यही अन्तिम करन प्रतिमाका विषय होता है जो आत्मद्रव्य ही की विचित्र महिमा है। चाहे नाना दु.खाकीर्ण जगतमें नाना वेष धारण कर नटरूप बहुरूपिया बने। चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लीलाको सम्वरण करके गगनवत् परमार्थिक निर्मल स्वभावको धारण कर निश्चल तिष्ठे। यही कारण है। "सर्वं वै खल्विद ब्रह्म" अर्थ—यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है। इसमें कोई सन्देह नहीं, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रह को छोड़ देवे तब जो कुछ कथन है अक्षरश: सत्य भासमान होने लगे। एकान्तदृष्टि ही अन्धदृष्टि है। आप भी अल्प परिश्रम से कुछ इस ओर आइये। भला यह जो पंच स्थावर और त्रसका समुदाय जगत दृश्य हो रहा, क्या है? क्या ब्रह्मका विकार नहीं? अथवा स्वमतकी ओर कुछ दृष्टिका प्रसार कीजिये। तब निमित्त कारणकी मुख्यतासे ये जो रागादिक परिणाम हो रहे हैं उन्हें पौद्‌गलिक नहीं कहा है। अथवा इन्हे छोड़िये। जहां अवधिज्ञान का विषय निरूपण किया है वहा क्षयोपशम भावको भी अवधि-ज्ञानका विषय कहा है। अर्थात् रूपी पुद्गल द्रव्य सम्बन्धेन जाय-मानत्वात् क्षायोपशिक भाव भी कथंचित् रूपी है। केवलभाव अवधि-ज्ञानका विषय नहीं. क्योंकि उसमें रूपी द्रव्यका सम्बन्ध नहीं। अतएव यह सिद्ध हुआ—औदयिक भाववत् क्षायोपशमिक भाव भी कथंचित पुद्गलसम्बन्धेन जायमान होनेसे मूर्तिमत् है न कि रूप रसादिमत्ता इनमें है। तद्वत् अशुद्धताके सम्बन्ध से जाय-मान होनेसे यह भौतिक जगत भी कथंचित् ब्रह्मका विकार है। कथंचित का यह अर्थ है—

जीव के रागादिक भावोंके ही निमित्त को पाकर पुद्गल द्रव्य एकेन्द्रियादिरूप परिणमन को प्राप्त है। अतः यह जो मनुष्यादि पर्याय हैं असमान जातीय द्रव्यके संबंधसे निष्पन्न हैं न केवल जीवकी हैं और न केवल पुद्गलकी हैं। किन्तु जीव और पुद्गलके संबधसे जायमान हैं। तथा यह जो रागादि परिणाम हैं सो न तो केवल जीवके ही हैं और न केवल पुद्गल के हैं किन्तु उपादानकी अपेक्षा तो जीवके है और निमित्त कारणकी अपेक्षा पुद्गलके हैं और द्रव्यदृष्टि कर देखें तो न पुद्गलके हैं और न जीवके हैं। शुद्ध द्रव्यके कथनमे पर्याय की मुख्यता नहीं रहती। अतः यह गौण हो जाते हैं। जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुप दोनोंके द्वारा सम्पन्न होती है। अस्तु इससे यह निष्कर्ष निकला कि यह जो पर्याय है वह केवल जीवकी नहीं किन्तु पौद्गल मोहके उदयसे आत्माके चारित्रगुणमें विकार होता है। अतः हमें यह न समझना चाहिये कि हमारी इसमें क्या क्षति है? क्षति तो यह हुई कि जो आत्माकी वास्तविक परिणति थी वह विकलताको प्राप्त हो गई। वही तो क्षति है। परमार्थसे क्षतिका यह आशय है कि आत्मा में रागादिक दोष हो जाते हैं वह न होवें। तव जो उन दोषोंके निमित्तसे यह जीव किसी पदार्थमें अनुकूलता और किसीमे प्रतिकूलताकी कल्पना करता था और उनके परिणमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभावमें आकुलित रहता था शान्तिके आस्वादकी कणिकाको भी नहीं पाता था। अब उन रागादिक दोषोंके असद्भावमे आत्मगुण चारित्रकी स्थिति अकम्प और निर्मल हो जाती है। उसके निर्मल निमित्तको अवलम्बन कर आत्माका चेतना नामक गुण है वह स्वयमेव दृश्य और ज्ञेय पदार्थोंका तद्रूप हो दृष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी

अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली आकाशादिवत् अकंप रहता है। इसीका नाम भावमुक्ति है। अब आत्मामें मोह निमित्तक जो कलुषता थी वह सर्वथा निर्मूल हो गई किन्तु अभी जो योग निमित्तक परिस्पन्दन है वह प्रदेश प्रकम्पनको करता ही रहता है। तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी सातावेदनीयका हुआ करता है। यद्यपि इसमें आत्माके स्वाभाविक भावकी क्षति नहीं। फिर भी निरपवर्त्य आयुके सद्भावमें यावत् आयुके निषेक हैं तावत् भवस्थितिको मेंटनेको कोई भी क्षम नहीं। तब अन्तर्मुहूर्त आयुका अवसान रहता है। तथा शेष जो नामादिक कर्मकी स्थिति अधिक रहती है, उस कालमें तृतीय शुक्लध्यान के प्रसादसे दंड कपाटादि द्वारा शेष कर्मोंकी स्थितिको आयु समकर चतुर्दश गुणस्थानका आरोहण कर अयोग नामको प्राप्त करता हुआ लघु पचाक्षरके उच्चारणके काल सम गुण-स्थानका काल पूर्णकर चतुर्थध्यानके प्रसादसे शेष प्रकृतियोंको नाश कर परम यथाख्यातचारित्रका लाभ करता हुआ एक समय में द्रव्य मुक्ति व्यपदेशताको लाभकर मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मीका भोक्ता होता हुआ लोक शिखरमें विराजमान होकर तीर्थङ्कर प्रभुके समवशरणका विषय होकर हमारे कल्याणमें सहायक हो। यही हम सबकी अन्तिम प्रार्थना है।

श्रीमान् बाबा भागीरथजी महाराज आगये। उनका सस्नेह आपको इच्छाकार। खेद इस बातका विभावजन्य हो जाता है जो आपकी उपस्थिति यहाँ न हुई। जो हमें भी आपका वैयावृत्ति करनेका अवसर मिल जाता परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहाँ? जो सल्लेखनाधारी एक सम्यग्ज्ञानी पंचमगुणस्थानवर्ती जीवकी प्राप्ति हो सके। आपके स्वास्थ्यसे आभ्यतर तो क्षति है नहीं, जो है सो बाह्य है। उसे आप प्राय. वेदन नहीं करते,

यही सराहनीय है। धन्य है आपको जो इस रुग्णावस्थामे भी सावधान हैं। होना ही श्रेयस्कर है। शरीरकी अवस्था अपस्मार वेगवत् वर्धमान हीयमान होनेसे अध्रुव और शीतदाह ज्वरावेश द्वारा अनित्य है। ज्ञानी जनको ऐसा जानना ही मोक्षमार्गका साधक है। कब ऐसा समय आवेगा जो इसमे वेदनाका अवसर ही न आवे। आशा है एक दिन आवेगा जब आप निश्चल वृत्तिके पात्र होवेंगे। अब अन्य कार्यासे गौण भाव धारण कर सल्लेखना के ऊपर ही दृष्टि दीजिये और यदि कुछ लिखनेकी चुलबुली उठे तब उसी पर लिखनेकी मनोवृत्तिकी चेष्टा कीजिये। मै आपकी प्रशंसा नहीं करता। किन्तु इस समय ऐसा भाव, जैसा कि आपका है, प्रशस्त है। ज्येष्ठ वदी १ से फा० सु० ५ तक मौन का नियम कर लिया है। एक दिन में १ घण्टा शास्त्रमें बालूंगा। पत्र मिल गया। पत्र न देनेका अपराध क्षमा करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[७-७]

श्रीयुत महाशय दीपचंद जी वर्णी साहब, योग्य इच्छाकार

पत्रसे आपके शारीरिक समाचार जाने। अब यह जो शरीर पर है शायद इससे अल्प ही कालमें आपकी पवित्र भावनापूर्ण आत्माका सम्बन्ध छूटकर वैक्रियकशरीरसे सम्बन्ध हो जावे। मुझे यह दृढ़ श्रद्धान है कि आपकी असावधानी शरीरमे होगी न कि आत्मचिंतवनमें। असातोदयमे यद्यपि मोह के सद्भाव-से विकलता की सम्भावना है तथापि आंशिक भी प्रबल मोह के अभाव मे वह आत्मचिंतन का बाधक नहीं हो सकती। मेरी तो दृढ़ श्रद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होंगे और अन्त तक

दृढ़तम परिणामों द्वारा इन क्षुद्र बाधाओं की ओर ध्यान भी न देंगे। यही अवसर संसारलतिकाके घातका है।

देखिये जिस असातादि कर्मोंकी उदीरणाके अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्र तप धारण करते-करते शरीरको इतना कृश बना देते हैं जो लावण्यका अनुमान भी नहीं होता। परन्तु आत्मदिव्यशक्तिसे पूर्ण भूषित ही रहते हैं। आपका धन्य भाग्य है जो विना ही निर्ग्रन्थ पद धारणके कर्मोंका ऐसा लाघव हो रहा है जो स्वयमेव उदयमे आकर पृथक् हो रहे हैं। इसका जितना हर्ष मुझे है, मैं नहीं कह सकता, वचनातीत है।

आपके ऊपरसे भार उठ रहा है फिर आपके सुखकी अनुभूति तो आप ही जानें। शांतिका मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव है जो कि इस समय आपके हो रहा है। अब केवल ब्रह्मानुभव ही रसायन परमौषधि है। कोई कोई तो क्रम क्रमसे अन्नादिका त्याग कर समाधिमरणका यत्न करते हैं। आपके पुण्योदयसे स्वयमेव वह छूट गया। वही न छूटा साथ ही साथ असातोदय द्वारा दुखजनक सामग्रीका भी अभाव हो रहा है।

अतः हे भाई! आप रंचमात्र क्लेश न करना। जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्माको लघु बना देती है तो इससे विशेष और आनन्दका क्या अवसर होगा। मुझे अतरंगसे इस बातका पश्चात्ताप हो जाता है जो अपने अतरग बन्धुकी ऐसी अवस्थामे वैयावृत्त्य न कर सका।

माघ व० १४ सं० ९४ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० शीतलप्रसादजी वर्णी

श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसादजी का जन्म सन् १८७९ ई० को लखनऊमें हुआ था। पिताका नाम लाला मक्खनलालजी और माताका नाम नारायणी देवी तथा जाति अग्रवाल थी। प्रारम्भमें ये रुडकी इञ्जीनियरिंग कालेजसे एकाउन्टेंटशिपकी परीक्षा पास कर सरकारी नौकरी करने लगे थे।

इनका विवाह कलकत्ताके वैष्णव अग्रवाल छेदीलालजी की सुपुत्रीके साथ हुआ था। किन्तु सन् १९०४ की महामारीमें इनकी पत्नीका देहावसान हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत रहने लगे और १९ अगस्त सन् १९०५ में सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र देकर स्वाध्याय और समाज सेवामें लग गये। इन्होंने ३२ वर्षकी आयुमें सन् १९११ ई० के मार्गशीर्षमें श्री १०५ ऐलक पन्नालालजी के समक्ष सोलापुरमें ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की थी।

ब्रह्मचारीजी की साधना बड़ी थी। इन्होने अपने जीवन कालमें समाज और धर्मकी अपूर्व सेवा की है। वैदिक परम्परामें स्वामी दयानन्द सरस्वतीका जो स्थान था जैन समाजमें ब्र० शीतलप्रसादजी का वही स्थान रहा है। दि० जैन परिषदके संस्थापकोंमें ये प्रमुख थे। बहुत काल तक ये श्री स्याद्वाद महाविद्यालयके अधिष्ठाता रहे हैं और अनेक संस्थाऐं स्थापना की है। धर्म और समाजके हितमें इनकी कलम दिन-रात चलती रहती थी। ये जैन समाजके नेता और समाज सुधारके अग्रणी थे।

इनका देहावसान १० फरवरी सन् १९४२ को लखनऊमें समाधि पूर्वक हुआ था। पूज्य श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णीसे इनका चिरकाल तक सम्पर्क रहा है। फल स्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[८–१]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी पं० शीतलप्रसाद जी !

आप सानन्द तथा निःशल्य होकर ही आइये। आपके धर्म ध्यान के लिये हम यथाशक्ति त्रुटि न करेंगे। यह क्षेत्र निर्वाण की प्राप्ति के लिये प्रसिद्ध है। आजन्म समयसार का मनन कर ऐसा अध्ययन अध्यापन करके भी यदि हमारा और आपका मत भेद बना रहा तब हम दोनोंमें से अन्यतर मिथ्यात्व का पात्र है ऐसी मेरी दृढ़ प्रतीति है। यद्यपि हम और आप दोनों ही अपने अपने सम्यग्दृष्टि होनेका दावा करते हैं किन्तु उभयमें अन्यतर ही इस गुणका पात्र हो सकता है। यह निर्णय तो दिव्य ज्ञानमें ही है जो अमुक इसका पात्र है। लौकिक जन आपके अनुयायी आपको और मेरे अनुयायी मुझे कहेंगे। जो हो इस चर्चाका अवसर नहीं। कल्पना कीजिये दो मनुष्य ४० सेरका ही मन मानते हैं, परन्तु उनमें एक कहता है ८० रुपये भरका सेर होता है और एक कहता है कि नहीं ७९|||≡)||| भरका सेर होता है,)| भरका भेद कोई भेद नहीं। परन्तु विज्ञजन इसको कभी भी तथ्य नहीं मान सकते। श्वेताम्बर कवलाहार केवलीके मानते हैं, दिगम्बर नहीं मानते। तब क्या अन्य सिद्धान्तमें समानता होने पर कदापि दोनोंका मत एक हो सकता है? कर्तृत्व, अकर्तृत्व, द्वैत, अद्वैत, शुद्ध, अशुद्ध, इत्यादि एक बातके भेद होने पर ही नाना मतके निर्माण संसारमें होगए। महासभा और परिषद्में क्या बात है? क्या सर्व नियमोंमें भेद है? एक ही नियमकी कृपासे समाजका जैसा उत्थान हो रहा है, किसीसे अव्यक्त नहीं। यदि दोनों पक्षमें कोई पक्ष अपनी हठको छोड़ दे, तब क्या समाजका उत्थान न हो? अस्तु, इस अरण्यरोदनसे कुछ

भी लाभ नहीं। आपका जो अभिप्राय है सुरक्षित रखिये। उससे न मेरी क्षति है और न अक्षति। उस सिद्धान्तसे क्षति व अक्षति आपकी होगी। अन्यतरमे क्या होगा सो वीरप्रभु जाने। विपक्षी क्षति और अविपक्षी अक्षति कह ही रहे हैं। अन्तिम आपसे यही नम्र निवेदन है जो मेरा आपसे बहुत प्राचीन व धार्मिक प्रेम है उसे आप भी स्वीकार करेंगे। मै यह भी मानता हूँ जो आप विशिष्ट ज्ञानी हैं और कर्मठ हैं, अतः आपमे विशेष धर्मानुराग होने से फिर भी लिखना पड़ता है।

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतम्
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ॥
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥

यह कुछ वाद करनेकी नियतसे नहीं लिखा है। केवल स्वकीय अभिप्रायको संक्षिप्ततया व्यक्त करनेका प्रयास है। इसको बांचकर आप स्वकीय शुभागमनके अभिप्रायको परिवर्तन करनेकी बात स्वप्नमे भी मनमे न लाइये। आपके आनेका मुझे हर्ष है। विशेष क्या लिखे ? कोई किसीको परिणमन करनेमे समर्थ नहीं।

२०-८-३६ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[८-२]

श्रीयुत ब्रह्मचारीजी, योग्य इच्छाकार

आपका यहाँ दिवाली बाद आनेका विचार है, सो आइये। हमसे जो कुछ बनेगा आपकी वैयावृत्त करनेमे त्रुटि न करेंगे। आपको कुछ सन्देह मालूम होता है, उसकी कुछ आवश्यकता

नहीं। अब तो अन्तिम पथकी ओर जारहे हो सो अभ्रान्त रहना चाहिये। स्पष्ट उत्तर आपकी श्रद्धाके ऊपर है। आपने जो लिखा है कि कम्परोग हो गया है सो असाताके तीव्रोदय या उदीरणामें ऐसी अनेक अवस्था होती है; किन्तु यदि उसके साथ मोहोदयकी बलवत्ता नहीं तब वह कुछ दुःखानुभवमें आत्मगुणका घातक नहीं, क्योंकि "घादी व वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं" अतः आप विज्ञ हैं, उसे अकिंचन ही समझते होंगे। जरा रोगमें भी यही चरितार्थ है। "जैनमित्र" की सम्पादकी छोड़ दी या छूट गई यह आपके अनुभवगम्य है। किन्तु "सनातन जैन' के अभिप्रायको छोड़ दिया होगा। उसे भी इस समय छोड़नेका अवसर है। 'जैनमित्र" की सम्पादकी छोड़ दी यह तो उचित ही किया, क्योंकि अब अवस्था भी तो अन्यथा हो गई। साथमें "सनातन जैन" की भी सम्पादकी छोड़ दीजिये। अब आपका अन्तिम काल है। क्या ही अच्छा सुवर्ण अवसर आपके हाथ है। सर्वप्रकारकी शल्यको छोड़कर परम पथके पथिक बनिये। किसीके कहनेमें न आकर 'विधवा विवाहादि शास्त्र असम्मत है' यदि इसको आप लिख देवें तब अतिउत्तम हो।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी
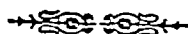
ब्र० नेमिसागरजी वर्णी

श्रीमान् ब्र० नेमिसागरजी वर्णीका जन्म वि० सं० १९३६ को दक्षिण प्रान्तमे हुआ है। पिताका नाम श्री दुग्गण अधिकारी और माताका नाम जाकम्म था। जन्मसे ये क्षत्रिय हैं। शिक्षा ग्रहण करनेके बाद सात वर्ष तक ये कन्नड स्कूलमें शिक्षक रहे और उसके बाद चार वर्ष तक कारकल जैन मठके व्यवस्थापक रहे।

बचपनसे ही इनकी वृत्ति त्यागमय थी, इसलिए विवाह न कराकर वि० सं० १९५८ में इन्होने ललितकीर्ति महाराजके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। गृहत्यागी होनेके बाद विशेष-रूपसे इनका ध्यान संस्कृत शिक्षा की ओर गया और इस निमित्त इन्होंने आरा, बनारस, मोरेना व मैसूरमें रहकर संस्कृत व्याकरण, साहित्य व धर्मशास्त्रकी विशेष शिक्षा ग्रहण की।

इनके आचार और व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर श्रवणबेल्गोल के व्यवस्थापकोंने इन्हे वि० सं० १९८९ में भट्टारकके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसका इन्होंने बड़ी योग्यता और निस्पृहताके साथ निर्वाह किया।

अपनी उदासीन परिणतिके कारण अन्तमें इन्होंने इसका त्याग कर दिया है और वर्तमानमें जैन गुरुकुल उज्रे (दक्षिण कन्नड़) में स्वाध्याय और आत्मचिन्तनमें रत रहते हुए जीवन यापन कर रहे हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी के प्रति इनकी विशेष आस्था है। उसीके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी के इन्हें जो सारगर्भित पत्र प्राप्त होते रहे हैं उनमेंसे उपलब्ध हुआ एक पत्र यहां दिया जाता है।

[६-१]

श्रीयुत महाशय नेमिसागरजी ब्रह्मचारी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द पञ्चकल्याणक देखकर आनेका प्रयत्न करना। हमारा प्रबलतम पुण्योदय नहीं, अन्यथा ऐसी प्रतिज्ञा न होती। हमारा तो दृढ़ निश्चय है कि प्रभुके ज्ञानमे देखा गया होगा, वही होगा। किसीकी सुश्रूशा करनेमे कोई लाभ नहीं। जिसको आत्म-कल्याण करना हो वह आत्मसम्बन्धी रागादिक छोड़े। लोग अन्यकी समालोचना करनेमें समय लगाते हैं। कल्याणका इच्छुक आत्म-सम्बन्धी दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न करता है और वही संसार दुःखोंसे दूर हो जाता है। आप लोगोंकी जो कुछ मंशा हो, आप जानें; परन्तु ऐसा उत्तम क्षेत्र धर्म साधनके अर्थ अन्यत्र नहीं। सामने श्री पार्श्व प्रभुकी निर्वाणभूमिके दर्शन, प्रान्तमें तपोभूमि, अथ च यहाँके मनुष्य सरल और दम्भसे रहित हैं। यदि इनमे मद्य-पीनेका दोष न होता तब सहजमें ये धर्म धारणके पात्र हो जाते। परन्तु पञ्चमकालमे ऐसा होना असम्भव है। हम तो अपनी बात कहते हैं—इतने दिन बाह्य क्रिया करते हो गये, मृत्युके सन्निहित आ पहुँचे, परन्तु हृदयकी कुटिलता नहीं गई। यह मेरा लिखना अपने वास्ते है, क्योंकि मुझे अपने हृदयका भाव ज्ञात है। आप महाशयोंकी वृत्ति आप जानें। धर्मका परमार्थ-रूप बाह्य व्यापारसे परे है। वचनकी सुन्दरतासे अन्तरङ्गकी वृत्ति भी सुन्दर हो यह नियम नहीं। वहाँ पर अच्छे अच्छे धीमान् पण्डित और श्रीमान् सेठ आवेंगे। आप उनसे यह कहना—केवल व्याख्यानकी रोचकतासे समाजको खुश करके धन्यवाद लेकर न चले जाना, किन्तु उस क्षेत्र और विद्यालयका उद्धार करके जाना ही आपकी विद्वत्ताकी सफलता है। उनके हृदयमें निरन्तर स्मरण

रहे ऐसा जाना ही अच्छा है। धनिकवर्गसे भी यही मेरा कहना है—केवल उत्सवकी शोभा सम्पादन करके न चले जाना, किन्तु क्षेत्र और पाठशालाका उद्धार करके जाना। आपके बुलानेका प्रायः यही उद्देश्य प्रमुख कार्यकर्त्ताओंका था। या न हो तो वे जानें। परन्तु आप श्रीमानोंका कर्त्तव्य है कि योग्य क्षेत्रमें दान करके स्वकीय विवेकका समाजको अनुकरण करनेका पाठ पढ़ा करके शुभ प्रस्थान करके जाना।

ऊषरे सरसि शाल्मलिवने दावपावकचितेऽपि चन्दने।
तुल्यमर्पयसि वारि वारिद कीर्तिरस्तु गुणविज्ञता गता।

अन्यथा—

"वितर वारिद वारि तृषातुरे चिरपिपासितचातकपोतके।
प्रचलति मरुति क्षणमन्यथा क्व च भवान् क्व च पयः क्व च चातकः।"

विशेष क्या लिखूं? वहाँपर जो उत्तम वक्ता आवें, उनसे यह मेरा सन्देश अवश्य उचित समयपर समाजको सुनानेके लिए कह देना। मुझे लिखनेका अभ्यास कम है। अतः जो मेरा भाव है उसे अपने शब्दोंमें लाकर समाजके हृदयमें अंकित करनेकी अवश्य चेष्टा करें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० प्यारेलालजी भगत

श्रीमान् ब्र० प्यारेलालजी भगतका जन्म मगसिर शु० ६ वि० सं० १९४१ को दिवी (राजाखेड़ा) में हुआ है। पिताका नाम लाला नाथूरामजी और माताका नाम सुमित्रादेवी तथा जाति जैसवाल है। प्रारम्भिक शिक्षा अक्षर ज्ञान तक सीमित होते हुए भी इनका धर्मशास्त्रका ज्ञान उच्चकोटिका है।

प्रारम्भसे ही आत्मकल्याणकी ओर विशेष लक्ष्य होनेसे इन्होंने पहले व्रत प्रतिमा ले और उसके बाद वि० सं० १९९१ में इन्दौरमें श्री १०८ कुन्थुसागर महाराजकी उपस्थितिमें स्वयं सातवीं प्रतिमाके व्रत धारण किये।

त्यागधर्मके साथ इनकी सामाजिक सेवा भी सराहनीय है। अधिष्ठाता पद पर रहते हुए ईसरी और इन्दौर उदासीनाश्रमकी ये बहुत कालसे संन्हाल करते आ रहे हैं। राजाखेड़ा और कोडरमा की शिक्षा संस्थाऐं भी इन्होने स्थापित की हैं।

कलकत्तामें हिन्दू-मुस्लिम दङ्गाके समय इन्होंने हजारों स्त्री-पुरुषोंको बेलगछियाके जैन-मन्दिरमें आश्रय देकर उनकी रक्षा की थी। अहिंसाके प्रचारकी ओर भी इनका निरन्तर ध्यान रहता है। फलस्वरूप इन्होंने देश विदेशके अनेक मांससेवी स्त्री-पुरुषोंको मांसका परित्याग कराकर धर्ममार्ग पर लगाया है। इतना सब होते हुए भी स्वाध्याय और आत्मचिन्तन इनका मुख्य व्रत है। समाजमें ये चुने हुए कुछ प्रतिष्ठित त्यागियोंमेंसे एक हैं।

ये पूज्य श्री १०५ वर्णीजो द्वारा निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं। फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[१०—१]

महानुभाव भगतजी साहब, इच्छाकार

मै दीपमालकोत्सव पर श्री वीरनिर्वाणके पूजन होने अनन्तर प्रस्थान कर दूँगा। सर्वकी सम्मति है राजगृही होकर चलो। २५ मीलका अन्तर है। तीन क्षेत्रोंकी वन्दना अनायास हो जायगी। मार्ग भी अच्छा है। अन्तमे पार्श्वचरणमे तो रहना ही है। आपकी निर्मल परिणति ही कल्याणमार्गकी जननी है, अतः मेरी भावना भी यही है जो जगतकी चिन्ता उसकी ही मिटती है जो अपनेको जाने।

जो निज आत्माका कल्याण करनेमे प्रमादी वह जगतका कल्याण क्या कर सकता है, अतः ऐसे अकर्मण्य मनुष्योंके संसर्गसे अपनेको बचावें।

का० व० ३, सं० २०१० }   आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०—२]

श्रीयुत महाशय सर्वहितैषी भगतजी, योग्य इच्छाकार

आपका समय समयानुकूल ही बीत रहा है, क्योंकि सामग्री अनुकूल है। कल्याणका मार्ग स्वतंत्र है परन्तु वह भी द्रव्यादि चतुष्टयाधीन ही है। वह चतुष्टय भी उपादान निमित्तके भेदसे द्वेधा है। अस्तु, विशेष तो यह है जो स्वीय रागादिकी हानि ही स्वात्मकल्याणकी जननी है। केवलज्ञान भी उसीके सद्भावमे होता है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो ज्ञानकी महिमा वही जानता है

जो रागादि दोषोंसे कलंकित न हो। ज्ञानका फल अज्ञाननिवृत्ति है। स्वामी समन्तभद्रका कहना है—

उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्यादानहानिधीः।
पूर्वं वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे॥

अतः कल्याणके इच्छुकोंको ज्ञानार्जनके साथ-साथ रागादि निरसन भी करना परमोपकारी है। यही बात सर्वत्र लागू है। क्रियाकाण्डवालोंको यह भूलना न चाहिये। बिना रागादि निरसनके उस क्रियाकाण्डका कोई मूल्य नहीं। आप तो ऐसे समागममें हैं जहाँ निरन्तर इसका परामर्श होता रहता है। मेरा सेठजी सा० को यथायोग्य कहना। उनको क्या पत्र लिखें? वे तो स्वयं कल्याणमार्गके पथिक हैं। केवल आप ही नहीं, आपका उच्चा बहुतोंको साथमें लिये जा रहा है और उनके उदयसे उसको ले जानेवाले निपुण हैं जो हर विघ्नसे उसकी रक्षा करनेवाले हैं। आज सेठजीका अनुकरण प्रत्येक धनाढ्य करे तब अनायास जैनधर्मका विकाश हो जावे। जैनधर्मका विकाश वही कर सकता है जो अष्ट कर्मरूप शरीरके मुख्यांग मोहको भंग कर देता है। उसके भग होते ही शेष रुंडका अनायास पतन हो जाता है। हम तो श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमें रहनेके इच्छुक हैं।

फा० सु० १५, सं० २०१० } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०—३]

श्रीयुत महाशय भगतजी, योग्य इच्छाकार

आपके पत्र आये। परम आह्लादके कारण थे। वही मनुष्य कल्याणका पात्र हो सकता है जो आत्मीय लक्ष्यसे च्युत न हो।

यही फल साधु समागमादि कारणोसे हो सकता है। न भी हो परन्तु होनेका निमित्त है तो यही है। आज कल यहाँ ३ मुनि, ३ क्षुल्लक, २ आर्या हैं। हम भी आश्रममे हैं। न जाने कैसा समय है जो ३६ के अककी दशाका प्रत्यक्ष होता रहता है। यद्यपि संसारके साथ ३६ का होना अच्छा है परन्तु यहाँ तो कुछ और ही बात है जो लिखनेमे संकोच होता है। ६३ होनेकी बात करते है, परन्तु उसका अंश नहीं। हमको प्रसन्नता इसकी है कि आपके समयका सदुपयोग हो रहा है। जहाँ पर तत्त्व-चर्चा हो तथा विरागताकी वृद्धि हो वही स्थान तो तीर्थ है। सेठजी महोदय इसीमे संलग्न हैं। यह उनके भावी सुकल्याणका चिह्न है। वर्तमानमें तो शान्ति है ही इसमें शका नहीं। तदुक्तं—

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्मणा।
एभ्यः संसारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मनः॥

यही कारण है जो सेठजी चतुर्थ पुरुषार्थमे लग गये। हमारा दिवस भी आप लोकोंकी निर्मल भावनासे सानन्दसे जाता है। श्री पतासीबाई जी वहाँ पर पहुँच गई होंगी। शारीरिक व्याधि जब शान्त हो इसका तो हमे परिचय नही, परन्तु यह बात तो हम भी कह सकते हैं जो अन्तरग व्याधि अवश्य कृश हुई होगी।

बाह्य औषधि तो प्रायः सर्वत्र ही मिल जाती है, परन्तु आभ्यन्तर व्याधिको शमन करनेकी औषधि सर्वत्र सुलभ नही। इसका सेठजी को धन्यवाद है जो इस आभ्यन्तर रोगको दूर करनेके अर्थ औषधालय खोल रखा है और उसमे अनुकूल परिचारक और वैद्य हैं। अतः मेरी तो पतासीबाईको यही सम्मति कह देना। अब सानन्दसे आभ्यन्तर रोगका निराकरण करके ही इन्दौर छोड़ना। सेठ सा० से मेरी यही भावना है जो आपने संसार व्याधि अपहरण करनेका औषधालय खोला है वह

चिरकाल रहे जिसमें संसार संतप्तोंको कल्याणमार्ग सुलभ रहे। ऐसा औषधालय केवल धनसे नहीं खुलता, किन्तु स्वय उसपर चले तभी वह चलता है। सेठजी सा० को क्या लिखूं। उनका पत्र पढ़कर यही भावना होती है जो ऐसे पुरुषरत्न ही धर्मके पात्र चिरजीवी रहें। चिरजीवीका अर्थ सर्व जानते हैं। विकृत-भावका अभाव जिनके है वे ही चिरजीवी हैं।

ईसरी बजार, वैशाख सुदी १५, सं० २०११ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[१०-४]

श्रीमान् पंडित प्यारेलालजी भगत, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द इन्दौर पहुँच गये, परन्तु ऐसा श्रवणपथ हुवा जो आपको कुछ अस्वस्थता हो गई। सभव है मार्गमें कुछ अननुकूल स्थानादिप्रयुक्त बाधा हो गई हो। अब आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा, क्योंकि वहाँ पर बाह्य और आभ्यन्तर कारण अनुकूल हैं। मेरी तो यह सम्मति है—अब आपको अवस्थाके अनुकूल एक ही क्षेत्र पर रहना चाहिये। कहाँ रहें यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। कहीं रहिये, आपको सर्वत्र अनुकूलता है। सर्वसे उत्तम स्थान तो वह है जहाँ पर तत्त्वज्ञानके विशेष साधन हो। आप तो स्वय विज्ञ हैं, क्या आपको लिखें। श्रीयुत सेठजी सा० को मेरा यथायोग्य कहना। सेठजी सा० तो स्वकार्यमें संलग्न हैं। इसका फल भविष्यमें अच्छा होगा, यह तो निर्विवाद है। वर्तमानमें जितनी शान्ति उन्हें है इसका स्वसंवेदन स्वय वे कर रहे हैं। विशेष क्या लिखें।

वैशाख सुदि १२ सं० २०१२ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[१०—५]

श्रीयुत महाशय भगतजी सा०, योग्य इच्छामि

मैं सागरसे इतनी दूर आया सो सिद्धक्षेत्र आदि विचार कर ही तो आया हूं। इसमे जितना आपका समागम इष्ट है वह मैं ही जानता हूं। परन्तु आप पर मेरा उतना ही तो अधिकार है जितना हो सकता है। मैं तो निरन्तर भावना भाता हूँ जो आपसे साधर्मियोका एक क्षणमात्र वियोग न हो। परन्तु मेरे वशकी बात नही। यह तो आपके उदार हृदयकी बात है। जो एक वृद्धकी समाधिमे समय देना चाहिये। विशेष क्या लिखूं। श्रीपतासीबाई को क्या लिखें वह दो वर्ष पहिले क्या कहती थीं उन्हींसे पूछना। परन्तु किसीको बलात्कार करना—तुम आओ ही यह उनकी दया पर निर्भर है। हम तो पार्श्वनाथके चरण रजमे पड़े है। सम्भव है उनके ज्ञानमे हमारे अन्तिम कालमें सर्व अनुकूल समागम मिल जावे। श्री सेठ सा० तो अत्यन्त दयालु है। उन्हे क्या लिखूं। उनकी दृष्टि तो समयानुकूल होती है।

जेष्ठ बदि १० सं० २०१२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०—६]

श्रीयुत महाशय भगतजी सा०, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। संसारमें स्वास्थ्य काहेका। परन्तु आप इस स्वास्थ्यका लाभ ले चुके है-जो इस स्वास्थ्यका कारण ही कुछ कालमे निमूंल हो जावेगा। मैं तो निरन्तर आपके अभ्रान्त विचारोंको स्मरण करता हूँ। मुझे इस बातकी महती प्रसन्नता है जो आप यथार्थ बातको व्यवहारमें लाते है। हाँमें हाँ

मिलानेवाले प्रायः अनेक है, तत्त्वके कथनमें रुचि तक नहीं रखते। अस्तु, चमेलाबाई जी और इनकी माँसे मेरा धर्मस्नेह कहना। श्री नन्दलाल बाबू बहुत ही भद्र हैं।

प्र० भाद्र वदि १, सं २०१२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०--७]

श्रीयुत महाशय भगतजी सा०, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। प्रसन्नता इस बातकी है जो आपका स्वास्थ्य अच्छा है। मेरा तो विश्वास है—जिनको यथार्थ ज्ञान हो गया वे यथार्थ पथप्रदर्शक हैं और जिसे भेदज्ञान नहीं हुवा वह जो बोले परमार्थपदका साधक नहीं। आपके निवाससे यहाँ भी अच्छा रहता है और वहाँ जो आपके सहवासमें रहता होगा, सुमार्गरुचिया ही होगा। श्रीनन्दलाल जीसे हमारा धर्मस्नेह। महान् भद्र मानुष हैं। श्री चमेलाबाई व उनकी माँसे इच्छाकार कहना। धन्य है उन आत्माओंको जिन्होंने परको पर और अपनेको अपना जाना।

भाद्रवदि ६, सं० २०१२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०--८]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी प्यारेलालजी भगत, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। फोड़ा आदि शान्त होंगे। मेरा निजका विश्वास है जो आपका मोहरूपी फोड़ा फूट चुका है। तब औदयिक फोड़ा कील निकलनेके बाद कुछ आपत्तिजनक नहीं।

आपका विशद बोध जगतके उपद्रवोंको शान्त कर देता है। दीपक प्रकाशवत् क्या वह निज आपत्तिको शमन करनेमें समर्थ न होगा। यहाँ पर हम लोक सानन्दसे हैं। सानन्दका कारण तो परको न अपनानेमें है। जहाँ पर अपनाया अशान्ति आई। कोई कुछ करे उसमें तटस्थ रहे। अन्तमें तटस्थता ही रखनी पड़ेगी। श्री चमेलावाई व उनकी माँसे इच्छाकार। भगतजीका समागम तत्त्वज्ञानमें मूल कारण है। श्री नन्दलालजीसे कल्याणभाजन हो, श्रीयुत छोटेलालजीसे दर्शनविशुद्धिः। स्याद्वाद विद्यालयमें जो महापद है उसकी सार्थकता आपके निमित्तसे होगी। फिर जो हो।

द्वि० भाद्रवदि २, सं० २०१२ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत

श्रीमान् ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगतका जन्म कार्तिक सुदि ६ वि० सं० १९५३ को जगाधरी (पंजाब) में हुआ है। पिताका नाम श्री लाला मूलराजजी और माताका नाम सोनादेवी तथा जाति अग्रवाल है। स्कूलमें हिन्दी मिडिल तक शिक्षा ग्रहण करनेके बाद ये घरके व्यवसायमें लग गये।

प्रारम्भसे ही इनकी धार्मिक रुचि विशेष थी। पूजा, दान और व्रतोंका पालन करना आदि क्रिया मुख्य होनेसे बाल-बच्चेवाले होकर भी ये जनता द्वारा 'भगत' पद द्वारा सम्बोधित किये जाने लगे। इन्होंने अपनेको कभी नहीं भुलाया। यही कारण है कि अवसर मिलते ही ये कौटुम्बिक जीवनसे उदासीन हो मोक्ष मार्गकी ओर झुके। इस समय ये आठवीं प्रतिमाके व्रत पालते हैं। इनके शिक्षागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री १०५ वर्णीजी महाराज स्वयं हैं। इन्होंने यह प्रतिमा वि० सं० २००१ में स्वीकार की थी।

इतना सब होते हुए भी इन्होंने समाज और राष्ट्रहितके कार्यों से कभी भी उपेक्षा धारण नहीं की। स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए देशमें जो आन्दोलन हुआ है उसमें भी इन्होंने सक्रिय भाग लेकर देशहितके कार्यको आगे बढ़ाया है।

यदि हम इनके विषयमें शरीर और उसकी छायाका जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध इनका पूज्य श्री १०५ वर्णीजी महाराज के साथ कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। जब कभी कर्त्तव्य विशेष की पूर्तिके लिए उनकी आज्ञासे इन्हें अलग रहना पड़ा है तब भी पत्र व्यवहार द्वारा इन्होंने उसे बनाये रखनेका प्रयत्न किया है। यों तो इनका पत्र व्यवहार बहुत बड़ा है पर उसमेंसे प्राप्त हुए कुछ उपयोगी पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[११–१]

शान्तिप्रकृति प्रिय श्रीलाला सुमेरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

आपके द्वारा भेजी हुई वस्तु जो आतप निवारणके लिए जल-संयोग चाहती है आयी। अस्तु, अब आपको और हमको वही कार्य करना हितकर होगा जो इस आतपादिसे आत्मा सुरक्षित रहे। अब तो ऐसी परिणति बनाओ कि यह हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे। यह भला वह बुरा यह वासना मिट जावे, क्योंकि यही वासना बन्धकी जननी है। आजतक इन्ही पदार्थोंमे ऐसी कल्पना करते-करते ससार ही के पात्र रहे। बहुत प्रयास किया तो इन बाह्य वस्तुओंको छोड़ दिया किन्तु इनसे कोई तत्त्व न निकला। निकले कहाॅ से? वस्तु तो वस्तुमे है, परमें कहाॅसे आवे? परके त्यागसे क्या, क्योंकि वह तो स्वयं पृथक् है। उसका चतुष्टय भी स्वयं पृथक् है। किन्तु विभाव दशामे जिसके साथ अपना चतुष्टय तद्रूप हो रहा है उस पर्यायका त्याग ही शुद्ध चतुष्टयका उत्पादक है, अतः उसकी ओर दृष्टिपात करो। लौकिक चर्चाको तिलाञ्जलि दो। आजन्मसे वही आलाप तो रहा। अब एक बार निज आलापकी तान लगाकर तानसेन हो जाओ। अनायास सब दुखोकी सत्ताका अभाव हो जावेगा। विशेष क्या लिखें! जिसके हाथ इलायची भेजी वह जीव अत्यन्त भद्र है। ऐसे मनुष्यका समाज सुखकर है। इनके साथ स्वाध्याय बहुत ही लाभप्रद होगा तथा यह जीव आपका तो अतिप्रेमी है। आप अपने साथीको समझा देना। यदि अब द्वन्द्वमे न पड़े तो बहुत ही अच्छा होगा। द्वन्द्वके फलकी रक्षाके लिए फिर द्वन्द्व मे पड़ना कहाॅतक अच्छा होगा सो समझमें नहीं आता। इससे शान्ति न मिलेगी, प्रत्युत बहुत अशान्ति मिलेगी। परन्तु अभी ज्ञानमे नहीं आती।

धतूरेके नशेमे धतूरेका पत्ता भी पीला दीखता है। आपका अनुरागी है, समझा देना।

ईसरी फाल्गुन सु० १४, सं १९९४ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[११-२]

श्रीयुत लाला शान्तिप्रकृति प्रिय सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी बुद्धिमें तो प्रायः हम ही लोक स्वकीय शान्तिके बाधक हैं। जितने भी पदार्थ संसारमें हैं वह एक भी शान्त स्वभावके बाधक नहीं। वर्तनमें रक्खी हुई मदिरा अथवा डिब्बीमें रक्खा हुवा पान पुरुषमें विकृतिका कारण नहीं, एवं परपदार्थ हमे बाध्य करके विकारी नहीं करता। हम स्वयं अपने मिथ्याविकल्पोंसे उनमें इष्टानिष्ट कल्पना कर सुखी और दुखी होते हैं। कोई भी पदार्थ न तो सुख देता और न दुःख देता है। जहाँ तक बने आभ्यंतर परिणामोंकी विशुद्धितावृद्धि पर सदैव सावधान रहना चाहिए। गृहस्थोंका सर्वथा अहित ही होता हो यह नियम नहीं। हित और अहितका सम्बन्ध सम्यक्त्व और मिथ्याभावसे है। जहाँ पर सम्यक्त्वभाव है वहाँ हित और जहाँ मिथ्याभाव है वहाँ पर अहित है। मिथ्याभाव तथा सम्यक्त्वभाव गृहस्थ व मुनि दोनों अवस्थाओंमें होता है। हाँ साक्षान्मोक्षमार्गका साधक दिगम्बरत्व जो है सो गृहस्थके उस पदका लाभ परिग्रहके अभावमें ही होता है। अतः जहाँ तक हमारा पुरुषार्थ है, श्रद्धानको निर्मल बनाना चाहिए तथा विशेष विकल्पोंको त्याग त्यागमार्गमें रत रहना चाहिए। पदके अनुसार शान्ति आती है। इस अवस्थामें वीतरागावस्थाकी शान्तिकी श्रद्धा तो हो सकती है परन्तु उसका स्वाद नहीं आ सकता। भोजन बनानेसे उसका स्वाद

आजावे यह सम्भव नही। रसास्वाद तो चखनेसे आवेगा। आप जानते हैं जो इस समय घरको त्याग कर मनुष्य कितना दम्भ करता है और वह अपनेको प्राय: जघन्य मार्गमें ही ले जाता है, अत: जब तक आभ्यन्तर कषाय न जावे घर छोड़नेसे कोई लाभ नही। कल्याणकी प्राप्ति आतुरतासे नही, निराकुलतासे होती है। वैद्यराजजीसे कह देना ऐसी औषधि सेवन रोगियाको बताओ जो इस जन्मज्वरसे छूटे। शरीर तो पर ही है। जब आप आवें तो एक माह पहले सूचना दीजियेगा।

ईसरी, अगहन सु० ५, सं० १९९५ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[११-३]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। पत्रादिकके पढ़नेसे क्या होता है। होनेकी प्रकृति तो आभ्यन्तरमे है। जलमें जो लहर उठती है वह ठंडी है, वालूमें वह बात नही। शान्तिका मार्ग मूर्छाके अभावमे है। जहाँ पर शान्ति है वहाँ पर मूर्छा नहीं और जहाँ मूर्छा है वहाँ शान्ति नहीं। बाह्य पदार्थ मूर्छामें निमित्त होते हैं। यह मूर्छा दो तरह की है—एक शुभोपयोगिनी दूसरी अशुभोपयोगिनी। उनमें पदार्थ भी दो तरहके निमित्त हैं। अर्हद्भक्ति आदि जो धर्मके अंग हैं उनमे अर्हदादि निमित्त हैं और जो विषय कषायादिक हैं वे पापके अंग हैं। उनमे स्त्री, पुत्र, कलत्रादि निमित्त कारण हैं। अत: इन बाह्य पदार्थों पर ही यदि अवलम्बित रहे तब कहाँ तक ठीक है, समझमें नही आता। ऐसा भी देखा गया है जो बाह्य पदार्थ कुछ भी नहीं। यह जीव स्वयमेव कल्पना कर शुभाशुभ परिणामोका पात्र हो जाता है। इससे श्रीस्वामी कुंदकुंद महाराजका मत है

कि अध्यवसान भाव ही वन्धका जनक है। अध्यवसानमें वाह्य-द्रव्य निमित्त पड़ते हैं, अतः उनके त्यागका उपदेश है फिर भी वुद्धिमे नहीं आता। जैसे अशुभोपयोगके कारण वाह्य पुत्रादिक हैं, उनका त्याग कैसे करें? उन्हे छोड़ देवें, फिर क्या छोड़नेसे त्याग होगया? तव यही कहना पड़ेगा कि उनके द्वारा जो रागादिक परिणति होती थी वही त्यागना चाहिए। अथ च स्त्री आदि तो दृश्य पदार्थ हैं उन्हें छोड़ भी देगा, परन्तु अर्हदादिक तो अतीन्द्रिय हैं उन्हें कैसे छोड़े? क्या उन्हें ज्ञानमे न आने देवे, क्या करे? कुछ समझमे नहीं आता। अतन्तो गत्वा यही निष्कर्ष निकलता है जो ज्ञानमे भले ही आवो, रुचिरूप ज्ञेय न होना चाहिए। तो अरुचि रूप इष्ट है, अरुचि भी तो द्वेषका अनुमापक है, तव क्या करे, जड़ वन जावे? यह भी नहीं हो सकता। ज्ञानका स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है। ज्ञेय उसमें आता ही रहेगा। तव यही वात आई जो स्वपरप्रकाशक ही रहे, इससे अगाड़ी न जावे अर्थात् राग-द्वेषरूप न हो। यह भी समझमे नहीं आता जो ज्ञान रागादिक रूप होता है, क्योंकि ज्ञान ज्ञेयका ज्ञाता है, ज्ञेयसे तादात्म्य नहीं रखता, तव क्या करे? यही करो कि अपनी परिणति रागादिक रूप न होने दो। क्या यह हमारे वसकी वात है? हम लाचार हैं, दुखी हैं, इस जालसे नहीं वच सकते। यह सव तुम्हारी कायरता और अज्ञानताका ही कटुक फल है जो रागादिकोंको दुःखमय, दुःखके कारण जानकर भी उनसे पृथक् होनेका प्रयत्न नहीं करते। अच्छा अव आपसे हम पूंछते हैं कि क्या रागादिक होनेका आपको विषाद है, उन्हें आप पर समझ रहे हो? यदि हाँ तव तो आपको उनके दूर करनेका प्रयास करना चाहिए। और यदि केवल यही भीतरी भाव हैं कि हम तुच्छ न समझे जावें, इसीसे ऊपरी वातें वना देते हैं कि

रागादिक अनिष्ट हैं, दुःखदाई हैं, पर हैं, तो व्यर्थ है। परन्तु जिस दिन सम्यग्ज्ञानके द्वारा इनके स्वरूपके ज्ञाता हो जावोगे फिर इनके निर्मूल होनेमे अधिक विलम्ब न लगेगा। रागादिकके होनेमे तो अनेक वाह्य निमित्तोंकी प्रचुरता है और स्वाभाविक परिणतिके उदयमे यह बाह्य सामग्री अकिंचित्कर है। अतः स्वाधीन पथको छोड़कर पराधीन पथमे आनन्द मानना केवल तुम्हारी मूर्खता है। यावत् यह मूर्खता न त्यागोगे, कहीं भी चले जाना तुम्हारा कल्याण असभव है। क्या लिखें ? इन विकल्प-जालोंने सन्निपातकी तरह मूर्छाका उदय आत्मामे स्थापित कर दिया है जिससे चेत ही नहीं होता। यह सब बातें मोहके विभव की हैं। यदि भीतरसे हम जान जावें तब सन्निपात ज्वर क्या काल-ज्वर तक चला जा सकता है। अतः बाह्य प्रक्रिया छोड़ कर आभ्यन्तर प्रक्रियाका अभ्यास करो। अनायास एक दिन निःसग हो जाओगे। निःसंग तो पदार्थ है ही, परन्तु तुम्हारी जो बन्धमे एकत्वकी कलपना है उसका अभाव हो जावेगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप स्वयं विज्ञ हैं। मेरी तो यह सम्मति है कि कल्याणका मार्ग अपनी आत्माको त्यागकर अन्यत्र नहीं। जबतक अन्यत्र देखनेकी हमारी प्रकृति रहेगी तबतक कल्याणका मार्ग मिलना दुर्लभ है। हम लोगोंकी अन्तरङ्ग भावना अतिदुर्बल होगई है। अपने आत्मबलको तो एक तरहसे भूल ही गये हैं। पञ्च परमेष्ठी

का स्मरण इसलिये नहीं था कि हम माला फेरकर कृतकृत्य हो जावें। उसका यह प्रयोजन था जो आत्मा ही के यह पांच प्रकार के परिणमन हैं, उनमे एक सिद्धपर्याय तो अन्तिम अवस्था है। यह वह अवस्था है जिसका फिर अन्त नहीं होता। ४ अवस्थाएं औदारिक शरीरके सम्बन्धसे मनुष्य पर्यायमे ही होती हैं। उनमें अरहन्त भगवान् तो परम गुरु हैं जिनकी दिव्यध्वनिसे संसारके आताप शान्त होनेका उपदेश जीवोंको मिलता है और ३ पद हैं सो साधक हैं। यह सर्व आत्माकी ही पर्यायें हैं। उनके स्मरणसे हमारी आत्मामें यह ज्ञान होता है जो यह योग्यता हमारी आत्मा में है। हमें भी यही उपाय कर चरम अवस्थाका पात्र होना चाहिये। लौकिक राज्य जब पुरुषार्थसे मिलता है तब मुक्तिसाम्राज्य का लाभ अनायास हो जावे यह नहीं। लोक कहावत है—

मांगे मिले न भीख, बिन मांगे मोती मिले।

अतः अरहन्तादि परमेष्ठीके भिक्षा मांगनेसे हम संसारबंधन से नहीं छूट सकते। जिन उपायोंको श्रीगुरुने दर्शाया है उनके साधनसे अवश्यमेव वह पद अनायास प्राप्त हो जावेगा। ज्ञान ही मोक्षका हेतु है। यदि वह नहीं है तब बाह्यमें व्रत, नियम, शील, तपके होने पर भी अज्ञानी जीवोंको मोक्षका लाभ नहीं। अज्ञान ही बंधका कारण है। उसके अभाव होनेपर बाह्यमें व्रत, नियम, शील, तप आदिका अभाव भी है तब भी ज्ञानी जीवोको मोक्षका लाभ होता है। अतः निमित्त कारणोंको उतना ही आदर देना योग्य है जितनेसे अन्तरङ्गमें बाधा न पहुँचे। सर्वोत्तम तो यह उपाय सर्वसे उत्कृष्ट और सरल है जो निरन्तर अपनी दिनचर्या की प्रवृत्ति देखता रहे। जो आत्माको अनुचित जान पड़े उसे त्यागे और जो उचित जान पड़े किन्तु परमार्थसे बाह्य हो उसे

भी त्यागे। सीढ़ीका उपयोग वहीं तक उपादेय है जबतक महलमें नहीं पहुँचा है। भोजनका उपयोग क्षुधा निवृत्तिके लिये है। एवं ज्ञानका उपयोग रागादि निवृत्तिके लिये है। केवल अज्ञान निवृत्ति ही नहीं; अज्ञान निवृत्तिरूप तो वह स्वयं है। इसी तरह बाह्य व्रतका उपयोग चारित्रके लिये है। यदि वह न हुआ तब जैसा व्रती वैसा अव्रती। मन्द कषाय व्रतका फल नहीं। वह वो मिथ्यात्व गुणस्थानमे भी हो जाता है। अतः व्रतका फल वास्तवमे चारित्र है। इसीसे आत्मामें पूर्ण शान्तिका लाभ होता है।

ईसरी बजार अगहन सुदी १२, सं० १९९५	आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[११–५]

श्री सुमेरचन्द जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

परोपकारकी अपेक्षा स्वोपकारमें विशेषता है। परोपकार तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है। अपि तु यह कहिए कि परोपकार मिथ्यादृष्टिसे ही होता है। सम्यग्दृष्टिसे परोपकार हो जावे यह बात अन्य है। परन्तु उसके आशयमें उपादेयता नहीं, क्योंकि यावत् औदयिक भाव है उनका सम्यग्दृष्टि अभिप्रायसे कर्ता नहीं, क्योकि वे भाव अनात्मज हैं। इसका यह तात्पर्य है जो यह भाव अनात्म जो मोहादि कर्म उनके निमित्तसे होते हैं अतएव अस्थायी हैं। उन्हें क्या सम्यज्ञानी उपादेय समझता है? नहीं समझता है। इसके लिखनेका यह तात्पर्य है जैसे सम्यग्दृष्टिके यह श्रद्धा है जो मै परका उपकारी नहीं इसी तरह उसकी यह भी दृढ़ श्रद्धा है जो पर मेरा भी उपकारी नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे उपकार हो जाना कुछ अन्तरंग श्रद्धानका बाधक नहीं। इसी

प्रकार अनुपकारादि भी जानना। सत्य पथके अनुकूल श्रद्धा ही मोक्षमार्गकी आदि जननी है।

ईसरी
पौष कृष्ण ४, सं० १९९५ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११—६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाना। आपके भाई सा० अच्छे हैं यह भी आपके पुण्योदयकी प्रभुता है। शान्तिका कारण स्वच्छ आत्मामें है स्थानोंमें नहीं। बाहर जाकर भी शान्ति यदि अन्तरङ्ग में मूर्छा है, नहीं मिलती। केवल उपयोग दूसरी जगह अन्य मनुष्योंके सम्पर्कमें परिवर्तित हो जाता है और वह उपयोग उस समय अन्यके सम्बन्धकी चर्चासे आकुलित ही रहता है। निराकुलताका अनुभव न घरमें है और न बाहर। यदि शान्तिकी इच्छा है तब निरन्तर यह चेष्टा होना श्रेयस्करी है जो यह हमारे रागादिक हैं यही संसारके कारण हैं, अन्य नहीं। निमित्त कारणमें दोषारोपण स्वप्नमें भी नहीं होना चाहिए। यहाँ का व वहाँ का वातावरण एकसा है, चाहे नागनाथ कहो चाहे सर्पनाथ कहो।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११—७]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शविशुद्धि

धन्युवर! कल्याणपथ निर्मल अभिप्रायसे होता है। इस आत्माने अनादिकालसे अपनी सेवा नहीं की। केवल पर पदार्थोंके

संग्रहमे ही अपने प्रिय जीवनको भुला दिया। भगवान् अर्हन्तका यह आदेश है जो अपना कल्याण चाहते हो तो इन परपदार्थोंमें जो आत्मीयता है वह छोड़ो। यद्यपि परपदार्थ मिलकर अभेद-रूप नहीं होते, किन्तु हमारी कल्पनासे वह अभेदरूप ही हो जाते हैं। अन्यथा उनके वियोगमे हमे क्लेश नहीं होना चाहिये। धन्य उन जीवोंको है जो इस आत्मीयताको अपने स्वरूपमे ही अवगत कर अनात्मीय पदार्थोंसे उपेक्षित होकर स्वात्मकल्याणके भागी होते हैं। आपका अभिप्राय यदि निर्मल है तब यह बाह्य-पदार्थ कुछ भी बाधक नहीं और न साधक हैं। साधक-बाधक तो अपनी ही परिणति है। संसारका मूल हेतु हम स्वयं हैं। इसी प्रकार मोक्षके भी आदि कारण हम ही है और जो अतिरिक्त कल्पना है, मोहज भावोकी महिमा है। और जबतक उसका उदय रहेगा, मुक्ति-लक्ष्मीका साम्राज्य मिलना असम्भव है। उसकी कथा तो अजेय है। सो तो दूर रही, उसके द्वारा जो कर्म संग्रहरूप हो गये हैं उनके अभाव बिना भी शुद्ध स्वरूपात्मक मोक्षप्राप्ति दुर्लभ है, अतः जहाँ तक उद्यमकी पराकाष्ठा इस पर्यायसे हो सके केवल एक मोहके कृश करनेमे ही उसका उपयोग करिये। और जहाँ तक बने परपदार्थके समागमसे बहिर्भूत रहनेकी चेष्टा करिये। यही अभ्यास एक दिन दृढ़तम होकर ससारके नाशका कारण होगा। विशेष क्या लिखूँ? विशेषता तो विशेष ही मे है। आज कलका वातावरण अति दूषित है। इससे सुरक्षित रहना ही अच्छा है।

ईसरी
पूस सुदी ६, सं० १९९५

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-८]

श्री लाला सुमेरचन्दजी योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं क्या उपदेश लिखूं ? उपदेश और उपदेष्टा आपकी आत्मा स्वयं है। जिसने अपनी आत्मपरिणतिके मलिन भावोंसे तटस्थता धारण कर ली वही संसार समुद्रके पार हो गया। यह बुद्धि छोड़ो। परसे न कुछ होता है, न जाता है। आपहीसे मोक्ष और आपहीसे ससार है। दोनों पर्यायोंका उदय होता है। आवश्यकता इस वातकी है जो हममें संसारमें भ्रमण करानेवाली कायरता है उसे दूर करें। जो मनुष्य पराधीन होते हैं वह निरन्तर कायर और भयातुर रहते हैं। पराधीनतासे वढ़कर कोई पाप नहीं। जो आत्मा पराधीन होकर कल्याण चाहेगा, मेरी समझमें वह कल्याणसे वञ्चित रहेगा। अतः अपने स्वरूपको देखो। ज्ञाता-दृष्टा होकर प्रवृत्ति करो। चाहे भगवत पूजा करो चाहे विषयोपभोगमें उपयोग हो. किन्तु उभयत्र अनात्मधर्म जान रत और अरत न हो। अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्मा ही पर लक्ष्य रक्खो। पास होते हुए भी कस्तूरीके अर्थ कस्तूर मृगकी तरह स्थानान्तरमें भ्रमण कर आत्मशुद्धिकी चेष्टा न करो।

इटवी
आषाढ शु० ७ सं० १९९६ } — आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-९]

श्रीयुत महाशय. दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपने जो आम्नाय और आम्नायकके विषयमें प्रश्न किया उसका उत्तर इस प्रकार है—

आत्मा और पुद्गलको छोड़कर शेष ४ द्रव्य शुद्ध है। जीव और पुद्गल ही दो द्रव्य हैं जिनमे विभावशक्ति है। और इन दोनोंमे ही अनादि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध द्वारा विकार्य्य और विकारकभाव हुआ करते हैं। जिस कालमे मोहादि कर्मके उदयमें रागादिरूप परिणमता है उस कालमे स्वयं विकार्य हो जाता है और इसके रागादिक परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गल मोहादि कर्मरूप परिणमता है, अतः उसका विकारक भी है। इसका यह आशय है—जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते हैं और पुद्गलकर्मका निमित्त पाकर जीव स्वयं रागादिरूप परिणम जाता है। अतः आत्मा आस्रव होने योग्य भी है और आस्रवका करनेवाला भी है। इसी तरह जब आत्मामे रागादि नहीं होते उस कालमे आत्मा स्वयं सम्वार्य्य और संवरका करनेवाला भी है। अर्थात् आत्माके रागादि निमित्तको पाकर जो पुद्गल ज्ञानावरणादि रूप होते थे, अब रागादिकके बिना स्वय तद्रूप नहीं होते, अतः संवारक भी है।

अतः मेरी सम्मति तो यह है जो अनेक पुस्तकोंका अध्ययन न कर केवल स्वात्मविषयक ज्ञानकी आवश्यकता है और केवल ज्ञान ही न हो किन्तु उसके अन्दर मोहादिभाव न हो। ज्ञानमात्र कल्याणमार्गका साधक नहीं किन्तु रागद्वेषकी कल्मषतासे शून्य ज्ञान मोक्षमार्गका साधक क्या स्वयं मोक्ष-मार्ग है। जो विष मारक है वही विष शुद्ध होनेसे आयुका पोषक है। अतः चलते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, यद्वा तद्वा अवस्था होते जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको कलंकित नहीं करता वही जीव कल्याणमार्गका पात्र है।

बाह्य परिग्रहका होना अन्य बात है और उसमे मूर्छा होना

अन्य बात है। अतः वाह्य परिग्रहके छोड़नेकी चेष्टा न करो। उसमें जो मूर्छा है, संसारकी लतिका वही है उसको निर्मूल करनेका भगीरथ प्रयत्न करो। उसका निर्मूल होना अशक्य नहीं। अन्तरंगकी कायरताका अभाव करो। अनादि कालका जो मोहभावजन्य अज्ञानभाव हो रहा है उसे पृथक् करनेका प्रयत्न करो। अहर्निश इस चिन्तामें लौकिक मनुष्य संलग्न रहते हैं कि हे प्रभो! हमारे कर्मकलंक मिटा दो। आप बिना मेरा कोई नहीं, कहां जाऊं, किससे कहूँ इत्यादि करुणात्मक वचनों द्वारा प्रभुको रिझानेका प्रयत्न करते हैं। प्रभुका आदेश है—यदि दुःखसे मुक्त होनेकी चाह है तब यह कायरता छोड़ो और अपने स्वरूपकी चिंतना करो। ज्ञाता दृष्टासे वाह्य मत जाओ। यही मोक्षका पथ है। तदुक्तम्—

> यः परमात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
> अहमेव मयोपास्यः नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥

जो परमात्मा है वही मैं हूँ और मैं हूँ सो परमात्मा है। अतः मैं अपने द्वारा ही उपास्य हूँ, अन्य कोई नहीं, ऐसी ही वस्तु मर्यादा है।

यह अत्युक्ति नहीं। जो आत्मा रागद्वेष शून्य हो गया वह निरन्तर स्वस्वरूपमें लीन रहता है तथा शुद्ध द्रव्य है। उपकार अपकारके भाव रागी जीवोंमें ही होते हैं। अतः परमात्माकी भक्तिका यही तात्पर्य है जो रागादि रहित होनेकी चेष्टा करो। भक्तिका अर्थ गुणानुराग, सो यह भी अनुराग यद्यपि गुणोंके विकासका बाधक है फिर भी उसका स्मारक होनेसे नीचली दशामें होता है, किन्तु सम्यग्ज्ञानी उसे अनुपादेय ही जानता है। अत: आत्माके बाधक कारणोंमें अरुचि होना ही आत्मतत्त्वकी

साधक चेष्टा है। अतः परमात्माको ज्ञानमे लाकर यह भावना भावो—यही तो हमारा निजरूप है। यह परमात्मा और मैं इसका आराधक इस भेदभावनाका अन्त करो। आप ही तो परमात्मा है। आत्मा परमात्माके अन्तरको स्पष्टतया जान अन्तरके कारण मेट दो अर्थात् अन्तरका कारण रागादिक ही तो हैं। इन्हें नैमित्तक जान इनमे तन्मय न हो। यही इनके दूर होनेका उपाय है। जहांतक अपनी शक्ति हो इन्हीं रागादिक परिणामोंके उपक्षीण होनेका प्रयास करना। जब हमे यह निश्चय होगया जो आत्मा परसे भिन्न है तब परमे आत्मीयताकी कल्पना क्या हमारी मूढ़ताका परिचायक नहीं है? तथा जहां आत्मीयता है वहां राग होना अनिवार्य है। अतः यदि हम अपनेको सम्यग्ज्ञानी मानते हैं तब हमारा भाव कदापि परमे आत्मीयताका नहीं होना चाहिए। रागादिकोका होना चारित्रमोहके उदयसे होता है, होओ, किन्तु अहबुद्धिके अभाव होनेसे अल्पकालमे निराश्रित होनेसे स्वयमेव नष्ट हो जावेगा।

तीर्थङ्कर प्रभु केवल सिद्धभक्ति करते हैं। अतः उनके द्वारा अतिथिसंविभागरूप दान होनेकी संभावना नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११—१०]

श्री सुमेरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

जिस जीवकी आत्मकल्याण करनेकी प्रबल आकांक्षा हो उसे सबसे पहले अपने आत्म-पदार्थका दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि जो मैं संसारदुःखसे भयभीत हो रहा हूँ वह क्या है?

जिसमें ये भाव उत्पन्न होते हैं, वही आत्मा है, क्योंकि उसीमें यह ज्ञान द्वारा प्रतीतिमें आ रहा है कि मैं दुखी हूं। दुःख क्या वस्तु है? जो अपने अन्तरङ्गमें रुचता नहीं वही दुःख है और जो अन्तरङ्गसे रुचता है वही सुख है। यद्यपि यह सभी जीवोंके ज्ञानमें आ रहा है परन्तु मोहके विषयमें इसमें कुछ अज्ञानता मिलती है। इससे यह जीव इन दोनो तत्त्वोंकी विपरीततासे अनुभूति कर रहा है। दुःख तो अपने अन्तरंगमें असाताके उदयसे व अरति कषायके द्वारा अरुचि परणति-रूप होता है। उसे हमें पृथक् करनेका उपाय करना चाहिये। परन्तु हम, जिन पदार्थोंके बन्धसे हमारी यह दशा हुई उन्हे दूर करनेका प्रयास नहीं करते। वास्तवमें वाह्य पदार्थ न तो सुखद हैं न दुःखद। हम अपने रागादि भावोंके द्वारा उन्हे सुखदायी और दुखदायी कल्पना कर लेते हैं। कोई कहे कि निमित्तकारण तो है पर यह भी कहना सगत नहीं। वे तो तटस्थ ही हैं। वे कुछ व्यापार (क्रिया) करके हमें दुःख नहीं देते। किन्तु हमारे ज्ञानमें जो वे भासमान हो रहे हैं, वे क्या भासमान हो रहे हैं? उनके निमित्तसे जो ज्ञानमें परिणमन हो रहा है वह परिणमन ही हमारा अन्तर ज्ञेय है और वही ज्ञेय हमें कल्पनाके अनुसार सुख-दु.खका कारण हो रहा है। परमार्थसे वह अन्तर ज्ञेय भी सुख-दुःखकी उत्पत्तिमें कारण नहीं। केवल अन्तःकलुषता परिणति ही आकुलताकी जनक है। हम उस कलुषताके पृथक् करनेका तो प्रयास ही नहीं करते जिससे सुख और दुःख होता है, किन्तु उस ज्ञेयके सद्भाव और असद्भावका प्रयास करते हैं। अथवा ऐसे उपाय करते हैं कि वह वस्तु हमारे उपयोगमे न आवे। इसके लिए कोई तो मन्दकषायी हैं जो शुभ भावोंके कारण ज्ञेयोंके ज्ञानमें आनेका प्रयास करते हैं। तीव्रकषायी

जीव इसके लिए मादकादि द्रव्यका सेवन कर उन्मत्त हो दुःख मेटना चाहते है। कोई नाटक-थियेटर या वेश्यानृत्यमें अपने उपयोगको लगाकर उस दुःखके नाशका उपाय करते हैं। ये सर्व प्रयत्न विपरीत हैं, क्योंकि दुःखकी जननी अन्तरंगमें रागादि-परिणतिकी सत्ता जब तक रहेगी, दुःख नही जा सकता अतः जिन्हे इन दुःखोंसे छूटनेकी आकांक्षा हो वे रागादिकोंके नाशका उपाय करें। आप सानन्द जीवन बिताइये। जो सामग्री मिली है, उसे साम्यभावसे जानने-देखनेका अभ्यास करिये। इस कालमे आपको जो समागम है, उत्तम है। इससे उत्तम मिलना कठिन है। हमारा विचार प्रायः बाहर जानेका नहीं होता, क्योकि कारणकूट सर्वत्र अनकूल नहीं मिलते।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

[११-११]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चारित्रमोहका गलना इस पर्यायसे होना कठिन है। परिग्रहका जो त्याग आभ्यन्तरसे होता है वही तो कल्याणका मार्ग है। जो त्याग ऊपरी दृष्टिसे होता है वही क्लेशकर है। वर्तमानमे वह सुखजनक नहीं और न आगामी सुखका जनक है। कौन आत्मा दुःखको चाहता है? परन्तु इतने ही भावसे दुःखकी निवृत्ति नहीं होती। तत्त्वज्ञानपूर्वक राग-द्वेषकी निवृत्ति ही इसका (दुःख-निवृत्तिका) मूल कारण है। मेरी सम्मति तो यह है कि आप जो परस्पर दो मनुष्योंको मिलानेकी चेष्टा करते हैं और उसमे विफल प्रयत्न रहते हैं और फिर निफल होने पर

भी गुरुताका अनुभव करते हैं यह सब छोड़िये और एकदम सबसे कह दीजिये—जिसमें आपको सुविधा हो करो। हम कोई करनेवाले नहीं। जितना आप उन्हें मनाओगे उतना ही वे आसमान पर चढ़ेंगे। "कौन किसका" यही सिद्धान्त रखिये। मेरा यह तात्पर्य नहीं कि गृहवास छोड़ दीजिये; परन्तु भीतरसे अवश्य छोड़ दीजिये। संसारमें मानव पर्यायकी दुर्लभतापर ध्यान दीजिये। अपने परिणामों पर दृष्टि रखनेसे ही सबका भला होगा। आप रंचमात्र भी व्यग्र न हों। परपदार्थ व्यग्रताका कारण नहीं। हमारी मोहदृष्टि व्यग्रताका कारण है। उसे हटाओ। उसके हटनेसे जगाधरी ही शिखरजी है। आत्मामें मोक्ष है, स्थानमें मोक्ष नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-१२]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मोही जीवका कल्याण तो इसीमें है कि बाह्यमें जो मोहके प्रबलतम निमित्त हैं उन्हें छोड़े। अनन्तर जो तदपेक्षा कुछ न्यून निमित्त हैं उन्हें छोड़े। पश्चात् राग-द्वेषकी निवृत्तिके हेतु चारित्र गुणके साधक बाह्य व्रतादिक अंगीकार करे। यह तो आगमकी आज्ञा है। आत्माका सबसे प्रबल शत्रु मिथ्यात्व है, जिसके द्वारा ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्ररूप रहता है। और मिथ्यात्व क्या वस्तु है? सम्यक्त्वकी तरह अनिर्वचनीय है। केवल उसके कार्यको देखकर ही हम प्रशमादि द्वारा सम्यक्त्वके सद्भावकी तरह उसका अनुमान कर सकते हैं। उसके कार्य स्थूल-

रूपसे तो नाना प्रकार हैं। जैसे—शरीरादिक परद्रव्योंमे स्वात्म-तत्त्वकी कल्पना करना तथा आत्माकी सत्ता ही न स्वीकार करना। अथवा पृथ्वी आदिके मिलनेसे मदिरावत् आत्मतत्त्वकी सत्ता मानना। अथवा सच्चिदानन्द व्यापक आत्माकी सत्ता स्वीकार करना। अथवा सर्वथा शुद्ध तथा ज्ञानादि गुणोंसे सर्वथा भिन्न आत्माकी सत्ता मानना आदि नाना प्रकार हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१३]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

ब्रह्मचारी छोटेलालजी चले गये हैं। उनके स्थान पर कुञ्जी-लालजी अधिष्ठाता हैं। आप सानन्द स्वाध्याय करते होंगे। कुछ करने कहीं जावो, परन्तु कल्याण तो भीतरी मूर्च्छाकी ग्रन्थिके भेदन करनेसे ही होगा और वह स्वयं भेदन करनी पड़ेगी, चाहे समवसरणमे चले जावो।

ईसरी,
आषाढ़ शु० ६, सं० १९९६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१४]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। अब मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। मेरा विचार अब यहां से बनारस जाने का है और उस समय आपको पत्र दूंगा। यद्यपि शरीर धर्म का साधक है; परन्तु साधकतम नहीं। अन्तरङ्ग निर्मल परिणामोके बिना कल्याण होना असम्भव है।

आत्मा निर्मल होनेसे मोक्षमार्गका साधकतम है और आत्मा ही मलिन होनेसे ससारका साधकतम है। अत: सर्वथा एकान्त नहीं। अत: जहां तक वने आत्माकी मलिनताको दूर करनेका प्रयास करना हमारा कर्त्तव्य है। आप अपने परिणामोंको निर्मल करनेका प्रयास करें। अन्यकी चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। पर की चिन्ता करना व्यर्थ है। हमारे उदयमें जो आया उसे सहर्ष भोगनेका भाव है। कायरता करनेसे कोई लाभ नहीं। अतएव मेरी भावना सदैव यह रहती है जो अर्जित कर्म हैं उन्हे समताभावसे भोग लेना ही कल्याणके उदयमे सहायक है। विशेष क्या लिखूं—हम लोग अति कायर हैं और पराधीनताके जालमें अपनेको अर्पित कर चुके हैं। इसीसे संसारी यातनाओंके पात्र हो रहे हैं। जव तक अपनी स्वाधीनताकी उपासनामें तल्लीन न होंगे, कदापि इस जालसे मुक्त न होंगे। मेरा मलेरिया, विकृत परिणामों का फल है। जव तक उन परिणामोंका अभाव न होगा. मलेरियाका जाना असम्भव है। औषध हमारे पास है, परन्तु हम उसे उपयोगमें नहीं लाते सो दूर कैसे हो। आशा है कुछ कालमें प्रयोग करूंगा, अभी योग्यता नहीं। आप सानन्द अपनी निर्मलताका पत्र दिया करिये। यही आपका शुभागमन है। ... .। संयुक्तावस्था यदि अनुकूल है, सुखद है। प्रतिकूलता दु:खकी जननी है।

गया
भाद्रपद शु. ६, सं० १९९६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-१५]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपने लिखा शांति नही मिलती

सो ठीक ही है, संसारमें शान्ति नहीं और अविरत अवस्थामे शान्तिका मिलना असम्भव है। बाह्य परिग्रह ही को हम अशान्तिका कारण समझ रहे हैं। वास्तवमे अशान्तिका कारण अन्तरङ्गकी मूर्छा है। जब तक उसका अभाव न होगा तब तक बाह्य वस्तुओके समागममे भी हमारी सुख दुःखकी कल्पना होती रहेगी। जिस दिन वह शान्ति हो जावेगी विना प्रयासके शान्तिका उदय स्वयमेव हो जावेगा। अतः हठात् कोई शान्ति चाहे तब होना असम्भव है। एक तो मूर्छाकी अशान्ति, एक उसके दूर करने की अशान्ति। अतः जो उदयके अनुकूल सामग्री मिली है उसीमें समतापूर्वक कालको बिताना श्रेयस्कर है।

ईसरी
कार्तिक शुक्ल १२, सं० १९९९

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[११—१६]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। क्या लिखे? कुछ अनुभवमे नहीं आता। वास्तव जो वस्तु है वह मोहके अभावमे होती है जो कि वीतरागोके ज्ञानका विषय है और जो लेखनी द्वारा लिखनेमें आता है उसे उस तत्त्वका अनुभव नहीं। जैसे रसनेन्द्रिय द्वारा रसका ज्ञान आत्मामें होता है उसको रसना निरूपण करे यह मेरी बुद्धिमे नहीं आता। अतः क्या लिखूं? जितनी इच्छा है आकुलताकी जननी है। जो जानने और लिखनेकी इच्छा है यह भी आकुलताकी माता है। यह क्या परमानन्दका प्रदर्शन करा सकती है? परन्तु जैसे महान् ग्रन्थोमें लिखा है कि जीवका मूल उद्देश्य सुख प्राप्ति है तथा उसका मूल कारण मोह परिणामोंकी

सन्ततिका अभाव है। अतः जहां तक बने इन रागादिक परिणामोंके जालसे अपनी आत्माको सुरक्षित रक्खो। इन पराधीनताके कार्योंसे मुख मोड़ो। अपना तत्त्व अपनेमें ही है। केवल उस ओर हो जावो और इस परकी ओर पीठ दो। ३६ पना जो आपसे है उसे छोडो और जगसे जो ६३ पना है उसे छोड़ो जगतकी तरफ जो दृष्टि है वह आत्माकी ओर कर दो इसीमें श्रेयो-मार्ग है। दोहा—

"जगतैं रहो छत्तीस ३६ ह्वो राम चरण छै तीन ६३।
तुलसीदास पुकार कहैं है यही मतो प्रवीण।"

जहाँ तक आत्मकैवल्यकी भावना ही उपादेय रूपसे भावना-द्वैत भावना ही जगतकी जननी है। शारीरिक क्रिया न तो साधक है और न बाधक है। इसी तरह मानसिक तथा वाचनिक जो व्यापार है उनकी भी यही गति। इनके साथ जो कषायकी वृत्ति है यही जो कुछ है सो अनर्थकी जड़ है। इनके पृथक् करनेका उपाय एकत्व भावना है। मैं पोस्टेज नही रखता, अतः जब पत्र डालो तब टिकट रख दीजियेगा। क्या कहें रात्रि दिन मोहके सद्भावसे आत्मामे चैन नहीं, अतः बाह्य परिग्रहके त्यागसे शान्तिकी गन्ध भी नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१७]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चि० मुन्नालालजी से आशीर्वाद। हमारी अनादि कालसे जो यह धारणा बनी हुई है कि परपदार्थ ही हमारा उपकार और

अनुपकार करता है यह धारणा ही भवपद्धतिका कारण है। आज संसारमें जितने मत प्रचलित हैं अथवा प्राक् थे या भविष्यमे होंगे, सर्व ही का यह अभिमत है जो हमारी ससार यातनाका अन्त हो और उसके हेतु नाना युक्तियों और आगम-गुरुपरम्परा, स्वानुभव द्वारा उपाय दिखानेका प्रयत्न करते हैं। जो हो; हम और आपकी आत्मा, चैतन्यस्वरूप आत्मा है। कुछ विचारसे काम लेवे तव यही अन्तमे अनुभवसाक्षी निर्णय होगा जो बन्धसे छूटने का मार्ग हमारे में ही है, केवल पर-पदार्थोंसे निजत्व हटाना है। आपको उचित है—अपने दुःखमे अपनी कषायपरणतिको ही कारण समझें। कल राजगृही जावेंगे। १५ दिन वाद पहुँचेगें।

ईसरी
अगहन सुदि ४, सं० १९९७ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१८]

योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक वने, रागद्वेष के कारणों से सुरक्षित रहना। कल्याणका पथ आपमें है। पर से न हुआ, न होगा। शुभाशुभ उदयमें समभाव रखना यही जीवनका लक्ष्य है। स्वाध्यायमें लक्ष्य रखियेगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१९]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। अबकी बार मलेरियाने बहुत ही सताया। अब तक निर्वलता है। किन्तु स्वाध्यायादि अब सानन्दसे होता है।

१—मनुष्य वही है, जो अपनी आत्मा की प्रवृत्ति को निर्मल करता है।

२—सत्समागमका अर्थ यही है जो निजात्मा को बाह्य पदार्थों से भिन्न भावनाके अभ्याससे कैवल्यपद पानेका पात्र हो।

३—जिस समागमसे मोह उत्पन्न हो वह समागम अनर्थ की जड़ है।

४—आज कल वीतरागकथाका प्रचुररूपसे प्रचार है, वीतरागताकी गन्ध नहीं।

परिग्रहमें यही अनर्थ होता है। यह बात किसीसे गुप्त नहीं, अनुभूत है। अतः उदाहरणकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता उससे विरक्त होनेकी है।

आवश्यकता तो इतनी है कि यदि संसारके सर्व पदार्थ भी मिल जावें तो भी उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। अतः 'आवश्यकता न हो' यही आवश्यकता है। यदि यह हो जावे तब न आपको यहाँ आनेकी आवश्यकता है और न हमे पत्र देनेकी आवश्यकता है। परन्तु वही कठिन है यही अन्धेर है। सो आप व हम सर्व इसीके जालमें हैं। केवल सन्तोष कर लेनेके सिवाय कुछ हाथ नहीं आता। पानी विलोनेसे घी की आशा तो असम्भव है ही, छांछ भी नहीं मिल सकती। जल व्यर्थ जाता है। विलोनेसे पीनेके योग्य भी नहीं रहता है। प्रयत्नसे कार्य सिद्ध होता है। यदि कोई मोक्षमार्गका प्रयत्न करे तब कुछ असाध्य नहीं। परन्तु उस ओर उपयोग नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-२०]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे, पत्र आया समाचार जाने। ८ दिन से फिर मलेरिया आ गया। अस्तु, ऋण लिया, देने मे दुःख मानना बेईमानी है। अतः देने में ही भला है।

आजकल सर्वत्र परिणामों की मलिनता है। इसी से दुःख मय संसार हो रहा है। बाईयो को ज्वर आता है। मधुवन की महिमा है। मधुवन तो निमित्त है। अपने ही कर्मों का विपाक है। सुखपूर्वक सहन करनेमें ही आत्मस्वाद का आनन्द है, अन्यथा 'हाय' सिवाय कुछ नहीं। कल्याणका मार्ग सन्मतिमे है, अन्यथा जैनधर्मका दुरुपयोग है। कोई भी वस्तु हो, सदुपयोगसे ही लाभदायक होती है। मानुस पर्यायका भी सदुपयोग किया जावे तब देवोंको भी सुख नहीं। जो एक तिर्यञ्च सदुपयोग कर तृप्ति पाता है वह मनुष्यपदवी धारण कर भी नही पा सकता। अतः इसीमें आत्मगौरव है जो श्रीमुन्ना व सुमति विषयोंकी तृष्णासे बचें तथा परस्परमे पाण्डव बनें। एक कौरव और पाण्डव न बनें। बात थोड़ी है, परन्तु न करने से बड़ी है।

पौष कृष्ण १४, सं० १९९८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-२१]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजो, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समचार जाने। हमारा उदय अच्छा है जो मलेरियाके प्रकोपमे निरन्तर जागृत अवस्था रहती है। इतना ही

नहीं. परमेष्ठीका स्मरण भी निरन्तर रहता है। कर्मविपाक द्वारा धर्मध्यानकी पूर्ति होती रहती है। हमेशा संसारकी अनित्यताका ध्यान रहता है। एकत्वभावनाकी तो यह मलेरिया जननी है। आगामी अभक्ष्यसेवनसे यह बचाता है। यही तो संवर है। कर्मोदयमें आकर खिर जाता है। इससे निर्जरा का भी सहायक है। निरन्तर धर्मका स्मरण कराता है। बोधिदुर्लभका तो मूल उपदेष्टा है। तथा कायक्लेश इसके कारण अनायास हो जाता है। अतः समाधिमरणमें सहायक है। धर्मी लोग निरन्तर समाधिपाठ सुनाते हैं। सर्व लोग चाहते हैं। अतः मलेरियाके प्रकोपसे मुझे लाभ ही है। इतना सुअवसर पाकर यदि हम मार्गच्युत हो गये तब हमसा मूर्ख फिर कौन होगा? विशेष बाबाजीको भी उस मलेरियाका कोपभाजन बनना पड़ा है। श्रीमुन्नालाल, सुमति प्रसादसे सुभाशीस। अब पत्र लिखनेमें उत्साह नहीं होता; क्योंकि नवीन बातें आती नहीं। १०-५ दिनमें वायुपरिवर्तन करेंगे।

माघ वदि ५, सं० १९९८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–२२]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। अब मलेरिया शान्त है। पैरका दर्द भी अब शान्त है तथा सिरका भी। परन्तु वह वस्तु शान्त नहीं जिसके सद्भावमें यह सर्व उपद्रव आकुलताके कारण हैं और जिसके अभावमें घानी पेलना, अग्निमें पटकना, शिरपर सिगड़ी जलाना, स्यालिनी द्वारा भक्षण करना आदि भी आकुलताके कारण नहीं। प्रत्युत आत्मकैवल्यमें सहायक हुये। अतः

जिस महानुभावने उन रागादिका को जीत लिया है वही तो मनुष्य है। यो तो अनेक जनमते हैं और मरते हैं। उनकी गणना मनुष्योंमे करना व्यर्थ है। आँख वही है जिसमें देखनेकी शक्ति हो; अन्यथा नहीं के तुल्य है। एवं ज्ञान वही है जो स्वपर विवेक उत्पन्न करा देवे। अन्यथा उस ज्ञानका कोई मूल्य नहीं जिसने स्वपर भेद न कराया। अथवा उस त्यागका कोई महत्त्व नहीं जिससे आकुलता न जावे। एवं उस दान की कोई प्रशंसा नहीं जिसके करने पर लोभ न जावे। विशेष क्या लिखें—सर्व कार्यों की यही प्रणाली हैं। अतः जो कार्य करो उसमें आकुलताके अभाव-को देखो। यदि वह न हो तब समझो उस कार्यमें आत्मीय लाभ कुछ नहीं। अभी यहीं रहनेका विचार है। जहाँ जावेंगे, आपको सूचना देवेंगे। एक लिफाफा इसके पहिले भेजा था, पहुँचा होगा। शेष कुशल है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-२३]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द जी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। यहाँ गर्मी बहुत पड़ती है। अतः गर्मी शान्त होने के बाद पावापुरी जाऊँगा। वहीं चातुर्मास करने का विचार है। आत्मा चिदानन्द है; किन्तु उसमे बाधक मोहादि भाव हैं। उनकी कृशता के होने पर ही आनन्द गुण का विकाश होता है। उसके होने मे हम स्वयं उपादान हैं। निमित्त तो निमित्त ही है। जिस काल मे हमारी आत्मा रागादि रूप न परिणमे वही काल आत्माके उत्कर्षका है। उचित मार्ग तो यही है जो हम पुरुषार्थ कर रागादि न होने देवें, परन्तु

उन पदार्थों को हटाते हैं जिन्हे रागादि होने मे निमित्त मान रक्खा है। विशेष क्या लिखें। आषाढ़ वदीमे यहांसे चला जाऊँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-२४]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। प्रथम आपने लिखा कि रत्नत्रय की कुशलता का पत्र देना सो साधर्मियों को यही उचित है। किन्तु यदि रत्नत्रय की कुशलता हो जावे तब यह सर्व व्यवहार अनायास छूट जावे। निरन्तर कषायोंकी प्रचुरतासे रत्नत्रय परिणति आत्मीय स्वरूपका लाभ करनेमे असमर्थ रहती है। जिस दिन वह अपने स्वरूप पर उन्मुख होगी, अनायास कषायों की प्रचुरताका पता न लगेगा। जिस सिंहके समक्ष गजेन्द्र भी नतमस्तक हो जाता है वहाँ पर स्याल-गीदड़ोंकी क्या कथा। एवं जहाँ आत्मीयभाव (अभिप्राय) सम्यग्भावको प्राप्त हो जाता है वहाँ मिथ्यात्वको अवकाश नही मिलता। कषायोंकी तो कथा ही व्यर्थ है। इसी निर्मल भावके असद्भावमें आजतक यह आत्मा नाना संकटोंकी पात्र बनी रही है, तथा बनेगी।

अतः आवश्यकता इस बातकी है जो आत्मीय भाव निर्मल बनाया जावे और उसकी बाधक कषायपरिणतिको मिटानेका प्रयास किया जावे। अन्य बाह्य कारणोंके साथ जो आक्रमण है वह आकाश ताड़नके सदृश है। हमारा तो यही अभिप्राय है। शरीरकी व्यवस्था अब अच्छी है। गर्मीका प्रकोप ऋतुके अनुकूल हो रहा है। उदयाधीन व्यवस्था हो जाती है। व्यवस्था

तो उत्तम यह है जो इन परपदार्थों द्वारा सुख-दुःखकी मान्यताको त्याग दिया जावे। सुख-दुःख की व्यवस्था तो अपनेमे बनानी चाहिये, बाह्य पदार्थोंमे नहीं। देखो! जैसे एक मनुष्य उत्तम मन्दिरके अन्दर, जहाँ सूर्यकी किरणोंको अवकाश नहीं मिलता तथा उसके दरवाजे शीतल जलसे प्लावित और खशके पर्दोंसे आच्छादित हो रहे हैं; तथा बाहर से कुली पखा द्वारा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु पहुँचा रहा है, आराम कुर्सी पर लेटा हुआ है; अगल-बगलमे चाटुकारोंसे प्रशंसित हो रहा है तथा सुन्दर रूपसे पुष्ट नवोढा स्त्री द्वारा प्रसन्नताका अनुभव कर रहा है; परन्तु अन्तरङ्गमें व्यापारादिकी शल्यसे कटुक पदार्थ मिश्रित मिश्रीके सदृश मधुर स्वादुके सुखसे वञ्चित है और जो उससे विपरीत सामग्री-वाला कुली है वह तीन आना पाकर चैनकी वशी बजाता है। अतः सुख-दुःखकी प्राप्ति परपदार्थों द्वारा मानना, महती भूल है। विशेष क्या लिखें। आपने लिखा—कोई वस्तुकी आवश्यकता हो मंगा लेना सो ठीक है किन्तु जब यह श्लोक याद आ जाता है, चित्त अधीर हो जाता है।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिव बुध्यते सदुपदेश।
किं गुरुताया मूलं यदेतद् प्रार्थनं नाम॥

श्रीयुत मुन्नालालजीसे धर्मोपदेश कहना तथा यह कहना सानन्दसे स्वाध्याय करो तथा किसीसे भी स्नेह न करो। यही बन्धन की जड़ है। ....। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा तथा पिताजी का भी स्वास्थ्य अच्छा होगा। छोटे भाईको धर्मप्रेम।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-२५]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका पत्र आया, चित्त प्रसन्न हुआ। अब हमारा मलेरिया अच्छा है। २½ माह मलेरिया आया। मनुष्य वही है, जो अपनी निरोगतामें अपने आत्मकल्याणके सन्मुख रहे। सरोग अवस्थामें असाता का उदय रहता है और उसमें प्रायः दुःखकी वेदना होती है। दुःखकी वेदनामें अशुद्धताकी प्रतिपक्षिणी, संक्लेशताकी प्रचुरता रहती है और संक्लेशतामें प्राय. पापप्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, अतः जिन्हे आत्मकल्याण करना हो, उन्हें पर की चिन्ता छोड़ अपनी चिन्ता करनी चाहिए। शरीरकी परिचर्यामें ही अपनी शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। इसकी परिचर्यासे जो दुर्दशा आजतक हुई वह इसीका महाप्रसाद है यह कहना सर्वथा अनुचित है। हमारी मोहान्धता है जो हमने इस शरीरको अपनाया और उसके साथ भेदबुद्धि का त्यागकर निजत्वकी कल्पना की। व्यर्थ ही निजत्व की कल्पना कर शरीरको दु.खका कारण मान रहे हैं। हम स्वयं अपने आप पत्थरसे शिरको फोड़कर, पत्थरसे शत्रुता कर उसके नाशका प्रयास करते हैं। वास्तवमे पत्थर जड़ है। उसे किसीको न मारने की इच्छा है और न रक्षा करनेकी। एवं शरीर को न आत्माको दुःख देनेकी इच्छा है, न सुख देनेकी ही।

अत. इससे ममत्व त्यागकर आत्माका प्रथम तो वह भाव, जिसके द्वारा शरीरमें निजत्वबुद्धि होती थी, त्याग देना चाहिए। उसके होते ही संसारमें यावान् पदार्थ हैं उनसे आपसे आप ममत्व परिणाम छूट जावेगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११--२६]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। सब्जी आ गई। इतनी दूरसे सब्जी नहीं भेजना चाहिए, क्योंकि प्रायः चलित रस हो जाती है। आपके भावोंके अनुकूल प्रतिमा जी मिल गईं, यह अच्छा हुआ। अब जहाँ तक बने, उसके अनुकूल होने की चेष्टा करना। संसारमें हम लोग जो आज तक भ्रमण कर रहे हैं इसका मूल कारण 'हमने अपनी रक्षा नहीं की' है। निरन्तर पर पदार्थोंके ममत्वमें आपको विस्मृत हो गये। अब अवसर उत्तम आया है। इसका सदुपयोग करना चाहिए। व्यर्थ परकी चिन्ता न करना चाहिए। परकी रक्षा करो, परन्तु उसे आत्मीय तो न समझो।

श्री मुन्नालालजी से योग्य दर्शनविशुद्धि। सानन्दसे जीवन विताओ और गृहिणीकी सम्यक् परिचर्या करो; परन्तु अन्तरङ्ग से उस वस्तुमें आत्मीय संकल्प त्याग दो। यही सुखका मूल है। मेरा तो यही कहना है जो शरीरमें भी निजत्वको छोड़ो। छोटे भाईको आशीर्वाद। हमारा इतना स्वास्थ्य खराब नहीं। यदि होगा; आपके पिताको बुला लेवेंगे। पिता जी अभी वहीं रहे। विशेष क्या लिखें, आपके पिताजी भव्य जीव हैं। शान्त प्रवृत्ति के हैं। उनसे कहना—स्वाध्याय परम तप है। इस ओर विशेष लक्ष्य देवें। इस कालमें कल्याणका वही जीव पात्र होगा जो बहुजनोंके समागममें न रहेगा। हमारा उनसे हार्दिक स्नेह है। अभी तो हम यहाँ ही हैं। गर्मीके बाद जहाँ जावेंगे उन्हे लिखेंगे।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–२७]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। वियोगजन्य शोक होता है यह हमारी श्रद्धा है। जहाँ वियोगसे कैवल्य होता है वही आत्मा की निजावस्था है। हमने जो कुछ परिग्रह था, छोड़ दिया। बरुवासागरमें १०००) थे वह वहां की पाठशालाको दे दिये। १०१) बनारसको जो यहाँ शेष थे दे दिये। अब तो वस्त्र मात्र केवल, जिससे निर्वाह हो सके तथा ३ वर्तन रक्खे हैं। पुस्तकें भी सागर आदि को दे दी हैं। अब मेरे नाम कुछ वस्तु न भेजना। यह विचार मेरा पहिले भी था। अब फागुन वदी ४ को सागर की ओर जाऊँगा। आप सानन्द स्वाध्याय करिये और अबकी बार चातुर्मास उसी प्रान्तमें होगा। पत्र गया देना।

गया
माघ शु० १३, सं० १९९८

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–२८]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं सानन्द आ गया। यहाँ बड़े वेगसे मलेरिया आया। अब शान्त है। फाल्गुन भर यहीं रहूंगा। चैत्र वदि ३ को चलूँगा। बनारस जाऊँगा। एक बार तो द्रोणगिरि जानेका विचार है। शरीर वृद्ध है, फिर भी बलात्कार जा रहा हूं। सम्भव है, भावनाके अनुकूल पहुँच जाऊँ। आप निश्चिन्त, तत्त्वभावनामें काल लगाना। वर्तमानमे लोग आडम्बर प्रिय हैं। बाबा भागीरथ वास्तविक त्यागी थे। बहुत ही शान्ति पूर्वक समाधिमरण हुआ।

मै जितना उनसे परिचित हूं, आप नही। वियोगमे आत्मदृष्टि नहीं हुई, तब संयोगमे क्या होगी? आत्मलाभ तो वियोगमे ही है। संसारकी प्रवृत्तिको लक्ष्य न कर अपनी मलिनताको हटाने का प्रयत्न करना। गृहवास उतना बाधक नही जितना बाधक कायरोंका समागम है। जिसे देखो, अपनी विभुताके गीत अलापता है। इससे यही ध्वनित होता है—आत्मा तुच्छावस्थाको नही चाहता। आप एक विशिष्ट आत्मा हैं। अतः जगाधारीको तीर्थस्थली बनाकर ही रहना। इसका यह तात्पर्य नहीं जो कोई स्थान निर्माण करना, किन्तु निर्मल भाव करना। यही भाव स्थानको तीर्थ बनाता है। श्री मुन्नालाल, सुमतिप्रसादसे आशीर्वाद कहना।

गया
फाल्गुन सु० ७, सं० १९९८

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११—२६]

मोह की क्या कहेंगे, कोई क्या कहेगा। इसने सर्व ही निर्मल भावोंपर अपना प्रभाव जमा लिया है। विचार यहाँसे जल्दी ही उस तरफ आनेका है। देखे क्या परिणाम निकलता है। एक आपसे हमारा कहना है जो शास्त्रसभामे व्यक्त कर देना—जिन जीवोंको कल्याणकी अभिलाषा है वे स्नेहपाशसे न बँधे। यही बन्धन बन्धन है और कोई नहीं। कल्पना करो, हम सागर आ ही गए तब सागरवालोको क्या लाभ होगा? क्योकि मैं ४ माह मौनसे रहूँगा। एक बलाय मोल लेनेके तुल्य यह कार्य होगा। श्रीयुत भैया पूर्णचन्द्रजी से दर्शनविशुद्धि। उनके पत्रसे। उनका भाव जान बड़ी प्रसन्नता हुई। वह योग्य

व्यक्ति हैं। वहुत ही अच्छा उन्होंने किया। मैं प्राय: जल्दी ही यहाँ से प्रयाण करूंगा। उनको यहाँपर कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

रोग तो मलेरिया था। उसकी दवा, शान्तिपूर्वक सहना यही वीतराग की अचूक रामवाण थी। हमारी यही श्रद्धा थी, परन्तु आप लोगों की कटुकी चिरायता गुलवनस्पा आदि थी। परन्तु हमने श्रद्धा के अनुकूल ही दवा-साधन की। प्रायः अब इस दवा ने वारह आने आराम कर दिया। शेष आराम हो जायगा। यो कुछ दिन में यह भी चला जावेगा।

वैशाख वदि १, सं० १९९८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३१]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। हमारा ज्वर शान्त हुआ तब पगमे दर्द हो गया। वह अच्छा हुआ तब डाढ़में पीड़ा हो गई और कभी कभी मस्तकमें भी वेदना हो जाती है। परन्तु इतना अच्छा है जो अन्तरङ्गमें उतनी कलुषता नहीं होती जैसी वेदना होनी चाहिये। यद्यपि वाह्य-प्रवृत्तिमे न्यूनता आ जाती है तथापि भीतर न्यूनता नहीं आने देता। आत्मा की यह दशा हम ही ने वना रक्खी है। इन सब वेदनाओंका मूल कारण हमारा ही मोह-

परिणाम है और जब तक यह रहेगा इनसे भी भीषण दुःखों का सामना करना पड़ेगा। हम चाहते तो है जो आत्मा संकटों से बचे; परन्तु उसका जो अभ्रान्त मार्ग है उससे दूर भागते हैं। कोई मनुष्य पूर्वतीर्थके दर्शनोकी अभिलाषा करे और मार्ग पश्चिमका पकड़ लेवे तब क्या वह इच्छित स्थान पर पहुँच सकता है? कदापि नहीं। यही दशा हमारी है। केवल सन्तोष कर लेना जो हम मिथ्यामार्ग पर हैं, इससे कार्यसिद्धि नहीं। तथा केवल श्रद्धा और ज्ञानसे काम न चलेगा। किन्तु ज्ञानसे जाने हुये रागादि परिणामोकी निवृत्तिसे ही अभीष्ट पदकी प्राप्ति होगी। उपाय करनेसे होता है। अतः पुरुषार्थ कर स्वीय तत्त्वलाभ लेना चाहिये। श्री मुन्नालाल सुमतिप्रसादसे आशीर्वाद कहें।

गया } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–३२]

हमारी दृष्टि इतनी उपेक्षणीय हो गई है जो हम निमित्त-कारणो ही के ऊपर अपना कल्याण और अकल्याणका मार्ग निर्माण कर लेते हैं। आप जहां तक बने, अपने भीतरकी परिणतिको देखो। बाह्य परिणतिको देखनेसे कुछ न होगा। मूर्तिनिर्माता संगमरमरकी खानमे ही शिलाका अस्तित्व मानता है, न कि मारवाड़के वालुपुञ्जमे। आत्माकी शक्ति अचिन्त्य है। उसको विकाशमें लानेवाला यही आत्मा है। आज जो ससारमें विज्ञानकी अद्भुत 'संहारशक्ति' प्रत्यक्ष हो रही है यह आविष्कार आत्माका ही तो विकाश है; तथा जो शान्तिका मार्ग जिनागममें पाया जाता है वह

भी तो मोक्षमार्गके आविष्कार-कर्त्ताकी दिव्यध्वनि द्वारा परम्परागत आया हुआ है।

अतः सर्व विकल्पोंको. मायापिण्डको और अपनी परिणतिको उपयोगमे लाओ। उसके बाधक मुन्ना, सुमति नहीं हैं। यदि उन्हें समझते हो तब उस भावको हटाओ।

आप मेरे रोगकी चिन्ता न करना। यदि आप अपने रोग को मिटा सके तो संसारका मिट गया; क्योंकि हमें उसका विकल्प ही न रहा।... शरीरकी अवस्थाका सुधार औषध से न हुआ और न होगा। उसकी मूल औपधि तो हमारे ही पास है। परन्तु हम औषधि भी सेवन करते हैं और परकी आलोचना कर अपथ्य सेवन भी करते हैं। इससे न निरोग ही हो सकते हैं और न रोगी ही रह सकते हैं। दुर्वासना के प्रकोपसे बीचमें लटक रहे हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३३]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आम अच्छी तरह आ गये। १० आम हम अपने उपयोग मे लाए शेष ईसरी आश्रमवासियोंके अर्थ भेज दिए। आत्माका गुरु आत्मा ही है और आत्मा ही आत्माका शत्रु है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्तिमे मूल कारण आत्मा ही है। चार लब्धि तो निरन्तर होती हैं। करणलब्धि होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है। किसी का उपदेश आदि तो समय पर मिलता है। सर्वदा आत्मा एकाकी ही रहता है। अतः परकी पराधीनतासे न कुछ आता है, न

जाता है। आत्माका हित अपने ही परिणामोसे होता है। स्वाध्याय आदि भी उपयोगकी स्थिरताके अर्थ है। अन्तमे निर्विकल्पदशामें वीतराग भावका उदय हो जाता है।

पराधीनतामे मोहकी परिणति रहती है। वह आत्माके गुणविकाशमे बाधक है। मुखसे जितनी प्रशंसा मोही जीव करें, वे कहते अन्तमें यह हैं कि मोहभाव उसका बाधक है। भक्ति करनेवाला क्या कहता है? हे भगवन्! जब तक कैवल्यावस्था न हो तब तक मेरा हृदय आपके चरणाम्बुजका मधुकर रहे। अथवा-आपका चरणाम्बुज मेरे हृदयमे रहे। इसका अर्थ यही है—जब तक मेरे यह शुभोपयोग है तब तक वह अवस्था नही हो सकती। इसमे विशेष ऊहापोहकी आवश्यकता नहीं। तात्त्विक विचारकी यही महिमा है जो यथार्थ मार्ग पर चलो। शुभोपयोगको ज्ञानी कब चाहता है? यदि उसके शुभोपयोग इष्ट होता तब उसमे उपादेय बुद्धि होती। निरन्तर यही चाहता है कि हे प्रभो! कब ऐसा दिन आवे जो आपके सदृश दिव्यज्ञानको पाकर स्वच्छन्द मोक्षमार्गमे विचरूँ। इसका अर्थ केवल व्यवहारपक्षको जो इच्छा हो सो कहे; परन्तु कषाय चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो, मोक्षमार्गकी बाधक है और यह अनुभवगम्य बात है। हमारी तो यह दृढ़ श्रद्धा है कि आचार्यों ने कही भी शुभोपयोगको उपादेय नहीं बताया। तथा पूज्यपाद स्वामीके समाधिशतकमें ऐसा वाक्य भी है जो सर्वोत्तम उत्तर है—

> यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्प्रतिपादये।
> उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥

हम इससे अधिक कुछ नहीं जानते। अतः इससे विशेष ज्ञान, इससे अधिक होना कठिन है। यदि विशेष तत्त्व जाननेकी

इच्छा है तब आगम अध्यात्मज्ञ पण्डितोंसे पत्रव्यवहार करो। श्री पतासीबाई सानन्द हैं। ४-६ दिन बाद पावापुर चले जावेंगे।

द्वितीय जेष्ठ सुदि १०, सं० १९९९ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३४]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हमारा जितना प्रयास है, केवल अन्तरङ्ग कषायकी वेदना दूर करनेके अर्थ ही होता है। यह निर्विवाद है। फिर हमें उचित तो यह है कि जिसकी वेदनासे पीड़ित होकर हम अनेक उपायों से उसको दूर करनेकी चेष्टा करते हैं उसका अगर विशेषरूप से विचार करिये—हम जबसे निद्राभङ्ग होनेपर जागृतावस्थामें आते हैं, एकदम श्री अर्हन्तदेवका स्मरण करते हैं। उसका आशय यही रहता है कि हे प्रभो! संसारदुःखका अन्त हो। अनन्तर सामायिक करते हैं। उसका भी यही तात्पर्य रहता है जो जितना सामायिकका काल मेरे नियमके अनुसार है तब तक मैं साम्यभावसे रहूंगा। इसका भी यही अर्थ है जो सामायिकके समयमें कषायोंकी पीड़ासे बचूँ। अनन्तर शौचादि क्रिया करनेके अर्थ जो काल है उसमें भी मलादिजन्य बाधा दूर करनेका ही तात्पर्य है। अनन्तर जो देवपूजा, स्वाध्यायादि क्रिया हैं उनका भी यही तात्पर्य है जो अपनी परिणतिको अशुभोपयोगकी कलुषतासे रक्षित रखना। अनन्तर भोजनादि क्रियाकी जो विधि है उसका भी तात्पर्य क्षुधाजन्य बाधानिवृत्ति ही है। फिर जो

व्यापारादि क्रिया है उसका भी प्रयोजन लोभकषायजन्य वेदना को दूर करना ही है। उपार्जित धनमें जो दानादिविभाग श्री गुरुओंने दिखाया है उसमें भी परोपकारविषयक कषायजन्य वेदनानिवृत्ति ही फल है। तथा जो क्रोधादिक जितनी भी चेष्टाएँ हैं उनका तात्पर्य तज्जन्य वेदनानिवृत्ति ही है। निन्दा-गर्हा का भी यही मर्म है। महाव्रतादिकमें भी जो जीवोंकी रक्षा आदि महर्षियो द्वारा होती है उसका भी यही तात्पर्य है जो सचालन-कषायजन्य पीड़ा दूर हो। तब हम लोगोको भी यही उचित है जो कुछ भी कार्य करें उसमें अहंबुद्धि-ममबुद्धि कर कर्त्ता बननेकी चेष्टा न करें, अन्यथा संसारबन्धन छूटना कठिन है। अभी गर्मी अधिक पड़ती है। २० दिन बाद जहाँ जाऊँगा, तार दे दूँगा। श्री मुन्नालालजीको दर्शनविशुद्धि कहे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३५]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हमारा विचार राजगृही जानेका था और ईसरीसे १७ मील सरिया आये। परन्तु यहाँ पर मनोवृत्ति एकदम ही बदल गई। अब ईसरी वापस जा रहे हैं। अन्तरङ्गकी भावना पर विचार करते हैं तब तो उन्मत्तदशा है, क्योंकि पर्यायमें यदि लक्ष्यको स्थिर नहीं किया तब संज्ञीपर्यायका कोई महत्त्व ही नहीं जाना। संज्ञीपर्यायकी महत्ता तो इसमें है जो हिताहितको पहिचान कर आत्ममार्गकी वृद्धि करते। सो तो दूर रहा, यहाँ तो विपरीतता वपन कर रहे हैं। फल इसका इसके नाममें ही अन्तर्गत है।

अब चञ्चलता करना विवेकका अर्थ नहीं। अब तो क्षेत्रन्यास करनेमें ही जन्मकी सार्थकता है। अधिकतर घातका कारण अन्तरङ्गसे लोकेषणा है। उसे त्यागो। आत्मश्लाघामें प्रसन्न होना संसारी जीवोंकी चेष्टा है। जो मुमुक्षु हैं वह इन विजातीय भावोंसे अपने आत्माकी रक्षा करते हैं। एक वस्तुका अन्य वस्तुसे तादात्म्य नहीं। पदार्थकी कथा छोड़ो। एक गुणका अन्य गुण और एक पर्यायका अन्य पर्यायके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं। फिर परके द्वारा विभावों द्वारा की गई स्तुति-निन्दा पर हर्ष विषाद करना, अपने सिद्धान्तपर अविश्वास करनेके तुल्य है। जो सिद्धान्तके वेत्ता हैं वह अपथपर नहीं जाते हैं। सिद्धान्तवेत्ता ही वे कहलाते हैं जिन्हें स्वपरज्ञान है तथा वे ही सच्चे वीर और आत्मसेवी हैं।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-३६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, जहाँ तक बने स्वाध्यायमें विशेष योग देना। व्यापार करनेसे आत्मा पतित नहीं होता. पतित होनेका कारण परिग्रहमें अति ममता है। षट्खण्डका स्वामित्व भी ममताकी कृशतामें बाधक नहीं और ममताकी प्रबलतामें अपरिग्रही होकर भी इस जन्म तथा जन्मान्तरमें भी दुःखके पात्र होते हैं। हमारा यह कहना नहीं जो आप परिग्रहको न छोड़ें। परन्तु छोड़नेके पहिले इतना दृढ़ अभ्यास करलें जो शुभागार और सुमतिप्रमादमें भी आत्मीयभाव न हो। छोड़ना

तो कोई वस्तु नहीं तथा जिसे हम छोड़नेका प्रयत्न करते हैं वह तो हमारा है ही नहीं। अतः प्रथम तो उसे अपना न समझो। इसका दृढ़ अभ्यास करो। यह होते ही सब कुछ हो गया। जो कहता है, हमने परिग्रह छोड़ा वह अभी सुमार्गपर नहीं। रागभाव छोड़नेसे ही परपदार्थ स्वयमेव छूट जाता है। लोभकषायके छूटते ही अन्य धनादिक स्वयमेव छूट जाते हैं। अनुभवमें यही आता है जो धनके द्वारा परोपकारके भाव होना संसारके वर्धक हैं। इसमें लोभका त्याग नहीं। इस दानमें स्वपरके उपकारकी वांछा है और वही आस्रवादिका कारण है। इसीसे दानको आस्रवप्रकरणमें पठित किया है। सम्यग्दृष्टिके भी दान होता है; परन्तु उसका भाव लोभनिवृत्तिके अर्थ है, न कि पुण्यके अर्थ। यही भाव पुण्य पाप सर्वमें लगा लेना। चि० मुन्नालालजी सुमतिप्रसादसे योग्य शुभाशीस। आपकी भाभीका स्वर्गवास हो गया। यदि उस समय कुछ दान निकाला हो तब स्या० वि० का भी ध्यान रखना। जो परिणाम परिग्रहमें फँसावे वह त्यागना तथा कुछ काल स्वाध्याय में लगाना।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

[११-३७]

श्रीयुत लाला महाशय सुमेरचन्द जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। अब हमारा स्वास्थ्य अच्छा है। कुछ दिन बाद गुणावा जानेका विचार है। जब जाऊँगा आपको लिखूँगा। आप गर्मी बाद आइए। इस तरफ गर्मी बेशी पड़ती है। अभी स्वाध्यायमें भी

विशेष उपयोग नहीं। कल्याणमार्ग तो आभ्यन्तरसे ही सम्बन्ध रखता है और अन्तरङ्ग निर्मलताका मूल हेतु आत्मा स्वयं है। यदि ऐसा न हो तब किसी भी आत्माका उद्धार न होता। निमित्त कार्यमें सहायक है. किन्तु उसीपर अवलम्बित रहनेसे कोई भी इच्छित वस्तुका लाभ नहीं कर सकता। क्षेत्रको जोतने मात्रसे अन्नका लाभ बीज बोये बिना असम्भव है एवं मन-वचन-कायके व्यापार आभ्यन्तर कषायके सद्भावमें संसारके ही कारण हैं और कषायअभावमें संसारके कारण नहीं। अतः निरन्तर कषायके घटानेकी चेष्टा करना ही अपना कर्तव्य होना चाहिए। कोई भी कार्य करो उस तत्त्वको देखना चाहिए। केवल बाह्य निर्मलताको देखकर सन्तोष नहीं करना चाहिए। बाह्य निर्मलताका इतना प्रभाव नहीं जो आभ्यन्तरकी कलुषताको हटा सके और आभ्यन्तर निर्मलतामें इतनी प्रबल शक्ति है जो उसके होते ही बहिर्द्रव्यकी मलिनता स्वयमेव चली जाती है। आभ्यन्तर व्रणकी कीली निकलनेसे अनायास घाव मिट जाता है। चि० मुन्नालालजी सुमतिप्रसादसे दर्शनविशुद्धि। स्वाध्याय नियम पूर्वक करते रहना।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-३८]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्र जी, दर्शनविशुद्धि

हम राजगृही नहीं गए। शक्ति अब विशेष परिश्रमकी नहीं। अब तो एक स्थानपर रहकर आत्मकल्याण करनेमें है। आप भी सुपुत्रोंको सानन्द रहनेका उपदेश दीजिए। आनन्द-गुण आत्मामे

है। कलह भी वही है। एक बात कोई करले—या तो आनन्द ले ले या कलह ही कर लेवे, इत्यादि। चि० मुन्नालालजी से योग्य दर्शनविशुद्धि। परपदार्थके निमित्तसे जो भी बात हो उसे पर जानो और जब तक उसे विकार न समझोगे आनन्द न पावोगे। अब तो सुमेरचन्द्रजी सानन्द जीवन बितादो यही आपसे प्रेरणा है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११--३९]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी जगाधरी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। हम लोगोंकी आत्मा अति दुर्बल है तथा दुर्बलताके सम्मुख जा रही है, क्योंकि उसका जो भोजन है वह उसे नहीं मिलता। भोजन उसका पासमें ही है किसीसे याचना करनेको आवश्यकता नहीं तथा वहाँ पर कोई चरणानुयोगका नियम भी लागू नहीं जो दिन ही को खाओ, रात्रिको मत खाओ, स्नान करके ही खाओ। फिर भी प्रमाद इतना बाधक है जो उस भोजनको करनेमे ही हम अनादर करते हैं। अथवा उसमे विष मिला देते है। आत्माका भोजन ज्ञान-दर्शन है। हम उसमे कषाय-रूपी विष मिलाकर इतना दूषित कर देते हैं जो आत्मा मूर्च्छित होकर चतुर्गतिगर्त्तका पात्र बनता है। अत. प्रमादका परिहार कर सावधान हो देखने जाननेमे कषायविष मिलनेका अवसर न आने दो। जो प्रमादी हैं वे कुशल कार्य करनेमें सर्वदा अव-हेलना करते हैं। इससे मुक्त होनेका उपाय यह है जो प्रमादको त्याग आत्मस्वरूपका मनन करो। आत्मस्वरूपका यथार्थ अव-

वोध होनेपर स्वयमेव सूर्योदयवत् आत्मा विपथ त्याग सुपथ पर आनेमें विलम्ब न करेगा। अनादिसे इस प्रमादके वशीभूत होकर हमने उस उपायको न जाना और आत्मस्वरूपके जाननेके अभावमें ही इन भौतिक पदार्थोंके व्यामोहमें फँसे रहे। परपदार्थ को निज जाना। अब सुअवसर आया है। सर्व सामग्री कल्याणकी हमें सुलभ है। इस सुलभतासे यदि हमने लाभ न उठाया और वही राग अलापा तव जिस दशाका अनुभव हमें इष्ट नहीं, बलात्कार भोगना पड़ेगा।

आषाढ़ वदि १४, सं० १९९९ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११—४०]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

दशलक्षण धर्म सानन्द बीता। यथाशक्ति दशधा धर्मका पालन किया। उपचारसे तो सर्व हुआ पर परमार्थसे जितना क्रोधादिकों का अंश कृश हुआ वही स्वात्मीय भाव है और वही भाव आत्मा में शान्तिकर है। जो कषायके मन्दोदयमे प्रवृत्तिरूप धर्म होता है वह आत्माको दुर्गतिसे बचाता है तथा शुभ गतिमें ले जानेका निमित्त है। तथा उसके सद्भावमें आत्मा स्वीय स्वरूपका लाभ यथार्थ प्रयत्न करनेसे ले सकता है। परन्तु जो उसे ही आत्महित मानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं वे दीर्घसंसारी हैं। अतः जिन्हें दीर्घ-संसारसे भय है उन्हें श्रद्धागुणको कलङ्कित नहीं करना चाहिए। श्रद्धामें शुभ प्रवृत्तिको अनात्मीय जान उसमें उपादेय बुद्धि करना योग्य नहीं। शुभ प्रवृत्ति ही होने दो। उसमें कर्तृत्व भाव न रक्खो। यदि शुभ प्रवृत्ति उपादेय होती तब श्रीगुरु चतुर्थ धर्म-

ध्यानसे शुक्लध्यानमें न जाते तथा प्रथम शुक्लध्यानसे द्वितीय न होता। कहाँ तक कहे—इसे भी त्याग तृतीय शुक्लध्यानमें जाना पड़ता है; क्योंकि यहाँ भी बाहर काययोग है, तथा तृतीय ध्यानमे सूक्ष्म क्रिया होनेसे यह भी परम यथाख्यातचारित्रका बाधक है। अतः इसका भी त्याग होकर चतुर्थ शुक्लध्यान होता है। इसका भी त्याग होकर सर्व कर्मोंसे विनिर्मुक्त होकर आत्मा सिद्धदशाको प्राप्त होता है। इसी अवस्थाका नाम कैवल्य अवस्था है। अतः सब पदार्थोंसे छूटनेकी भावना ही इस पदप्राप्तिमें बलवान् कारण है। श्री मुन्नालालजीसे दर्शनविशुद्धि कहे। समयके अनुसार प्रवृत्तिको शुभोपयोगमे लगाना। छोटे भाईको शुभाशीर्वाद कहे।

क्वार वदि २, सं० १९९९ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४१]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे तथा सर्व प्रकार आत्महितके यत्न पर होंगे। मनुष्यको हितकारिणी शिक्षा सदागमसे प्राप्त हो सकती है या उसके ज्ञाता आत्माका सम्पर्क भी उसमें सहायक होता है तथा मुख्यतया हमारी दृढ़ श्रद्धा ही उसमे शिक्षकका कार्य करती है। आप जानते हैं, जिनमे श्रद्धाकी न्यूनता है वह देवादि समागम पाकर भी आत्मसुखसे वञ्चित रहते हैं। अतः प्रथम हमारा मुख्य लक्ष्य श्रद्धाकी ओर होना चाहिए। श्रद्धा ही कल्याणमार्गकी जननी है। श्रद्धाके साथ ही सम्यग्ज्ञानका उदय होता है और सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो त्याग है वही चारित्र व्यपदेशको पाता है।

यही मोक्षमार्ग है। हम अनादि कालसे इसके अभावमें संसारके पात्र बन रहे हैं। शेष कुशल है। हम अज्ञानावाद थे, दो दिनमें पावापुर पहुँच जावेंगे और कार्तिक सुदि २ को राजगृही पहुँच जावेंगे। पत्र वहाँ देना।

जैन धर्मशाला राजगिर } आपका शुभचिन्तक गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४२]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा सो ठीक है, परन्तु मैं अब इतना मार्ग पश्चात तकका तय नहीं कर सकता और मेरी तो यह सम्मति है—इस समय आप भी जगाधरी छोड़कर अन्यत्र नहीं जाइये। शान्तिके कारण उत्तम नहीं। जहाँ देखो वहाँ अशान्ति है; क्योंकि रणचण्डिका अभी शान्ति नहीं चाहती। कल्याणका कारण चाहे घरमें रहो, चाहे वनमें जाओ, आप ही है। परके जाननेसे कुछ अकल्याण नहीं होता। अकल्याणका मूल कारण मूर्च्छा है। इसके त्यागनेसे ही सर्व उपद्रव शान्त हो जावेंगे। वह जब तक अपना स्थान आत्मामें बनाये है आत्मा दुःखित हो रहा है। दुःख कोई बाह्य पदार्थसे नहीं होता। वह स्वय अपने अनात्मीय भावोंसे दुःखी हो जाता है।

मेरी तो यह सम्मति है जो अपनी श्रद्धा जब हो गई तब ससारका अन्त हो गया। आपको क्या यह विश्वास नहीं कि हम हैं? जब यह विश्वास है तब फिर व्यर्थ चिन्ता करनेसे क्या लाभ? सम्पूर्ण आगमके जाननेसे ज्ञान ही तो होता है और वह ज्ञान आत्मासे तादात्म्य रखता है। तब जिसने आत्माको जान

लिया वह भी तो तत्सदृश हुआ। अतः ज्ञानकी वृद्धिमात्रके अर्थ व्यग्र होना अच्छा नही। रागादिभाव भी समय पर चले जावेंगे। श्रद्धाको अचल रखना चाहिये। हॉ, निरुद्यमी नहीं होना चाहिए। बुद्धिपूर्वक परपदार्थोंमे जो रागादिपरिमाणों द्वारा इष्टानिष्ट कल्पना करनी होती हे उसे कृश करना चाहिए। जो मोक्षमार्गके प्रतिकूल हैं उनसे सम्बन्ध छोड़ना और जो अनुकूल हैं उनको कार्यमे सहकारी जान ग्रहण करना। किन्तु मुख्य लक्ष्य उपादान पर रखना। उसके बिना सर्व व्यापार निष्फल है। विशेष क्या लिखें। यहाँ कोई त्यागी नहीं। पतासीबाई थी वह अभी गया गई हैं। एक कलकत्तेवाले मूलचन्दजी जैन जो कलकत्तेमे २५०) पाते थे, उन्होने वह नौकरी छोड़ दी। शेष जीवन धर्ममे ही बितावेंगे। अभी इसी तरफ रहेगे। चि० मुन्नालालजीसे दर्शनविशुद्धि।

जहॉ तक बने स्वाध्यायमे उपयोग लगाना और गृहस्थावस्थामे अपने अनुकूल व्यय करना। तथा जो अपनी रक्षामे व्यय किया जावे उसमे परोपकारका भी ध्यान रहे; क्योंकि परपदार्थमे सबका भाग है और तत्त्वदृष्टिसे किसीका भी नहीं। हम परोपकार करते हैं यह भाव न होना चाहिए। इस समय हमारे द्वारा ऐसा ही होना था यही ध्यानमे रखना चाहिए। कर्त्तृत्व बुद्धिका त्याग ही संसारका नाशक है। अहकारबुद्धि ही ससारकी जननी है। पिताजीको यह सन्देश कह देना जो इस भयावह समयमें देशान्तर जाना अच्छा नहीं। अनेक आपत्तियॉ रहती हैं।

पौष सुदि २, सं० १९९९ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४३]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आज कल यहाँ पर चन्दाबाई भी हैं। मौसम अच्छा है। आपका विचार यदि आनेका हो तब अच्छा है। थोड़े दिन बाद गर्मी आ जावेगी। अन्तरङ्गसे तो कर्मजन्य आताप जीवोंको अपनी प्रभुता अहर्निशि दिखा ही रहा है। उसके सामने यह बाह्य आताप कोई वस्तु नहीं। परन्तु हम उस अन्तरङ्ग आतापको आताप ही नहीं समझते। आज तक यहाँ कृष्णाबाई तथा दो त्यागी भी हैं तथा माघ सुदि ११ को वेदीप्रतिष्ठा भी है। मेरा श्री मुन्नालाल, सुमतिप्रसादसे दर्शनविशुद्धि।

माघ सुदि २ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४४]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम सागरसे ढाना आए। यहाँ पर सानन्दसे आमसभा हुई। जैनियोंमें रुचि तो सर्वत्र है, परन्तु उसके विकाश करनेवाले नहीं। यदि त्यागी लोग ग्राम-ग्राम फिरें तब बहुत लाभ हो सकता है। आजकलके समयमें जिसने ब्रह्मचर्य व्रत लिया वह बहुत ही बलिष्ट आत्मा है। छोटे बालकको भी प्रेरणा करना। लोग आत्मगुणको भूल गए हैं और इन परपदार्थोंमें इतने मोहित हो गए हैं जो न्यायमार्गसे चलना नहीं चाहते। अन्याय का धन और विषय इनको सुमार्गमें नहीं आने देता। जबतक हम आत्मतत्त्वको नहीं जानेंगे, संसारसे विरक्त नहीं हो सकते। शास्त्रका ज्ञान और बात है और भेदज्ञान और बात है। त्याग

भेदज्ञानसे भी भिन्न वस्तु है। उसके बिना पारमार्थिक लाभ होना कठिन है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४५]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे। चि० मुन्नालालजीसे मेरा धर्मस्नेह कहना तथा सुमतिप्रसादजीसे भी। पर्यायकी सफलता संयमसे है। मनुष्यभवमें यही मुख्यता है। देवपर्यायसे भी उत्तमता इसमे इसी संयमकी मुख्यतासे है। गृहस्थ भी संयमका पात्र है। देश-सयम भी तो संयम ही है। हम व्यर्थ ही संयमका भय करते हैं। अणुव्रतका पालना गृहस्थके ही तो होता है। परन्तु हम इतने भीरु और कायर हो गए है जो आत्महितसे भी डरते हैं। मैं अगहन बदि ५ को सागरसे रहली चल दिया और ८ दिन बाद शाहपुर पहुँचूँगा। आपके दोनों बालकोंने ब्रह्मचर्यका नियम लिया यह बहुत अच्छा किया। जीवनकी सार्थकता इसीमे है। तथा दोनो बालकोको स्वाध्यायमे लगाना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। दुलीचन्दसे दर्शनविशुद्धि। अच्छी तरहसे रहना।

शाहपुर मगरौत (सागर)
अगहन बदि ६, सं० २००१

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजो, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। मैं सागरसे अगहन वदि ५ को चलकर शाहपुर आ गया। यहां पर शाहपुर पाठशालाका वार्षिकोत्सव

हुआ। उसमें ६५००) पाठशालाको हो गया। ५०००) पहिले था। यह सर्व होता है; परन्तु कल्याणका पथ निरीह-वृत्ति है। कषायके वशीभूत होकर सर्व उपद्रव होते हैं। अब यहाँसे नैनागिरि जाऊँगा और वहाँसे जहाँ जाऊँगा आपको लिखूँगा। जहाँ-जहाँ गया, जनताको आनन्द रहा। पटना और गढ़ाकोटामें दो पाठशालाओंकी स्थिति स्थायी चन्दासे हो गयी। अवकाश नहीं मिलता। विशेष समाचार नैनागिरसे लिखूँगा।

नोट—मोह की महिमा है जो इस प्रकार नाट्य करा रहा है। हमारी वच्चोंसे दर्शनविशुद्धि कहें।

अगहन सुदि ७, सं० २००१ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४७]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

ब्रह्मचारी छोटेलालजीके पत्रसे मालूम हुआ है कि आप पर प्राचीन रोगने फिरसे आक्रमण प्रारम्भ कर दिया है। सहज ही मोहजन्य खेद हुआ। बन्धुवर! आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि है और प्रचुरतासे प्रायः संसारी जीवोंकी यही धारणा है और होता भी तथ्य है, क्योंकि विना किसी विकारी दो पदार्थोंके मिलापके संसारकी रचना ही नहीं हो सकती। परन्तु क्या इसका सम्बन्ध कहीं विच्छेद नहीं हो सकता। ऐसा प्रायः बहुतोंके होता है और उसका सहज उत्तर भी हो जाता है। जैसे बीजके जलनेसे अंकुर नहीं होता उसी प्रकार कर्मबीजके दग्ध होने पर भवाङ्कुर नहीं होता। यह बात कहने और सुननेमें अति सरल और सुव्यक्त है; परन्तु करनेमें अति कठोर और भयावह है। है नहीं,

परन्तु धारणा ऐसी ही बना रक्खी है। क्या वस्तुतः कर्म ही की प्रबलता है जो हमे संसारनाटकका पात्र बना रक्खा है। अधिकांश मोही जीवोकी तो यही धारणा है, परन्तु मेरी तो यह धारणा है कि असंज्ञी जीवो तक तो संसार वैसा ही है जैसा कि सामान्य लोगों का मत है; परन्तु जब यह जीव सज्ञी अवस्थाका पात्र हो जाता है उस समय उसके उस विलक्षण प्रतिभाका उदय होता है जो अखिल वस्तुओंके मर्मको जाननेका अवसर उसे अनायास मिल जाता है और तब वह समझने लगता है—यह ससार एक मेरे ही विकार भावपर अवलम्बित है। यह मेरे हाथकी बात है जो आज ही इस संसारका अन्त कर दूँ। 'आज' यह तो बहुत काल है। यदि स्वकीय पौरुषको कार्यरूपमे परिणित करूँ तो घड़ी भरमें इसका अन्त कर दूँ। कुछ यह अत्युक्ति नहीं, परन्तु मान रक्खी है।

अतः आप सब औषधियोंके विकल्पजालोंको छोड़ ऐसी भावना भाइये जो यह पर्याय विजातीय दो द्रव्योंके सम्बन्धसे निष्पन्न हुई है। फिर भी परिणमन दो द्रव्योका पृथक् पृथक् ही है। सुधा-हरिद्रावत् एक रङ्ग नहीं हो गया। अतः जो कोई पदार्थ इन्द्रियोके गोचर हैं वह तो पौद्गलिक ही हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि हम मोही जीव शरीरकी व्याधिका आत्मामें अवबोध होनेसे उसे अपना मान लेते हैं। यही अहङ्कार ससारका विधाता है। अतः ज्ञानी जीवोका भाव यह कदापि नही होता कि मैं रोगी हूँ और जो कुछ चारित्रमोहसे अनुचित क्रिया होती है उसका कर्त्ता नही और जो कुछ होता है उसकी निन्दा गर्हा करता है। यह भी मोहकी महिमा है। अतः इसे भी मिटाना चाहिए। जन्म भर स्वाध्याय किया फिर भी अपनेको रोगी मानना और संसार की तरह विलापादिक करनेकी आदतका होना क्या श्रेयस्कर

है ? आप स्वयं विज्ञ हो। अपनेको सनत्कुमार चक्रीकी तरह दृढ़ बनाओ। व्याधिका मन्दिर शरीर है न कि आत्मा। ऐसी दृढ़ता धारण करोगे तो मुझे विश्वास है जो बहुत ही शीघ्र इस रोगसे मुक्त हो जावोगे। यही अनुपम रामबाण औषधि है जो रागद्वेषके त्यागरूप महामन्त्रका निरन्तर स्मरण करो। इसीके प्रतापसे ही सर्वत्र प्राणियोंमें महत्त्व है।

निरोगाभिलाषी
गणेश वर्णी

[११–४८]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्ध

आप सानन्द जगाधारी पहुँच गये होंगे। गर्मीभर यहीं रहने का विचार है। शरीरकी अवस्था प्रतिदिन शीर्ण हो रही है और आयु भी अब परभवकी आयुके साथ सम्बन्ध कर रही है। किन्तु खेद इस बातका है जो आनन्द परकीय पदार्थोंसे ममताका त्याग करनेमें चेष्टाहीन है। यही पुरुषार्थकी निर्बलता है। इसमें बहुत से मनुष्य इतने मोही हैं जो तत्त्वज्ञानियोंसे अग्रसर होकर भी शारीरिक ममता नहीं छोड़ते। बहुतसे मनुष्य मन्दकषायी होकर भी आत्मीय गुणोंके सन्मुख नहीं आते। अस्तु, परकी समालोचना करना महती अज्ञानता है। हम स्वय इस महान् मोहके द्वारा त्रस्त हो रहे हैं। उत्तमसे उत्तम स्थान छोड़कर इस स्थानमें आ गये जहाँ कि बुत कारागार है। अभी तक उसने अन्दर जानेकी अनुमति नहीं दी है। कच्ची हवालातमें रक्खे है। चार माह बाद मुकद्दमा होगा। उस समय या तो आजन्म कारावास या रिहाई। हम भी पूर्णरूपसे चेष्टा मुक्त होनेकी कर रहे हैं।

एक मास तो एकान्त वास मौन लिया है। समयसारको अपनी मुक्तिके लिये वकील बनाया है। गवाह कोई नही। जो अपराध लगाये हैं वे मैंने स्वीकार कर लिये हैं। इससे सफाईकी गवाह देने की आवश्यकता नहीं समझी। विशेष क्या? ज्येष्ठ मास पत्र देने का त्याग, बोलनेका त्याग। आप सानन्द स्वाध्याय करते होगे। हमारी प्रवृत्ति देखकर आप लोगोंको विशेष विचार हुआ यह कोई आपत्तिजनक नही। आप जानते हैं—मोहमे यही तो होता है। और क्या होगा? पत्रोत्तर देना या न देना आपकी इच्छा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४६]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपका बाह्य स्वास्थ्य तथा आभ्यन्तर कुशलमय है, परमानन्द का विषय है। ससारमे जिसे शान्तिका लाभ हो जावे, आशातीत लाभ है। अतिरिक्त इस लाभके जितने लाभ हैं सर्व नाशशील हैं तथा अशान्तिके उत्पादक हैं। इसका अनुभव जिनके परिग्रह है उन्हे प्रत्यक्ष है। हम तो अनुमानसे लिख रहे हैं। परन्तु यह अनुमानाभास नहीं, क्योंकि उसका सम्बन्ध आप लोगोंकी प्रेम दृष्टिसे हमे भी प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। वस्तुके लाभमे प्रायः जीवोंके मूर्छा ही तो होती है और वही तो अशान्तिकी मूल जननी है। परपदार्थके सग्रह करनेमे क्लेश रक्षणमें महती आकुलता, जानेमे शोक, न जाने कौनसी गुरुता उसमे देखी गयी जिसके अर्थ इतने व्यग्र हम लोग रहते हैं। मेरी बुद्धिमे मद्यपायी की तरह यह प्रवृत्ति है।

ज्ञेयोंमे अथवा ससारातीत सिद्ध परमात्मामें ममत्व बुद्धि उत्पन्न कर अपनेको महात्मा मानना श्रेयोमार्ग नहीं। मार्ग तो परपदार्थ मात्रमें आत्मीय कल्पनाको मिटानेमे है। यही सुगम मार्ग और श्रेयोमार्ग है। विशेपतत्त्व विशेषज्ञ जानें।

आप वहुत दिनसे इसका अनुभव कर रहे हो। अव जहाँ तक बने पर वस्तुमें निजत्व भावको दूर करिये। अनायास तज्जन्य बाधाये विना किसी तप आदि संयमके स्वयमेव पलायमान हो जावेंगीं। घरवास बुरा नहीं; परन्तु मूर्च्छा अति कटुक भाव है। इस वातकी चेष्टा करनी चाहिए जो कमलकी तरह हम निर्लेप रहे। श्रीमुन्ना सुमति तो कोई विशेप परिग्रह नहीं। मुन्ना सुमति मेरे हैं, मैं इनका हूँ यह अभिप्राय छोड़ने की चेष्टा करो। चेष्टा क्या करो; इस अभिप्रायका जन्म ही न होने दो। स्थान छोड़नेसे तथा शास्त्रोंका स्वाध्याय करनेसे वे छूट जावें सो नहीं। जब उनमे परत्व ज्ञात हो जावेगा, स्वयमेव वह वुद्धि छूट जावेगी। इसका यह अभिप्राय नहीं जो इन्हे तो वाह्यसे छोड़ दो और जगत्वर्त्ती अन्यको अपना लो।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–५०]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्दजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं—कोई भी पदार्थ इष्टानिष्ट नहीं। यह हमारी कल्पना है जैसे अमुक व्यक्ति द्वारा हमें शान्तिलाभ होता है। शान्ति तो अपनी परिणतिविशेष है। केवल उसके वाधक कारण जो हमने मान रक्खे हैं वे नहीं हैं।

किन्तु हम स्वयं ही अपनी विरुद्ध भावना द्वारा बाधक कारण बन रहे हैं। उस विरुद्ध भावको यदि मिटा देवें तो स्वयमेव शान्तिका उदय हो जावेगा। आपने अच्छा किया जो सहारनपुर चले आए। अब कुछ दिन जगाधारी ही रहिए। स्वयमेव शान्ति मिलेगी। मेरा विचार चैत सुदी १ से छह माह पर्यन्त मौनव्रत लेनेका है। जैसे आप निमित्त कारणसे पृथक् हो गए यही मेरा अभिप्राय है जो इन सब उपद्रवोसे पृथक् रहूँ। यद्यपि उपद्रव अन्य नहीं। हम स्वय ही अपने कल्याणमे उवद्रव हैं। स्वयं ही उसको पृथक् करेंगे। परन्तु जो मोही जीवोकी आदत है वह कहाँ जावे? अतः वही गति हमारी है। हमारे सहवासमे शान्ति कैसे मिल सकती है? स्वयं अन्धा परको मार्ग नही दिखा सकता। किन्तु यदि उसके हाथमे लालटेन हो तब दूसरा स्वयं उसके द्वारा मार्ग देख लेता है और अन्धेको फोकटका श्रेय मिल जाता है। यही दशा हमारी है। मेरा श्री मुन्नालाल और सुमतिप्रसादजीसे आशीर्वाद। १६ आनेका सुवर्ण होता है वैसे ही आत्माको ध्यानाग्नि द्वारा शुद्ध करना चाहिए।

जबलपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११—५१]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्दजो भगत, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपने अच्छा किया। आत्मीयपरिणति निर्मल बनाओ। उसपर अधिकार है। परकी वृत्ति स्वाधीन नही। उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। मेरा दृढ़ विश्वास है जो जीव आत्मकल्याणको चाहते हैं वह अवश्य उसके पात्र

होते हैं। अनादिमोहके वशीभूत होकर हमने निजको जाना ही नहीं, फिर कल्याण किसका ? अतः इस पर्यायमें इतनी योग्यता है जो हम अपने आत्माको जान सकते हैं। बाह्य आडम्बरोंमें मत फसना। पं० पन्नालाल यहाँ नहीं हैं, जयपुरमें हैं। वहाँसे मथुरा जायेंगे। मन्दिर बन गया ? हमारी सम्मति मानो तब २००००) तो मन्दिरमें लगाओ। शिखर निकालनेकी कोई आवश्यकता नहीं। ५०००) का शास्त्रभण्डार और २५०००) के स्थायी व्याजसे १२५) मासिकका विद्वान् रखो जो वहाँ बालकोंको शास्त्रप्रवचन करे। केवल ईंट चूनासे आत्महित नहीं। हितका कारण ज्ञान है। इस ओर लक्ष्य दो। केवल रूढ़िसे लाभ नहीं। हम लोग केवल ऊपरी बातें देखते हैं। ऊपरी देखनेसे आभ्यन्तरका पता नहीं लगता। आभ्यन्तरके ज्ञान विना भोंदू ही रहे। हमारी बात आप पब्लिकमें सुना देना। हमको जो मनमें आयी सो बाहर प्रकट कर दी। आप आश्विन वदिमें आवें। मैं भाद्रपद तक मौनसे रहूँगा। ढीलकी आवश्यकता नहीं। अब यह विचार होता है जो क्षुल्लककी दीक्षा ले लूँ और देहातमें काल बिताऊँ।

हमारा अभिप्राय तो यह है—आप कुछ अपनी शान्तिकुटीरमें काल बितावें। कहीं कुछ नहीं धरा है। केवल मनकी हवस है जो परसे कल्याण चाहती है। यह महती भूल है।

वैशाख वदि ११, सं० २००३ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-५२]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी भगत, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। ज्ञानका साधन प्रायः बहुत

स्थानोंपर मिल जावेगा, परन्तु चारित्रका साधन प्राय: दुर्लभ है। उसका सम्बन्ध आत्मीय रागादिनिवृत्तिसे है। वह जबतक न हो यह बाह्य आचरण दम्भ है। हम लोग आत्मीय कषायके वेगमे परोपकारका बहाना करते हैं। परोपकार न कोई करता है और न हो ही सकता है। मोही जीवोंकी कल्पनाके जाल ही यह परोपकारादि कार्य हैं। मन्दिरवाले मानें या न माने, हमने तो अपनी मोहकी कल्पना आपको लिख ही दी। आपकी इच्छा, सागर रहे; परन्तु अभी जेठमें कहीं न जावें। ज्ञानका साधन स्वाध्याय है। इसे गर्मीभर जगाधरीमे ही करिये। श्री मुन्नालालजी आदिको इसीमे लगाइये। सुमतिको भी इसी मार्गका पालन कराइये। हमारा विचार वर्षा बाद अन्यत्र जानेका है। अभिप्राय यह है जो आपके प्रान्तकी मण्डलीका सम्बन्ध रहे। परन्तु उस प्रान्तमें स्थानकी त्रुटि मालूम होती है। यदि कोई स्थान हो तब लिखना। हमारा विचार तो सिंहपुरीका है, परन्तु एकाकी नहीं रह सकते, क्योकि हमारा साधन पराधीन है। यदि वहाँ योग्यता न हो सकी तब गया चले जावेंगे, परन्तु यह प्रान्त छोड़ देवेंगे।

काश्मीर स्टोर्स जबलपुर
वैसाख सुदि १३, सं० २००३ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–५३]

योग्य इच्छाकार

पत्र आया। कल्याणका मार्ग आत्मामें है। अन्यत्र देखना ही बाधक है। स्वाध्यायका मर्म जानकर आकुल नही होना चाहिये। आकुलता तो मोक्षमार्गमें कुछ साधक नहीं। साधक तो निराकुलता है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११—५४]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। कषायके आवेगमें बड़े-बड़े काम होते हैं। जो नहीं हो सो थोड़ा। श्री चम्मालालजी भी तो आखिर संसारी जीव हैं। श्री मनोहर भी तो वही हैं और आप भी वही हैं। हम भी वही हैं। जो कुछ हम लोगोंसे हो जावे थोड़ा है। गुरुकुल क्या वस्तु है? हम लोग आत्महितकी अवहेलना कर देते हैं। यदि गुरुकुलकी अवहेलना कर देवें तब कौन आश्चर्यकी बात है। श्रद्धाकी निर्मलतामें धक्का न लगना चाहिए। मैं अन्यकी कथा क्या कहूँ, स्वयं जबलपुरके चक्रमे फँस गया। इसमे जबलपुरका दोष नहीं। हमारी दुर्बलता है जो सागरसे निकले और जबलपुरकी नर्मदामें डूब गए। अतः जहाँ तक बने अपनी दुर्बलताको देखो। घर इसी वास्ते छोड़ा है। मुन्ना-सुमतिको छोड़ा। अब अन्यसे क्या प्रयोजन? मेरी तो सम्मति है—परमेश्वरसे भी प्रेम छोड़ो। श्री परमेश्वर तो अचिन्त्य हैं। केवल—श्रुतज्ञानके विषय हैं। स्वीय आत्मा, जिसके कल्याणके अर्थ ये सम्पूर्ण उपाय हैं, उससे भी स्नेह छोड़ दो। वहाँ पर जो त्यागीवर्ग हो, मेरा धर्मस्नेह कहना और जगाधारीको लिख देना जो आम आदि न भेजें। श्री त्यागी मनोहरलालजी भी वहीं रहेंगे।

अगहन वदि २, सं० २००३ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११—५५]

श्रीयुत महाशय ब्र० सुमेरचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। आपका आना हमें इष्ट है। आप आवें। हम

अपनी अन्तिम अवस्था आपके साथमे बिताना चाहते हैं। गृहस्थोंका सम्पर्क सुखद नही और यह भी पूर्ण निश्चय कर लिया जो वर्षा बाद जबलपुर छोड़ देना। श्री ब्रह्मचारी मनोहरलाल सानन्द है। वह भव्य जीव हैं। कुवार वदि २ तक इरादा कोरी पाटनका है। साथ अपने सुमति और मुन्नासे आशीर्वाद कहना और उनकी स्वाध्यायमे रुचि कराना। और यदि मार्गमे अड़चन न हो तब आपका आना यही बडा कार्य है। अब तो यही चित्त चाहता है कि एकाकी रहें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–५६]

श्रीमान लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मै जबलपुरसे दमोह आ गया। एक दिन बाद सागर पहुँचूंगा। आप सानन्द होंगे। स्वाध्याय आदि की व्यवस्था ठीक होगी। पुत्रोंसे आशीर्वाद। जहाँ तक बने, उन्हे स्वाध्यायमें लगाना और आयसे व्यय कम करें। आकांक्षाऐ अल्प रखें। **सन्तोष ही परम धन है। धन सुखका कारण नहीं। सन्तोषामृतसे जो तृप्ति होती है, वह बाह्य धनादि से नहीं।** परन्तु हमारी दृष्टि इतनी मलिन हो गई जो इस ओर नहीं देखते।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–५७]

श्रीयुत महाशय ला० सुमेरचन्द्रजी सा०, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द पहुँच गये। ससारमे सर्वत्र अशान्ति का

साम्राज्य है। कोई भाग्यशाली जीव ही इस अशान्तिसे रक्षित रहता है। परपदार्थकी मूर्च्छा ही तो अशान्तिकी कारण है। आपने महती पटुता की जो इस मूर्च्छाके जालसे अपनेको पृथक् कर लिया। चि० मुन्नालाल, सुमतिप्रसादको यही शिक्षा देना जो जलमें कमलकी तरह जितने निर्लेप रहेंगे उतने ही सुखके पात्र होंगे। संसारके बन्धनछेदका यह मुख्योपाय है। आपने बहुत मनुष्योंको देखा, परन्तु शुभ भावनावाले जीव बहुत कम पाये जाते हैं। जो हैं वही स्तुत्य हैं। हमारी इच्छा है, आपका सहवास रहे, अच्छा है। मैं कटनीसे आ गया। सर्वत्र वही बात है। श्री मुन्नालालजी, सुमतिप्रसादसे यह कहना—कल्याणके विकल्पसे कोई लाभ नहीं। जितने अंशमें शान्ति हो राग छोड़नेकी कोशिस करो और अपने कुटुम्बकी भी तद्रूप परिणति करावो। यदि उनकी परिणति न हो, खेद न करो। उपदेश कुछ नहीं, केवल रागकी कृशता ही सर्वाङ्गमय आगमकी सार है। यही श्री प्रभुका उपदेश है। परको पर जानो आपको आप जानो यही तत्त्वज्ञान है।

पौष सुदि ११, सं० २००३ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-५८]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी योग्य इच्छाकार

मुझे आनन्द इस बातका है कि आप लोगोंके समागममें आ रहा हूँ। अन्तमें यही भावना है जो अन्तिम श्वास श्रीपार्श्व निर्वाण भूमिमें श्री पार्श्व नाम लेते ही पूर्ण हो। यह मेरा पूर्ण

विचार हो गया है; इसमे कोई सदेहकी आवश्यकता नहीं। श्री चम्पालालजी सेठीसे हमारी दर्शनविशुद्धि कहना तथा श्रीयुत गौरीलालजीसे दर्शनविशुद्धि । अब हमारा विचार पूर्ण रीतिसे आनेका है । माघ वदि २ को चलनेका विचार किया है। शरीरकी शक्ति अवस्थाके अनुकूल अच्छी है । फिर श्री पार्श्वप्रभु चरणरजके प्रसादसे आ रहा हूं। श्री १०५ क्षु० पूर्णसागरजीसे इच्छाकार।

सागर
पौष सु० ३, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–५६]

योग्य इच्छाकार

संसार अशरणशील है। इसमे जबतक जीव विकारभावोंको करता रहता है तबतक ही सुख और दुखका पात्र है। अत. जिन जीवोंको ससारयातनाओंसे मुक्त होना है उन्हे विकारभावोंको त्यागना चाहिए।

चैत्र वदि ८, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–६०]

श्रीमान् महानुभाव ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत. योग्य इच्छाकार

पत्र आपका आपकी योग्यताके अनुकूल था। मै तो इस योग्य नहीं। आप लोगोकी प्रतिष्ठा, जहाँ जाते हो, आपकी योग्यतासे होती है। मेरा तो यह विश्वास है जो हमारा संसार बन्धन टूटता है सो हमारी आत्मशुद्धिसे ही टूटता है व्यवहार कुछ करो । विशेष क्या लिखे—जिसमे आपको

शान्ति मिले सो करो। हाँ, जहाँ तक बने परावलम्बन त्यागो। यदि हमारी बात मानो तब एकबार वर्णीजीको भी सोनगढ़ देखना चाहिए। वस्तुतः सर्वत्र स्वयं ही को देखना होगा। विकल्प कुछ करो। इटना कपासमलको ही होगा। वहाँसे तीन लिफाफे आए। यह विशेष व्यय विवेकसे ही होना चाहिए।

जेठ सुदि ६, सं० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–६१]

श्रीयुत महाशय भगतजी, योग्य इच्छाकार

कल्याणका मार्ग जो है सो आप लोग स्वयं कर रहे हो। हम क्या उपदेश देवें। हमसे सत्य पूँछते हो तब हम अभी किसीको श्रेयोमार्गका उपदेश नहीं दे सकते हैं; क्योंकि हम स्वयं अपनेको सुमार्गपर नहीं ला सके। श्रीयुत परशुरामजीसे योग्य इच्छाकार। यदि हमारी सम्मति मानो तब परमात्मासे भी इसकी प्रार्थना त्याग दो। अपने अन्दर ही परमात्मा है। कषाय दूर करनेकी आवश्यकता है।

असाढ़ वदि ७, सं० २००६ } आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–६२]

महानुभाव, इच्छाकार

हम न तो अब विशेष कार्य कर सकते हैं और न करनेके योग्य हैं। आप लोग भव्य हैं तथा आप लोगोंने सत्संगति भी बहुत की है तथा करनेका उत्साह है। अतः जो आगमानुकूल

नियम हैं उनका प्रचार करिए। इसीमे हमको आनन्द है। हमारी तो यह श्रद्धा है जो जगतका कल्याण जगतके अधीन है। हमारे द्वारा हमारा कल्याण हो सकता है। निमित्त चाहे कोई हो। आजकल जितनी चर्चा होती है उसमे शब्दाडम्बरकी मुख्यता रहती है। कर्त्तव्यपथ न्यून रहता है। हमारा श्री परशुरामजीसे इच्छाकार कहना तथा जितने ब्रह्मचारी हों उनसे इच्छाकार। पतासीबाई आदि जितनी बाईयां हों उनसे यथायोग्य इच्छाकार कहना। हमारा उदय उतना बलवान् नहीं जो निर्वाणभूमिसे स्वर्गारोहण हो। मेरा तात्पर्य समाधिमरणसे है। आप लोग हमें उपदेश देते हैं; परन्तु उसपर अमल करनेमें संकोच करते हैं। आप लोग स्वयं रहके वीतरागमार्ग दिखादो। हम तो अव्यवस्थित हैं। आप लोग व्यवस्थित बनो।

आषाढ़ वदि १०, सं० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–६२]

श्रीयुत भगतजी सा०, योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे पूर्ण प्रसन्नता हुई। मैं आप लोगोको परम धार्मिक मानता हूँ जो आप लोगोंका समय श्री पार्श्वप्रभुके चरणरजमें रहकर धर्मध्यानमें जा रहा है। मेरा उत्साह अब आप लोगोंकी भावनासे वृद्धिरूप हो रहा है। क्या लिखूँ—पंख नहीं, अन्यथा उड़कर आ जाता। कल्याणका मार्ग आत्मामे ही है; परन्तु उपादानका विकाश सामग्रीसे ही होता है। अन्तरङ्गकी विशुद्धता ही संसार-सागरसे पार उतरनेमे नौकारूप है। आपने जो सिद्धान्त समयसारसे किया हो सो आप जानें। परन्तु मेरा

दृढ़तम विश्वास है, 'सामग्री कार्यस्य जनिका नैकं कारणम्'। कार्यका विकाश उपादानमे ही होता है इस सिद्धान्तका इसमें कोई विरोध नहीं।

बन्धुवर ! मुझे अब अन्तिम समय वहीं रहना है तथा जो कुछ अपराध आज तक किये है, आप सर्व महानुभावोंके समक्ष समालोचना कर नि.शल्य अन्तिम समाधि लेनेका निश्चय किया है। मेरा सबसे इच्छाकार।

पौष वदि ६, सं० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-६४]

श्रीमान् ब्र० छोटेलालजी सा०, श्रीमान् भगतजी,

योग्य इच्छाकार

आपकी कृतज्ञता है जो इतनी शिष्टता प्रदर्शन करते हो। आप लोगोंकी निर्मलता है जो प्रत्येक स्थानमें आदर होता है। न हमारी कृपा है, न किसीकी। जो कुछ उत्तम मध्यम कार्य होते हैं, स्वयं आत्मा ही उनका कर्त्ता है तथा भोक्ता है। हमको प्रसन्नता है जो आप लोगोका प्रभाव इस प्रकार व्यापक हो रहा है और आगे विशेषरूपसे होगा। हमारी तो यह सम्मति है जो इस समय कोई ऐसा अभूतपूर्व कार्य करो जो कुछ काल जैन धर्मकी विशेष प्रभावना चली जावे। गुरुकुलको ही स्थायी बनादो। कमसे कम उस प्रान्तमें २ लाख रुपये तो हो जावें। इस समय जनता अनुकूल है। मुन्नालालजीसे हमारी इच्छाकार तथा सर्व संघसे इच्छाकार।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[११-६५]

श्रीभगतजी सा०, इच्छाकार

पत्र आया। प्रसन्नता इस बातकी है जो आपका स्वास्थ्य अच्छा है। यदि कुछ न्यूनता हो तब १ या २ मास और भी हो जावे तब रहना अच्छा है। कल्याणका पथ आत्मामे है। क्षेत्रादिक भी निमित्त हैं। समागम भी निमित्त है। 'स्वाध्यायं परमं तपः'। इसे आप करते ही हैं। बालकोंसे आशीर्वाद। श्री सुमतिप्रसाद भी होनहार जीव है। उसे स्वाध्यायमे लगाना। श्री मुन्नालालजीसे योग्य दर्शनविशुद्धि। मनमें विकल्प न रखना। जैनधर्म वह है जो अनन्त ससारके कारणोंसे भी द्वेष नही करता। विशेष क्या लिखें। वृद्धावस्थाके कारण लिखनेमें उत्साह नही होता।

ईसरी
अषाढ सुदि १०, सं० २०११ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-६६]

श्रीयुत महाशय भगतजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपके प्रायः अनेक आए परन्तु हमारे पास आपका निज पत्र नही आया। अस्तु, आपका स्वास्थ्य निर्मल होगा। बाह्य स्वास्थ्यके साथ मेरा तात्पर्य्य अन्तरङ्ग स्वास्थ्यसे है। आप स्वयं विवेकशील हैं। परिणामकी निर्मलता ही कल्याणकी जननी है। अतः जहाँ तक बने उसीके ऊपर दृष्टिदान करना उचित है। आप

तो समयज्ञ हैं। विशेष क्या लिखें? बालकोंको आशीर्वाद कहना। भव्य हैं। गृहस्थ होकर भी भीतरसे निर्मलता होना यही प्रशस्त भावका कारण है।

ईसरी बाजार,
का० सु० ३, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० छोटेलालजी

श्रीमान् ब्र० छोटेलालजीका जन्म पौष शुक्ला १४ वि० सं० १६५१ को सागर जिलाके अन्तर्गत नरयावली ग्राममें हुआ है। पिताका नाम श्री पूर्णचन्द्रजी और माताका नाम नोंनीबहू था। जाति परवार है। शिक्षा विशारद तक होने पर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होंने अपने ज्ञानमें विशेष उन्नति की है।

नरयावली छोड़कर व्यापार निमित्त ये सागर आये। किन्तु व्यापारमें अपनी उदार प्रवृत्तिके कारण सफल न होने पर बहुत काल तक ये सागर विद्यालयमें सुपरिंटेंडेंट रहे। इसी बीच लगभग दो माहके शिशुको छोड़कर इनकी पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृहारम्भसे उदासीन रहने लगे और श्रीयुक्त सिं० मौजीलालजी का सम्पर्क मिल जानेसे कुछ कालमें इन्होंने गृहवासका त्याग कर वि० सं० १६६६ में श्रीमान् ब्र० प्यारेलालजी भगतसे ब्रह्मचर्य दीक्षा ले ली।

ये रोचक वक्ता और समाजसेवी हैं। फलस्वरूप इन्होंने जियागंज, लालगोला, धूलियान और अडंगाबादमें जैन पाठशालाएँ स्थापित कीं। श्री स्याद्वाद विद्यालय बनारसको उल्लेख योग्य आर्थिक सहायता पहुँचवाई। कई वर्ष तक उदासीनाश्रम इन्दौर और ईसरीके अधिष्ठाता रहे तथा व्रतीसंघके मंत्रीपदका कार्य भी इन्होंने किया है।

प्रारम्भमें ये पूज्य श्री वर्णीजीके सम्पर्कमें आये और तबसे आज तक उसे बराबर बनाए हुए हैं। इतना ही नहीं, पूज्य वर्णीजी महाराजमें इनकी विशेष भक्ति है। उसीके परिणामस्वरूप ये उन्हे बराबर पत्र लिखा करते हैं। उत्तरस्वरूप उनके जो पत्र इन्हें प्राप्त हुए उनमेंसे उपलब्ध कतिपय पत्र यहां दिये जाते हैं।

[१२-१]

श्रीयुत महाशय पं० छोटेलाल जी, योग्य इच्छाकार

आप आए, मेरा मौन दिवस था अतः मै आपसे अपना कुछ भी अभिप्राय व्यक्त न कर सका। बन्धुवर ! आपकी श्रद्धा प्रशस्त है और यही श्रद्धा भवोदधिपारको कालान्तरमें नौकारूपको धारण करेगी। अब यह तो अन्तरङ्गसे गंभीर दृष्टिसे विचारो जो हम लोग अपने पवित्र अवसरको व्यर्थ अन्य पदार्थोंकी आलोचनामें बिता देते हैं। मेरी सम्मतिमें इसमे कुछ लाभ नहीं, क्योंकि जिस समय हम इन पदार्थोंके परिणमनको देखकर आलोचना करते है उस समय हमारी आत्मामें एक तरहकी सक्लेशता होती है जो वर्तमानमे दुःखभूमि है तथा उत्तरकालमें अशुभ कर्मकी खानि है। ऐसे उभय जन्म अधःपतन करनेवाली समालोचनासे क्या लाभ ? अथवा जो परिणमन हो रहा है वह क्या नही होता था सो तो है ही नहीं, हो ही रहा है, फिर इतनी हाय क्यों ? सम्यग्दृष्टि अपनी निन्दा गर्हा करता है न कि पर की। अथ च परकी आलोचनासे हमे क्या तत्त्व निकला ? प्रत्युत यदि यह भाव परनिन्दा और आत्म-प्रशंसामे परिणम जाये तो नीचगोत्रके वन्धका कारण हो जावे। जहाँपर जिसकी समालोचना करते थे उसके पात्र भी न होगे, क्योंकि नीचगोत्रका उदय पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। कल्पना करो यदि जिन वाह्य वस्तुओंसे आप उन्हे निर्ग्रन्थ पदके योग्य नहीं समझते, क्या वह इनका वाह्यमें त्याग कर देवें तव मुनि मानोगे। यदि नहीं तब फिर इतनी विपमतासे क्या लाभ ? उचित तो यह है कि इन पदार्थान्तरोंकी परिणतिमे हमारी इष्टानिष्ट कल्पना होती है। निरन्तर उसके पृथक् करनेमें यत्नपर रहना ही भविष्यमे कल्याण

पथके समीप जानेका अपूर्व पथ है। परको उसका आस्वादन करानेकी चेष्टा कभी भी उससे पृथक् होनेकी पद्धति नहीं, प्रत्युत अधःपतनका ही कारण है।

आप जानते हैं परको सुनानेमें परको प्रसन्न करनेका भाव रहता है। भाव इसका यह है कि पर हमें प्रशस्त दृष्टिसे देखे। यह मान नहीं तो क्या है? अनादि कालसे इन्ही परपदार्थोंमें निजत्व, इष्टत्व और अनिष्टत्वकी कल्पना करते करते अनादि काल बीत गया, सुखका लेश भी नही पाया और इस तरहकी हठवासनासे आत्मामे सत्ता जमा रक्खी है जो अनेक प्रयत्न करनेपर भी हम उस कल्पनाके मिटानेमे असफल प्रयत्न रहते हैं, क्योंकि विरोधीका बल प्रबल रहनेपर हम कहाँ तक कृतकार्य होंगे? ऐसा जन्म मिलना सामान्य पुण्यका कार्य नहीं जहाँपर हेयोपादेय तत्त्वकी मीमांसा करनेमे जीवकी शक्तिका विकाश हो जाता है। ऐसा सुन्दर अवसर पाकर अपने निजत्वमे जितनी त्रुटियां हो उन्हे ही दूर करनेकी चेष्टा करनेमे संलग्न रहना चाहिए। अपनी निर्मलता ही आत्मकल्याणकी भूमि है। परकी निर्मलतासे अपने कल्याण और मलिनतासे अपने अकल्याणका कोई सम्बन्ध नही? क्योकि ज्ञेय पदार्थ ज्ञानमे आता है और ज्ञेय कभी भी ज्ञानरूप नही होता और न उससे आत्मामे कुछ उत्कर्ष और अपकर्ष ही होता है। आत्माके उत्कर्ष और अपकर्षका कारण रागादिककी न्यूनता और वृद्धिता ही है। अतः जितना भी हो सके उतना प्रयास संसारमे इसकी ओर लक्ष्यकर होना ही सम्यग्दर्शन है।

शरीरकी कृशता समाधिमे उपयोगी नहीं। यह तो जघन्य दशा-वाले पुरुष हैं उन्हीके अर्थ उपदेश है जो काय कषाय सल्ले-

रचना समाधिमरणकी उपयोगिनी है। काय परपदार्थ है। इसकी पुष्टि अथवा कृशता आत्मकल्याणकी न साधिका है न बाधिका। यह माना कि बिना वज्रवृषभनाराचसंहननके मोक्ष व सप्तम नरक नहीं होता। तब इसका क्या यह अर्थ है कि वह संहनन उसका उत्पादक है? नहीं, किन्तु उस शरीरमे आत्मा सम्यग्दर्शनादिककी पूर्णता और सप्तम नरकके जानेकी योग्यता उत्पन्न करता है। इस लिये ही कार्यकारणभाव है, अविनाभाव नहीं। अत. आत्म-कल्याणके अर्थ हमे काय कृश नहीं करनी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि स्वेच्छाचारसे अनियमसे हम निज प्रवृत्ति कर लेवें। स्वेच्छाचारिताकी व्याप्ति तीव्र कषायसे है। सामान्य रीतिसे द्वेषकी रक्षा करना और क्या है? देहके पुद्गलपरमाणुओंकी एक विशेष अवस्था है। इसके द्वारा जो हम राग-द्वेषमय होते हैं वह इसमे नोकर्म है। नोकर्म प्रायः निमित्त कारण होते हैं और वह प्रायः निरन्तर ससारमें अपने अस्तित्वको लिये ही रहते हैं। कारण पाकर पर्यायान्तररूप हो जाते हैं। ऐसा भी नहीं कि जो नोकर्म हैं वह सबको समानरूपसे फलदाता हैं। जो नोकर्म मन्द-कषायसे एकको अल्प बन्धका कारण होता है वही नोकर्म तीव्र कषायसे अन्यको तीव्र बन्धका कारण नही होता।

हजारीबाग
ज्येष्ठ कृ० १२, सं० १९९५ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१२-२]

श्रीयुत महाशय छोटेलालाजी, दर्शनविशुद्धि

मैं तो आपको यही सम्मति देता हूँ जो इन परपदार्थोंके सम्बन्धसे अपनेको पृथक् करिए। यही श्रेयोमार्ग है। पर पदार्थके

सम्बन्धसे ही मूर्छाकी उत्पत्ति होती है। यद्यपि मूर्छाका परिणमन आत्मामे ही होता है। किन्तु उसमे निमित्त यह परपदार्थ ही है। इसीसे आचार्योंने उसका त्याग कराया है। परमार्थसे बन्धका कारण आप ही हैं, अतः इस विभाव परिणामसे अपनी रक्षा करिए। यही पुरुषार्थ है। उपवासादि करना कठिन नही, धनादिका दानमें लगा देना कठिन नही, परन्तु अन्तरंगसे कषायका त्याग कर देना सरल नहीं। दान देनेसे यदि अन्तरंगमें मानादिकी वांछा नहीं हुई तब तो समझो लोभ कषायकी मन्दता इस जीवके है। यदि मानकी अभिलाषासे दान दिया तब मेरी बुद्धिमे लोभकी मन्दता नही। विशेष क्या लिखू, क्योंकि अभी तक इन शत्रुओंके चक्रमे हूँ।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-३]

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द धर्म साधन करिए, क्योंकि आपको पुण्योदयसे साधन अच्छे हैं। किन्तु शासन करनेकी इच्छा हो तब अपनेहीको अपराधी समझिए और उसको शासन कर मुसिफ बननेकी चेष्टा करिए। परके ऊपर शासन करना कुछ आत्मकल्याणका साधक नहीं।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२–४]

श्रीमान् ब्रह्मचारी छोटेलालजी साहब, इच्छाकार

हम सानन्द हैं, आप सानन्द होंगे। भगतजीको इच्छाकार। आप स्वास्थ्य अच्छा होनेपर ही कहीं जाना। आपका निरोग होनेपर भी ईसरी जानेकी शीघ्रता करना अच्छा नहीं। अथवा आपकी इच्छा जो हो सो करना। पदार्थोंका परिणमन स्वाधीन है। किसीकी बलवत्ता वहाँ कार्यमें साधक नहीं हो सकती। हाँ, यह अवश्य है जो कार्य उपादान और निमित्त दोनों ही के सम्बन्धसे होता है। परन्तु उपादान कारण ही कार्यरूप परिणमता है। उपादानकी पूर्व पर्याय निवृत्तिपूर्वक उत्तर पर्याय होती है। गुणोंकी संख्यामें न्यूनाधिकता नहीं होती। इसीसे गुणोंको सदा सहवर्ती कहा है। पर्यायें क्रमवर्ती हैं। यही सिद्धान्त श्री कुन्दकुन्द महाराजका है। तथाहि—

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।
पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥
ण वि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण परिणामं जाण दोण्णं पि॥
एएण कारणेण कत्ता आदा सएण भावेण।
पोग्गलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं॥

जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल कर्मरूप परिणम जाते हैं और पुद्गलकर्मको निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणम जाता है। इसका अर्थ यह है कि पुद्गलका परिणमन पुद्गलमें होता है और जीवका परिणमन जीवमें होता है। पुद्गल-कर्म जीवमें गुणोत्पादक नहीं होता और न जीव पुद्गलमें

कोई गुणोत्पादक होता है। फिर भी जिस जीवके साथ पुद्गल-कर्मका सम्बन्ध है वही जीव रागादिकरूप हो जाता है तथा जीवके निमित्तको पाकर वे ही वर्गणाएँ ज्ञानावरणादि रूप हो जाती हैं जिनका जीवसे सम्बन्ध है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२–५]

श्रीयुत ब्रह्मचारी छोटेलालाजी, योग्य इच्छाकार

अनधिकार चेष्टा, प्रथम तो मेरे पत्र देनेका त्याग है। फिर आपका पत्र मेरे नाम आना तब उत्तर देना; क्योंकि मेरे नियममें अच्छे पुरुषको पत्र देना निषेध नहीं। यह चिदानन्दका दोष नहीं। उनकी पुस्तक मैंने बदल ली। उसमे एक पोस्टकार्ड आपका मिल गया। मेरी दृष्टि उसपर पड़ गई। उसके समाचार अवगत कर हर्ष विषाद दोनों हुए। हर्ष तो इस बातका हुआ जो आप सागर-बनारस रहेंगे। आपके समागमसे दोनों ही स्थानोंको लाभ पहुँच सकता है। विषाद इस बातका हुआ जो ईसरी न रहेंगे। क्या ईसरी आश्रम किसीका है जो आपको वह पृथक् कर सके? ईसरी आश्रम एक ट्रस्टके अधीन है, अतः इस भावको छोड़िए जो वहाँ रहना कठिन है। रहो, चाहे न रहो, यह आपकी इच्छा है। कोई व्यक्ति आपको नहीं हटा सकता। तथा आप तो ज्ञानी हैं। संसारमें गृहस्थी छोड़ देनेसे कषाय चली जावे; कोई नियम नहीं। अतः मनुष्योंकी प्रवृत्ति देख उपेक्षा करना। न तो राग करना न द्वेष करना। मुनिलिङ्ग और गृहिलिङ्ग दोनों ही कुछ मोक्षमार्ग नहीं। फिर यदि किसीकी

भी प्रवृत्ति अन्यथा हो तब आपको दुःखी होनेकी कौनसी बात है ? लिङ्गमसकार छोड़ो । 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' यही मार्ग है। अनादि-कालसे हमारी प्रवृत्ति इन पर पदार्थोंके ही विवेचनसे गई। अपने विवेचनसे तटस्थ रहे। फल उसका क्या हुआ सो शिरपर ही बीत रही है। अनुभवगम्य है। परसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। परमार्थसे विचारो तो परकी क्या समालोचना करोगे। जब परपदार्थका अंश भी ज्ञानमें नहीं आता तब क्या समालोचना करोगे। आत्मीय परिणामोंका, जो ज्ञानमें झलक रहे हैं, जो इच्छा हो सो करो। यह हमारी अनादिकालकी प्रवृत्ति हो रही है जिसका फल अनन्त संसार है। अतः आश्रमके अधिकारियोंका विकल्प छोड़ो। यदि वह साक्षात् कुछ कहें भी तब ऐसा निर्मल उत्तर दो जो उनको आपके सुन्दर भावोंका परिचय हो जावे तथा उन्हें आपके सन्तोषजनक उत्तरसे स्वयं अपने परिणामोंका परिचय मिल जावे जो हम स्वयं गल्तीपर हैं। जिसका हम स्वामित्व मान रहे हैं वह न हमारा है और न जिसने दान किया उसका है। तब किसका है ? किसीका नहीं; किन्तु जैसे अनन्त पदार्थ अपने-अपने चतुष्टयसे विद्यमान हैं वह भी उनमें एक है।

इस विषयमें बहुत लिखना था, परन्तु गर्मीके प्रकोपसे न लिख सका। श्री चिदानन्दजीको जो आपने लिखा—मेरा जो अभिप्राय है सो आपको आत्मीय जान लिखा। आप अन्य को न कहना सो प्रथम तो वह अभिप्राय उनको लिखा। वह भी आपका आत्मीय न था अन्य था, पत्रमें कैसे लिखा जाता और जो चिदानन्द व्यक्ति आपके आत्मीय होते तब यहाँ कैसे ? अतः सानन्दसे स्वाध्याय करिये और जब जो होवे उस कालमें ऐसा

ही तो होना था, जानकर सन्तोष करिए। आप हमको लिखोगे—यदि ऐसी व्यवस्था है तब तुम ही क्यो इस पर नही चलते हो ?' तब उसका उत्तर यह है जो हमारी मोहकी दुर्बलता दुर्बल बना रही है। तब हमे क्यो कहते हो, हमारी भी वही व्यवस्था जानो ? तुम हमसे कम उमर के हो। अतः इस पर्यायमे जो आपका मोह है, अल्पस्थिति का है तथा हमारी अपेक्षा आप नव्य हैं। उसका घात कर सकते हो।

मुरार छावनी ग्वालियर
ज्येष्ठ वदि ४, सं० २००४

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-६]

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपने लिखा सो ठीक। आपकी इच्छाके अनुरूप ही तो आपका पुरुषार्थ होगा। होगा क्या ? सो न आप कह सकते हैं और न मै कह सकता हूं। बनारसके लिये आपका प्रयत्न प्रशंसनीय है। हमसे न तो कुछ होता है और न होने की सम्भावना है, क्योंकि पुरुषार्थ शक्तिके अनुरूप होता है। हमारी शक्ति अब उतनी नहीं जो स्वोपकार कर सकें। हॉ, श्रद्धाके अनुरूप विश्वास है जो अन्तिम श्वांस तक कल्याणका मार्ग स्वाश्रित है। इससे विचलित नहीं होंगे। बाह्यमे कार्य कैसा ही हो, परन्तु यह अवश्य धारणा रहनी चाहिए जो इस अनादिसे आए हुए ससारमे, जिसमे हमारे जीवद्रव्यके अनन्त भव हो गये जो केवलगम्य हैं। वर्तमान भव हमारे ज्ञानगम्य भी है। इस भव तक न तो कोई हमारा मित्र हुआ और न शत्रु हुआ। इसका ज्ञान हम आपको कैसे हुआ सो इस पर्यायकी घटनाओ

से प्रत्यक्ष है। मेरी तो यह दृढ़ धारणा है और यह भी दृढ़ धारणा है जो मैंने न तो किसीका उपकार किया, न कर रहा हूं और न करूंगा। यह मैं अपने अभिप्राय की कथा कह रहा हूँ। यह सर्व कोई जानता है—कार्यकी उत्पत्ति निमित्त-उपादानसे होती है। फिर भी मै अपने श्रद्धानकी बात लिख रहा हूं। इसको देखना चाहिए—मैं जो कार्य कर रहा हूँ उसका मूल उद्देश्य क्या है? विशेष क्या लिखूं। यहॉ पर गर्म्मीका प्रकोप पूर्णरूपसे है। दिन-भर एक स्थानमें बैठा रहता हूँ। इसी तरहके अनाब-शनाब पत्रोंके लिखनेमें काल गमाया करता हूँ।

नोट—१. अबके यह निश्चय हो गया जो तृषा परीषह कैसी होती है और मुनि लोग इसपर कैसे विजयी होते होंगे इसका भी आभास मिल गया।

२. यह भी पता चल गया जो बाह्य समागम कितना भयंकर होता है। इसके सत्त्वमें परिणामोंको शान्त रखना विरले महापुरुषों का ही कार्य है।

३ यह भी पता चल गया जो गृहस्थके समागमोंसे क्या-क्या कार्य होते हैं?

४ यह भी पता चल गया जो व्रत लेकर निर्वाह करना कितना कठिन है?

५. यह बात सबसे कह देना—दूरके ढोल सुहावने होते हैं।

६. सागर स्थान जलवायुके कारण उत्तम है और मै यह भी कहता हूँ जो कोई त्यागी सागरमें स्थिर नहीं रहता। अन्यथा एक आदमी उसे स्थिर कर सकता है। नाम हमसे पूछो तो—

१—श्री सेठ भगवानदासजी बीड़ीवाले।

२—श्री सिंघई जी कुन्दनलालजी।

३—श्री वैशाखिया जी।

इसको आप पूंछो, आपने कैसे जाना ? तब आप उनसे स्वयं पूछ लो पर यह कह देना—वर्णीका विश्वास है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-७]

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका भगतजीके पास आया, वांचा। यद्यपि उस पर प्राइवेट लिखा था। उसको हमने सुनने की आकांक्षा की यह नीतिमार्गके प्रतिकूल हुआ। अस्तु, इसकी क्षमा देना। किन्तु आपकी उद्विगता का परामर्श करनेसे हमको तो यह अनुमान होता है जो आप लोगोकी दृष्टि अभी तक श्री भगवान परमगुरुके सिद्धान्तके अनुकूल नहीं। यदि होती तब क्या आपको इतनी दौड़-धूप करनी पड़ती ? नीतिकारने कहा है—

अपराधिनि चेत्क्रोधः क्रोधे क्रोधः कथं न हि।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि॥

इस गाथामें सामान्य आत्माकी अपेक्षाका वर्णन है। विशेष की अपेक्षा आस्रवादि सप्त तत्त्वोका वर्णन स्वयं स्वामीने कहा है—

जीवाजीवाधिकारमे जो निरूपण है उसमे जीवका वर्णन लक्षणकी अपेक्षा कहा है, पर्याय की अपेक्षा नही है।

अतएव श्रीअमृतचन्द्र सूरिने लिखा है—

वर्णाद्या वा रागादयो वा भिन्ना एवास्य पुंसः।

अर्थात् जैसे वर्णादिसे भिन्नप्रदेशी आत्मा है ऐसे इन

रागादिकोंसे भी भिन्नप्रदेशी आत्मा है। अतएव फिर भी स्वामीने बतलाया है—

> अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमिह स्फुटं।
> जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥

इस अधिकारमें श्री कुन्दकुन्द भगवानने जीवका निराबाध-स्वरूप बतलाया है। इसीका अज्ञानी मनुष्य अन्यथा अभिप्राय कल्पना कर विपरीत श्रद्धाके पात्र हो जाते हैं। उनका कहना है कि जैसे वर्णादिकसे भिन्नप्रदेशी आत्मा है वैसे ही रागादिकसे भी आत्मा भिन्नप्रदेशी है। रागादिक तो स्फटिकमणिकी लालिमाकी तरह परके ही हैं। ऐसा माननेसे शतशः जैनी बाह्या-चरणको दम्भ बतलाने लगे और आप स्वयं इससे गिरी श्रेणीमें भक्ष्याभक्ष्य निन्द्य भोग्यके विवेकसे रहित पशुवत् विषयोंमें प्रवृत्ति करने लग गए। तात्त्विक मर्म जाने बिना वही पतित दशा है। आत्माकी परिणति ज्ञानचेतना, कर्मफलचेतना तथा कर्मचेतना के भेदसे ३ प्रकारकी है। पहली तो उदयमें न आई। शुभपरिणाम को दम्भस्वरूप दिया तब अन्य शरण न होकर अशुभोपमल परिणामोंके ही कर्ता सप्रेम बन गए।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० मूलशंकरजी

श्रीमान् ब्र० मूलशङ्करजी राजकोट (सौराष्ट्र) के रहनेवाले हैं। इनके पिताका नाम कालीदास जी और माताका नाम उजमबाई था। दिगम्बर मार्गको मोक्षका साधक जान श्वेताम्बर परम्पराका त्याग कर इन्होंने दिगम्बर परम्परा अङ्गीकार की है। ब्रह्मचर्य दीक्षा इन्होने पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर जी महराजसे ली थी। उसका ये यथावत् पालन करते हैं।

ब्रह्मचर्य दीक्षाके बाद इन्होंने स्वाध्याय आदि द्वारा अपने ज्ञानमें पर्याप्त उन्नति की है। ये वक्ता भी अच्छे हैं। देशमें यत्र-तत्र चातुर्मास आदि करके जनतामें धर्मका प्रचार करना इनका एक मात्र यही कार्य है।

अध्यात्मरुचिवाले होनेसे श्री वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा है। बहुत काल तक ये उनके सानिध्यमें भी रहे हैं। जब बाहर रहते हैं तब पत्र व्यवहार द्वारा अपनी जिज्ञासाकी पूर्ति करते हैं और उसके माध्यमसे सम्पर्क बनाये रखते हैं। उत्तर स्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये उपलब्ध हुए कुछ पत्र यहां दिये जाते हैं।

[१३-१]

श्रीयुत बाबू मूलशङ्करजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जहां तक बने जिसके साथ धार्मिक स्नेह हो उसे परिग्रहसे रक्षित रखिये। कल्याणका मार्ग निर्ग्रन्थ ही है। इस मूर्च्छाने ही जिनधर्ममें नानाभेद कर दिये। इसका मूल कारण मूर्च्छा है। इसके सद्भावमें अहिंसाधर्मका विकाश नहीं होता। अतः जहां मूर्च्छा है वहीं परिग्रह है और जहां परिग्रह है वहां महाव्रतका अभाव है।

मनकी चञ्चलताका कारण केवल अनादि कषायकी वासना है और कुछ कारण नहीं। मनके जानेका दुःख नहीं, दुःख तो इष्टानिष्ट कल्पनाओंका है। वास्तवमें उपाय तो जो बन सके तो उदय आने पर हर्ष विषाद न हो। यदि हो भी जावे तो उत्तरकालमें वासना नहीं रहने दे, वहीं तक रहने दे।

जैसा मनुष्य लौकिक कार्योंमें मग्न होकर धर्मकी ओर चित्त नहीं लगाता। यदि इसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओंसे हम अन्तरङ्ग से चित्तवृत्ति हटाकर आभ्यन्तर दृष्टिको आत्माकी ओर लगा दें तो कल्याणका पथ आप ही आप मिल जावे। गरम जलको ठण्डा करनेका उपाय उसकी उष्णता दूर करना ही है। आप आकुलित मत हों। घर रहकर भी अन्तःकरण निर्मल हो सकता है। अपनी आत्मा पर भरोसा रखना ही मोक्षका प्रथम उपाय है। परके द्वारा न किसीका कल्याण हुआ, न होता है और न होगा। निमित्तका अर्थ तो यही है—मुखसे उपदेश देना परन्तु उसका मर्म तो स्वयं जानना होगा तथा उसे स्वयं करना होगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

तत्त्वकी मानवताका मुख्य प्रयोजन कलुषताका अभाव है। आप जहां तक बने पञ्चास्तिकाय तथा अष्टपाहुड, प्रवचनसार का अवकाश पाकर स्वाध्याय करना। अवश्य ही स्वीय श्रेयोमार्ग मे सफलीभूत होगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-३]

श्रीयुत महाशय मूलशङ्करजो. योग्य दर्शनविशुद्धि

शास्त्रके द्वारा पदार्थके स्वरूपका ज्ञान होता है। सामायिकादि क्रिया बाह्य हैं। अन्तरङ्गकी निर्मलताका कारण आत्मा स्वयं है, अन्य निमित्त कारण हैं। किसीके परिणाम किसीके द्वारा निर्मल हो ही जावें यह नियम नही। हॉ वह जीव पुरुषार्थ करे और काल-लब्धि आदि कारण सामग्रीका सद्भाव हो तब निर्मल परिणाम होनेमे बाधा भी नहीं। परन्तु इसीका निरन्तर ऊहापोह करे और उद्यम न करे तो कार्य सिद्ध होना दुर्लभ है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-४]

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

निर्दोष वक्ता तो वीतराग सर्वज्ञ हैं, अतः सहसा कोई कार्य

करना अच्छा नहीं। दिगम्बर मंदिरमें जाना परम हितकर है परन्तु प्रवचनमें भी जाना अच्छा है। मोहके उदयमें बड़ी बड़ी भूलें होती हैं। यह तो कुछ भूल नहीं। जबतक अपनी परिणति विशुद्ध-रूपा न होगी कल्याणका पथ अति दूर है। अतः जहां तक बने अपनी भूल देखो, परकी भूलसे हमें क्या लाभ। आप एक दृष्टिसे न देखिये, क्योंकि पदार्थ अनन्तधर्म्मात्मक है। गृहस्थ ही तो है अणुव्रती तो नहीं ऐसी भूलें देखोगे तब मेरी समझमें इस समय वक्ता मिलना दुर्लभ है। सामान्य बात न समझना। अच्छे अच्छे जो वक्ता हैं वे भी ऐसी ऐसी भूलोंसे लिप्त हैं। क्रोध लोभ मान तो प्रत्यक्ष हैं माया भी है। केवल इस समय कल्याणका मार्ग, जो मनुष्य सरल भावसे अपनी प्रवृत्ति करेगा, उसीका होगा। संसारकी समालोचना किस कामकी। अपनी समालोचना करो। वही बहुत है। उसीमें काल और शक्ति पूर्ण हो जावेगी।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३–५]

श्रीयुत मूलशङ्करजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप जानते हैं संसारमें सब प्राणियोंकी सुखमें इच्छा रहती है। रहो, इससे हमें क्या लाभ? हमें देखना है कि हमारी इच्छा किस ओर जाती है? जिस ओर जावे उसको लेकर विचार करनेकी आवश्यकता है। उसीके निर्णयसे हमारे सम्पूर्ण निर्णय अनायास हो जावेंगे। जब हमारी आत्मामें किसी विषयकी इच्छा अनायास हो जाती है उस समय हम अत्यन्त क्षुब्ध और दुःखी हो जाते हैं। यह क्यों? ऐसा इसलिये कि इच्छा एक वैकारिक या विकृत भाव है और वह उसके होते ही आत्मामें जो चारित्र नामकी शक्ति है

वह विकृत परिणमनको प्राप्त होती है। उस कालमें उसका जो वास्तविक स्वरूप है, तिरोहित रहता है। तब जैसे कामला रोग-वालेको शंख पीला प्रतीत होता है उसी प्रकार मिथ्यात्व सहकृत चारित्रोदयमे यह जीव शरीरादि पर द्रव्योंको स्वात्महितका कारण मानकर दुखी होता है।

वैशाख कृ० ६, सं० १९९६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-६]

योग्य दर्शनाविशुद्धि

मनुष्यजातिवाले ही एकसे ७ गुणस्थान तकका स्पर्शन कर सकते हैं। वस्त्रधर्मी व सवस्त्रधारी यह बात विद्वानोसे पूछो। करणानुयोगके साथ विना द्रव्यानुयोगके साथमे कोई बाधा नहीं। सब अनुयोगोके साथ हो यह अतिउत्तम है।

वैशाख सुदि १२, सं० २००१ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१३-७]

योग्य दर्शनाविशुद्धि

आप अपनेको यथार्थ तत्त्ववेत्ता समझते हैं तथा आपका यह भी अभिप्राय है कि जो मैं करता हूँ वह तथ्य है। अन्य कोई जो कुछ करता है, यथार्थ नही। संसारमे सर्वत्र मनुष्योंमे त्रुटि पाई जाती है। जो कोई व्रतादि धारण किये हैं वे कुछ न कुछ अंशमे सदोष हैं और जो मानादि कषाय कर व्रतका पालन करते हैं उनका

व्रत पालना चरणानुयोगके अनुसार शुद्ध होनेपर भी अन्तरंग मलीनताके कारण मोक्षमार्गमे साधक नहीं। मोक्षमार्गमें अन्तरंग सम्यग्दर्शन होना चाहिये। जिनके सम्यग्दर्शन है उनके वाह्यमें व्रत भी हो तब भी वह जीव देवगतिको छोड़कर अन्य गतिका वन्ध नहीं करता।

(सागर)
अषाढ़ कृ० ५, सं० २००१ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१३-८]

योग्य दर्शन विशुद्धि

आप सानन्द स्वाध्याय कीजिये। यही परम तप है। किसकी मान्यता है इसको छोड़िये। आत्मीय मान्यताका ही आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। आजतक हमारा जो ससारवास रहा उसका मूल कारण यही परसम्बन्ध है। जहां तक परामर्श किया यही सिद्धान्त पाया कि परको त्यागने की चेष्टा ससारी जीवोंका कार्य है। आत्मीय परिणमोको जो कलुषित प्रतीत होते हों न हों यह भावना करे। त्यागका अर्थ लोकमे विद्यमानका होता है। परन्तु जो वस्तु ही नहीं उसका त्याग कैसा? जो है उसका भी त्याग कैसा? अर्थात् धनादि वाह्य वस्तुका त्याग तो हो सकता है किन्तु जो रागादि भाव आत्मामें हो रहे हैं उनका त्याग कैसा। अभी हम जिस उत्तम कार्यको करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं उसमें अनुत्तीर्ण होते हैं इसका यही कारण है कि या तो हम इस योग्य नहीं या अभी हमने इस अर्थको नहीं समझा।

सागर
वैशाख कृ० १३ सं० २००३ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० मौजीलालजी

श्रीमान् ब्र० मौजीलालजी सागर जिलान्तर्गत विनैका ग्रामके रहनेवाले थे। पिताका नाम कुल्लेलालजी था। वयःप्राप्त होनेपर ये सागर आकर रहने लगे। वहीं पूज्य श्री वर्णीजी और सिं० बालचन्द्रजी अर्जीनवीसके सम्पर्कसे स्वाध्याय और चारित्रकी ओर रुचि उत्पन्न होनेपर इन्होंने ब्रह्मचर्य दीक्षा ली थी। इन्होंने जीवनके अन्त तक अपने चारित्र और परिणामोंकी सम्हाल की है। अन्यदा और खासकर समाधिमरणके समय पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये जो पत्र उपलब्ध हुए हैं वे यहां दिये जाते हैं।

[१४–१]

श्री ब्र० मौजीलाल जी, योग्य शिष्टाचार

सत्यदान तो लोभका त्याग है और उसको मैं चारित्रका अंश मानता हूँ। मूर्छाकी निवृत्ति ही चारित्र है। हमको द्रव्य-त्यागमें पुण्यबधकी ओर दृष्टि न देना चाहिये, किन्तु इस द्रव्यसे ममत्वनिवृत्तिद्वारा शुद्धोपयोगका बधक दान समझना चाहिये। वास्तविक तत्त्व ही निवृत्तिरूप है। जहां उभय पदार्थका बन्ध है वही ससार है। और जहाँ दोनो वस्तुऐं स्वकीय स्वकीय गुणपर्यायोमें

परिणमन करती हैं वही निवृत्ति है। यही सिद्धांत है। कहा भी है—

सिद्धांतोऽयमुदात्तचित्तचरितर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां।
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमज्योतिस्सदैवास्म्यहम्॥
एते मे तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणाः।
तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥

अर्थ—यह सिद्धांत उदारचित्त और उदारचरित्रवाले मोक्षार्थियोको सेवन करना चाहिये कि मैं एक ही शुद्ध (कर्मरहित) चैतन्य स्वरूप परम ज्योतिवाला सदैव हूं। तथा ये मेरे भिन्नलक्षणवाले नाना भाव प्रगट होते हैं, वे मैं नहीं हूँ; क्योंकि वे संपूर्ण मेरे भाव परद्रव्य हैं।

इस श्लोकका भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदयमें आते ही संसारका आताप कहां जाता है पता नहीं लगता। आप जहा तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्थाकी ओर दृष्टि न देकर निजात्माकी ओर लक्ष्य देकर उसीके स्वास्थ्यकी औषधिका प्रयत्न करना। शरीर परद्रव्य है, उसकी कोई भी अवस्था हो उसका ज्ञाता दृष्टा ही रहना। सो ही समयसारमें कहा है।

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो॥

भावार्थ—यह परद्रव्य मेरा है ऐसा ज्ञानी पंडित नहीं कह सकता. क्योंकि ज्ञानी जीव तो आत्मा को ही स्वकीय परिग्रह मानता या समझता है।

यद्यपि विजातीय दो द्रव्योंसे मनुष्यपर्यायकी उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय दो द्रव्य मिलकर सुधाहरिद्रावत् एकरूप नहीं

परिणमे हैं। वहां तो वर्णगुण दोनोंका एकरूप परिणमना कोई आपत्तिजनक नहीं है किन्तु यहां पर एक चेतन और अन्य अचेतन द्रव्य हैं। इनका एकरूप परिणमना न्यायप्रतिकूल है। पुद्गलके निमित्तको प्राप्त होकर आत्मा रागादिकरूप परिणम जाता है। फिर भी रागादिक भाव औदयिक है अतः बन्धजनक हैं, आत्माको दुःख जनक हैं, अतः हेय हैं। परन्तु शरीरका परिणमन आत्मासे भिन्न है। अतः न वह हेय और न वह उपादेय है। इस ही को समयसारमे श्री महर्षि कुन्दकुन्दाचार्यने निर्जराधिकारमे लिखा है—

छिज्जदु भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि ण हु परिग्गहो मज्झ॥

अर्थ—यह शरीर छिद जावो, अथवा भिद जावो, अथवा निर्जराको प्राप्त हो जावो, अथवा नाश हो जावो, जैसे तैसे हो जावो तो भी यह मेरा परिग्रह नहीं है।

इसीसे सम्यग्दृष्टिके परद्रव्यके नानाप्रकारके परिणमन होते हुए भी हर्ष विषाद नहीं होता। अतः आपको भी इस समय शरीरकी क्षीण अवस्था होते हुए कोई भी विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है

चरणानुयोगमे जो परद्रव्यों को शुभाशुभमे निमित्तत्वकी अपेक्षा हेयोपादेयकी व्यवस्था की है वह अल्प प्रज्ञके अर्थ है। आप तो विज्ञ हैं। अध्यवसान को ही बन्धका जनक समझ इसीके त्यागकी भावना करना और निरन्तर

"एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो"

अर्थात् ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है। शेष जो बाह्य पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं ऐसी भावना रखो।

मरण क्या वस्तु है ? आयुके निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्यायका वियोग ही मरण है तथा आयुके सद्भावमें पर्यायका सम्बन्ध सो ही जीवन है। अब देखिये जैसे जिस मंदिरमें हम निवास करते हैं उसके सद्भाव असद्भावमें हमको किसी प्रकारका हानि-लाभ नहीं तब क्यों हर्ष विषाद कर अपने पवित्र भावोंको कलुषित किया जावे। जैसे कि कहा है—

> प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
> ज्ञानं सत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ॥
> अस्यातो मरणं न किंचिद् भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो ।
> निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥

अर्थ—प्राणोंके नाशको मरण कहते हैं और प्राण इस आत्माका ज्ञान है। वह ज्ञान सद्रूप स्वयं ही नित्य होनेके कारण कभी नहीं नष्ट होता है। अतः इस आत्माका कुछ भी मरण नहीं है तो फिर ज्ञानीको मरणका भय कहांसे हो सकता है। वह ज्ञानी स्वयं निःशङ्क होकर निरन्तर स्वाभाविक ज्ञान को सदा प्राप्त करता है।

इस प्रकार आप सानन्द ऐसे मरणका प्रयास करना जो परम्परा मातास्तनपानसे बच जावो। इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुवा है, अवश्य इससे लाभ लेना।

आत्मा ही कल्याणका मन्दिर है अतः परपदार्थोंकी किंचित् मात्र भी अपेक्षा न करें। अब पुस्तकद्वारा ज्ञानाभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं। अब तो पर्यायमें घोर परिश्रम कर स्वरूपके अर्थ मोक्षमार्गका अभ्यास करना है। अब उसी ज्ञानशास्त्रको रागद्वेषशत्रुओंके ऊपर निपात करनेकी आवश्यकता है। यह कार्य न तो उपदेष्टाका है और न समाधिमरणमें सहायक पंडितोंका

है। अब तो अन्य कथाओंके श्रवण करनेमे समय को न देकर उस शत्रुसेनाके पराजय करनेमे सावधान होकर यत्न पर हो जावो।

यद्यपि निमित्त बली तर्कद्वारा बहुतसी आपत्ति इस विषयमें ला सकते है फिर भी कार्य करना अन्तमे तो आपहीका कर्तव्य होगा। अत. जब तक आपकी चेतना सावधान है निरंतर स्वात्म-स्वरूपके चितवनमे लगादो।

श्री परमेष्ठीका भी स्मरण करो किन्तु ज्ञायक की ओर ही लक्ष्य रखना, क्योंकि मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ, ज्ञेय भिन्न है। उसमें इष्टानिष्ट विकल्प न हो यही पुरुषार्थ करना और अन्तरंगमे मूर्छा न करना तथा रागादिक भावोको तथा उसके वक्ताओंको दूर ही से त्यागना। मुझे आनन्द इस बात का है कि आप निःशल्य हैं। यही आपके कल्याणकी परमौषधि है

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१४–२]

महाशय, योग्य शिष्टाचार

आपके शरीरकी अवस्था प्रतिदिन क्षीण हो रही है। इसका ह्रास होना स्वाभाविक है। इसके ह्रास और वृद्धिसे हमारा कोई घात नही, क्योंकि आपने निरंतर ज्ञानाभ्यास किया है अतः आप इसे स्वयं जानते हैं। अथवा मान भी लो शरीरके शैथिल्यसे तदवयवभूत इन्द्रियादिक भी शिथिल हो जाती है तथा द्रव्ये-न्द्रियके विकृत भावसे भावेन्द्रिय स्वकीय कार्य करनेमे समर्थ नही होती है, किन्तु मोहनीयउपशमजन्य सम्यक्त्वकी इसमे क्या

विराधना हुई। मनुष्य शयन करता है उस काल जाग्रत अवस्थाके सदृश ज्ञान नहीं रहता किन्तु जो सम्यग्दर्शन गुण संसारका अन्तक है उसका आंशिक भी घात नहीं होता। अतएव अपर्याप्त अवस्थामें भी सम्यग्दर्शन माना है। जहां केवल तैजस कार्मण-शरीर हैं और उत्तरकालीन शरीरकी पूर्णता नहीं। तथा आहारादि वर्गणाके अभावमे भी सम्यग्दर्शनका सद्भाव रहता है। अत. आप इस बातकी रंचमात्र आकुलता न करें कि हमारा शरीर चीण हो रहा है, क्योंकि शरीर भी पर द्रव्य है। उसके सम्बन्धसे जो कोई कार्य होनेवाला है वह हो अथवा न हो परन्तु जो वस्तु आत्मा ही से समन्वित है उसकी क्षति करनेवाला कोई नहीं। उसकी रक्षा है तो संसार तट समीप ही है। विशेष बात यह है कि चरणानुयोगकी पद्धतिसे समाधिके अर्थ बाह्य संयोग अच्छे होना विधेय है किन्तु परमार्थ दृष्टिसे निज प्रबलतम श्रद्धान ही कार्यकर है। आप जानते हैं कि कितने ही प्रबल ज्ञानियोंका समागम रहे किन्तु समाधिकर्ताको उनके उपदेश श्रवणकर विचार तो स्वयंको करना पड़ेगा। मैं एक हूँ. चैतन्य हूँ, रागादिक शून्य हूँ. यह जो सामग्री देख रहा हूँ परजन्य है, हेय है, उपादेय निज ही है, परमात्माके गुणगानसे परमात्माद्वारा परमात्मा पदकी प्राप्ति नहीं किन्तु परमात्माद्वारा निर्दिष्ट पथपर चलनेसे ही उस पदका लाभ निश्चित है। अतः सब प्रकारके झंझटोंको छोड़कर भाई साहब! अब तो केवल वीतराग निर्दिष्ट पथपर ही आभ्यंतर परिणामसे आरूढ़ हो जाओ और बाह्य त्यागकी वहीं तक मर्यादा है जहां तक निज भावमें बाधा न पहुँचे। अपने परिणामोंके परिणमनको देखकर ही त्याग करना, क्योंकि जैन-सिद्धांतमें सत्य पथ मूर्छा त्यागवालेको ही होता है, अत. जो जन्म-भर मोक्षमार्गका अध्ययन किया उसके फलका समय है

इसे सावधानतया उपयोगमें लाना। यदि कोई महानुभाव अन्तमें दिगम्बर पदकी सम्मति देवें तब अपनी अभ्यंतर विचारधारासे कार्य लेना। वास्तवमे अन्तरंग बुद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पदके पात्र बनना। इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये अन्यथा अच्छी तरहसे यह कार्य सम्पन्न करते। हीन-शक्ति शरीरकी दुर्बलता है। आभ्यंतर श्रद्धामें दुर्बलता न हो। अतः निरन्तर यही भावना रखना—

एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

अर्थ—एक मेरी शास्वत आत्मा ज्ञान-दर्शनलक्षणमयी है शेष जो बाहिरी भाव हैं वे मेरे नहीं हैं, सर्व संयोगी भाव है।

अतः जहां तक बने स्वयं आप समाधान पूर्वक अन्यको समाधिका उपदेश करना, समाधिस्थ आत्मा अनन्त शक्तिशाली है। तब यह कौन सा विशिष्ट कार्य है। वह तो उन शत्रुओंको चूर्ण कर देता है जो अनन्त संसारके कारण है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१४–३]

महाशय, योग्य शिष्टाचार

इस संसार समुद्रमे गोते खानेवाले जीवों को केवल जिनागम ही नौका है। उसका जिन भव्य प्राणियोंने आश्रय लिया है वे अवश्य एक दिन पार होंगे। आपने लिखा कि हम मोक्षमार्ग प्रकाश की दो प्रति भेजते हैं सो स्वीकार करना। भला ऐसा कौन

होगा जो इसे स्वीकार न करे। कोई तीव्रकषायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनंगीकार करे तो करे परंतु हम तो शतशः धन्यवाद देते हुये आपकी भेंट को स्वीकार करते हैं। परन्तु क्या करें निरंतर इसी चिन्तामे रहते हैं कि कब ऐसा शुभ समय आवे जो वास्तवमें हम इसके पात्र हों। अभी हम इसके पात्र नहीं हुये, अन्यथा तुच्छ सी तुच्छ बातोंमें नाना कल्पनायें करते हुये दुखी न होते। अब भाई साहब! जहां तक बने हमारा और आपका मुख्य कर्त्तव्य रागादिकके दूर करनेका ही निरतर रहना चाहिये, क्योंकि आगमज्ञान और श्रद्धासे बिना सयतत्वभावके मोक्षमार्गकी सिद्धि नहीं। अतः सब प्रयत्नका यही सार होना चाहिये जो रागादिक भावोंका अस्तित्व आत्मा मे न रहे। ज्ञान वस्तुका परिचय करा देता है अर्थात् अज्ञाननिवृत्ति ज्ञानका फल है। किन्तु ज्ञानका फल उपेक्षा नहीं, उपेक्षाफल चारित्रका है। ज्ञानमे आरोपसे वह फल कहा जाता है। जन्म भर मोक्षमार्गविषयक ज्ञान सपादन किया अब एकबार उपयोगमे लाकर उसे आस्वाद लो। आज कल चरणानुयोगका अभिप्राय लोगोंने परवस्तुके त्याग और ग्रहणमें ही समझ रक्खा है सो नहीं। चरणानुयोगका मुख्य प्रयोजन तो स्वकीय रागादिके मेटनेका है परंतु वह पर वस्तुके संबंधसे होते हैं अर्थात् पर वस्तु उसका नोकर्म होती है अत. उसको त्याग करते हैं। मेरा उपयोग अब इन बाह्य वस्तुओंके संबधसे भयभीत रहता है। मैं तो किसीके समागमकी अभिलाषा नहीं करता हूं। आपको भी सम्मति देता हूं कि सबसे ममत्व हटानेकी चेष्टा करो। यही पार होनेकी नौका है। जब परमे ममत्व भाव घटेगा तब स्वयमेव निराश्रय अहबुद्धि घट जावेगी, क्योंकि ममत्व और अहकारका अविनाभावी संबध है। एकके बिना अन्य नहीं रहता। बाईजीके बाद मैंने देखा कि अब तो स्वतंत्र हूं। दानमें सुख होता

होगा इसे करके देखूं। ६०००) रुपया मेरे पास था। सर्व त्याग कर दिया, परन्तु कुछ भी शांतिका अश न पाया। उपवासादिक करके शांति न मिली। परकी निदा और आत्मप्रशंसासे भी आनंदका अकुर न उगा। भोजनादिकी प्रक्रियासे भी लेश शातिको न पाया। अतः यही निश्चय किया कि रागादिक गये विना शांतिकी उद्भूति नहीं, अतः सर्व व्यापार उसीके निवारणमे लगा देना ही शांतिका उपाय है। वाग्जालके लिखनेसे कुछ भी सार नही।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१४-४]

महाशय, योग्य शिष्टाचार

मैं यदि अन्तरङ्गसे विचार करता हूँ तो जैसा आप लिखते हैं मैं उसका पात्र नहीं, क्योंकि पात्रताकी नियामक कुशलताका अभाव है। वह अभी कोसो दूर है। हां, यह अवश्य है यदि योग्य प्रयास किया जावेगा तब दुर्लभ भी नही। वक्तृत्वादि गुण तो आनुसगिक है। श्रेयोमार्गकी सन्निकटता जहां जहां होती है वह वस्तु पूज्य है, अतः हम और आपको बाह्य वस्तुजालमे मूर्छाकी कृशताकर आत्मतत्त्वको उत्कर्ष बनाना चाहिये। ग्रन्थाभ्यासका प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक अवसान नहीं होता। साथहीमें परपदार्थोंसे उपेक्षा होनी चाहिये। आगमज्ञानकी प्राप्ति और है किन्तु उसकी उपयोगिताका फल और ही है। मिश्रीकी प्राप्ति और स्वादुतामें महान् अन्तर है। यदि स्वादका अनुभव न हुआ तब मिश्री पदार्थका मिलना केवल अन्धेकी लालटेनके सदृश है, अतः अब यावान् पुरुषार्थ है वह इसीमे कटिबद्ध होकर लगा देना ही

श्रेयस्कर है जो आगमज्ञानके साथ साथ उपेक्षारूप स्वादका लाभ हो जावे। आप जानते ही हैं—मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध है परन्तु जो अर्जित कर्म हैं उनका फल तो मुझे ही चखना पड़ेगा, अतः कुछ भी विषाद नही।

विषाद इस बातका है—जो वास्तविक आत्मतत्त्वका घातक है उसकी उपक्षीणता नहीं होती। उसके अर्थ निरतर प्रयास है। बाह्य पदार्थका छोड़ना कोई कठिन नहीं। किन्तु यह नियम नहीं, क्योंकि अध्यवसानके कारण छूटकर भी अध्यवसानकी उत्पत्ति अन्तस्तल वासनासे होती है। उस वासनाके विरुद्ध शस्त्र चलाकर उसका निपात करना। यद्यपि उपाय निर्दिष्ट किया है परन्तु फिर भी वह क्या है केवल शब्दोंकी सुन्दरताको छोड़कर गम्य नहीं। दृष्टांत तो स्पष्ट है—अग्निजन्य उष्णता जो जलमें है उसकी भिन्नता तो दृष्टिविषय है। यहां तो क्रोधसे जो क्षमाकी प्रादुर्भूति है वह यावत् क्रोध न जावे तब तक कैसे व्यक्त है। ऊपरसे क्रोध न करना क्षमाका साधक नहीं। आशयसे वह न रहे यही तो कठिन बात है। रहा उपायसे तत्त्वज्ञान सो तो हम आप सर्व जानते ही हैं किन्तु फिर भी कुछ गूढ़ रहस्य है जो महानुभावोंके समागमकी अपेक्षा रखता है। यदि वह न मिले तब आत्मा ही आत्मा है, उसकी सेवा करना ही उत्तम है। उसकी सेवा क्या है—"ज्ञाता दृष्टा" और जो कुछ अतिरिक्त है वह विकृत जानना।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

श्री धन्यकुमारजी

श्रीमान् बाबू धन्यकुमारजी पहले जेलर थे। वहांसे निवृत्त होनेके बाद धर्मसाधन करते हुए ये अपनी पत्नीके साथ ईसरी आकर रहने लगे। वहीं इनका समाधिपूर्वक पिछले वर्ष स्वर्गवास हुआ है। ये प्रकृतिके भद्र और धार्मिक रुचिके व्यक्ति थे। पूज्य वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा थी। यहां पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र दिये जाते हैं।

[१५–१]

श्रीयुत महाशय धन्यकुमारचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

मैंने आपके पत्रको बहुत उपादेय समझा और आपको सहर्ष धन्यवाद देता हूं जो आपने यथार्थ-घातक त्रुटि मेरे समक्ष रख दी। आपके सहवाससे मुझे तो लाभ ही है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

वैशाख सु० १५ सं० १९९७ }

[१५–२]

श्रीयुत धन्यकुमारजी, दर्शनविशुद्धि

आप जानते हे कि जब तक यह जीव बाह्य पदार्थोंके द्वारा

अपनी महत्ता समझ रहा है, उससे जो न हो, थोड़ा है। धर्मकी रक्षा करनेवाले रत्नत्रयधारी पवित्र आत्मा होते हैं। उन्हींके वाक्य आगमरूप होकर इतर पुरुषोंको धर्मलाभ करानेमें निमित्त होते हैं। धन आदि जो वाह्य जड़ पदार्थ हैं उन्हे अपना मानना अपनेको जड़ बनानेकी चेष्टा है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ज्ञानी जीवका अनादर हो जावे तो इसमें आश्चर्य क्या है। परन्तु ज्ञानी वही है जो इन उपद्रवोंसे चलायमान न हो। स्यालिनीने श्रीसुकुमाल स्वामीका उदर विदारण करके अपने क्रोधकी पराकाष्ठा-का परिचय दिया, किन्तु सुकुमाल स्वामी उस भयङ्कर उपसर्गसे विचलित न होकर उपशमश्रेणी द्वारा सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके पात्र हुए। अतः मैं उसीको सम्यग्ज्ञानी मानता हूं जिसकी श्रद्धामें मान-अपमानसे कोई हर्ष-विषाद नही होता।

आत्मकल्याणके लिए अधिक समयकी आवश्यकता नहीं, किन्तु निर्मल अभिप्रायकी महती आवश्यकता है। गृहस्थ-अवस्थामें नाना प्रकारके उपद्रवोंका सद्भाव होनेपर भी निर्मल अवस्थाका लाभ अशक्य या असम्भव नहीं। वासना ही संसार और मोक्षका जननी है। मेरा स्वास्थ्य तीन माहके मलेरिया ज्वरसे दुर्बल हो गया है। इससे मैं वाह्य विशेष कार्य करनेमें असमर्थ हूँ। समय पाकर आपके पत्रका उत्तर दूंगा।

ईसरी
श्रावण वदि १२, सं० १९९७ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-३]

योग्य इच्छाकार

हमारा विचार राजगृही जानेका निश्चित है। दीपमालिका

बाद जावेंगे। आप कब तक आवेंगे। यह मान ही हमारे अन्तस्तत्त्वका बाधक है। जैसे हमारे राग-द्वेष जाते है, परन्तु फिर आते हैं। यही तो विपत्तिमूलक वार्ता है। घर छोड़ा, जगत घर बना लिया। घरमे तो परिमित कुटुम्ब होता है। यहाॅ तो उसकी इयत्ता नही। यही ममता तो संसार की माता है।

ससारमे मनुष्य बहुत कुछ सुख चाहते हैं। परन्तु जिन कारणोंसे सुख होगा उनका स्पर्श भी नहीं करते। यही कारण है जो आजन्म उस नित्य स्वाधीन आत्मोत्थ सुखसे वञ्चित रहता है। केवल मोदककी कथा कर मधुरता का स्वाद लेना चाहता है जो सर्व ही अलीक है। श्रीयुत हरनारायण जी को कहना—अब तो चरम वय है। चरम पुरुषार्थ करनेकी घड़ी है।

कार्तिक कृ० ७, सं० १९९७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५--४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

मै वहाॅसे एक दम चला आया। यह भी कर्मज भाव है। मेरा आभ्यन्तर किसीसे विरोध नहीं। यदि अज्ञान व प्रमादवश हुआ भी हो तब उसका पश्चाताप है। परन्तु अब ६ मासके लिये अकेले रहना है, किसीके साथमे नहीं रहना। मेरे सर्वसे उत्कृष्ट बाबाजी हैं। उनके साथमे भी न रहना मैने तय कर दिया। कोई भी चेष्टा मेरे अब कोई करेगा, विफल होगी। आश्रममे नहीं रहूॅगा, क्योंकि वहाॅ का रहना ही लोकोको दु:ख का बीज हुआ। ईसरी रहनेका निषेध नहीं। इस ससारवनमे हमने अनन्त दु:ख पाये। दु:खका कारण मूल हमारा ही दोप है। हम पर को

अपराधी मानते हैं। इसीसे दुःखी होते हैं। हे प्रभो ! कब सुमति का उदय आवे और इन मिथ्या तर्कोंसे पिण्ड छूटे।

जेष्ठ कृ० १, सं० १९९८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

....जहाँ उपयोगकी निर्मलता हो, वहीं रहना। उपयोग निर्मलता के अर्थ ही वाह्य प्रयास है। संसारमें शान्तिका कारण यही है। इसकी मलीनता ही संसारकी जननी है, अतः उसीकी निर्मूलता करना। यद्यपि आपके रहनेसे हमको तो लाभ ही है। तथापि जहां आपको स्वय लाभ हो और आपके द्वारा अन्य व्यक्तियोंको लाभ हो वहाँ पर रहना और अच्छा है। मृग कहीं जावे स्थानमें सुगन्ध नहीं, सुगन्धकी वस्तु पासमे है। परन्तु खोजता अन्यत्र ही है। यही भूल है। इसे जान लेना ही सम्यग्ज्ञान है।

ईसरी
मार्गशीर्ष कृ० ६, सं० १९९८ } आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

....सानन्द गया पहुँचे। परन्तु फिर मलेरिया सामग्री सहित आया। सानन्द वही रहता है जो किसीके चक्रमें नहीं आता। हम सानन्दकी ऊपरी वातें करते हैं। सानन्द क्या है इससे विमूढ हैं। कला जानना और वात है, उसका रसिक होना और

बात है। गाना सुनकर मूर्ख लोक भी सुख मानता है, परन्तु अनुभव मृगपशुको ही होता है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... 'शान्तिसे जीवन बिताना यह कहना और बात है, शान्तिसे काल बिताना और बात है। उपदेश देना लिखना यह कार्य बाह्य बात है। अस्तु जो हो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-८]

योग्य दर्शनविशुद्धि

.... कर्मकी प्रबलताको समभावसे सहना ही हमने इस समय उचित समझा है। अन्यथा इस रूप प्रवृत्ति न होती। आप लोग नाना कल्पना करते होंगे। ये सर्व अनात्मीय हैं। शान्तिके कारण इन सबका त्याग ही है।...हम अब गयासे आगे नहीं जा सके। पैरके अगूठामे दर्द हो गया। अब शान्त है। यद्यपि हमारा विचार गर्मीमे प्रायः शीत प्रदेशमे रहनेका रहता है। परन्तु उदयने कहा अभी जो हमारा कर्जा है, अदा करो। हमने भी देना उचित समझा, क्योंकि ऋण चुकाना ही धर्म है। अब सर्व तरहसे शान्ति है। अन्तरंगकी शान्ति पुरुषार्थ अधीन है। जब सुअवसर आवेगा, स्वयमेव कार्य बन जावेगा।

चैत सुदी १४, सं० १९९९ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... अब कुछ कमजोरी हो गई। वह निवृत्त होने पर राजगृही जाऊँगा। जब भी अन्यत्र जानेकी चेष्टा करता हूँ यही सर्व आपत्ति आ जाती है। भीतरसे देखा जावे तो अपनी आत्मा मे ही सर्व दुखकी जड़ है। वह जावे, काम बने। हमने केवल परका ही उपकारका क्षेत्र बना रक्खा है। मैं तो उसे मनुष्य ही नहीं मानता जो स्वोपकारसे वञ्चित है।

गया
अषाढ़ वदी १३, सं० १६६६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

......यहाँ से द्रोणगिरि ८९ मील है। अभी तक तो अच्छा हूँ। कलकी भगवान जानें।...वनारसके वाद मैं तो एक वार भोजन करने लगा। पानी भी दूसरी वार नहीं लेता। रुपया पैसा सर्व छोड़ दिया। केवल १ रजाई, २ धोती, २ चादरा, १ दरी, १ विछौना, २ तौलिया।

देवेन्द्रनगर
फा० व० ७, सं० २००० } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-११]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... मेरी प्रकृति परमार्थ मार्गकी ओर है। परन्तु वास्तवमे

परीषह सहनका बल नहीं। फिर भी अब जो कुछ नियम लिया है, पालन करूँगा। मनुष्य जन्म दुर्लभ है। परन्तु कायाकी रक्षा करना इससे भी कठिन है। इसका जो घात करते हैं वह अनन्त संसारके पात्र होते है। हमारा पूर्ण विचार विहार भूमिमे ही अन्तिम आयु बितानेका है।

बड़ा मलहरा
फा० सुदि ६, सं० २००० } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

······आप लोगोंका धर्म साधन शान्तिपूर्वक होता होगा, क्योंकि स्थान पवित्र है।···यद्यपि मूल कारण तो भावमें है। फिर भी निमित्त कारण भी बाह्यमे होना चाहिये।

आश्विन कृ० २, सं० २००१ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-१३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

·······आप सानन्द जीवन बिता रहे हैं यह आपके पुण्य परिणामों का फल है। मुझे इसका हर्ष है जो आपका जीवन धर्म ध्यानमे सफल हो रहा है।

ज्येष्ठ सुदि २, सं० २००३ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

··· ··आपका धर्मसाधन भी योग्य रीतिसे होता होगा।

यों तो संसार है। फिर भी आपसे विवेकी जन इसकी वायुसे सुरक्षित हैं। मैं तो हतभाग्यकी तरह इन गृहस्थोंमें आकर फँस गया। इसमें इनका दोष नहीं। जो जालमें फँसता है. लोभ से ही फँसता है। मैं व्यर्थके अभिमानमें फँस गय। मैंने इस देशको निज माना। इसीके वशीभूत होकर फँस गया। अब अंतरगसे विचार है कि वर्षा बाद फिर वहाँ आनेका प्रयत्न करूं। परसाल आता था परन्तु विहारके झगड़ेने रोक दिया।

सागर
वैसाख सुदि ४, सं० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५—१५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

... आपने जो लिखा अक्षरशः सत्य है। मनुष्य वही है जो पहले आत्महित करे। परहित तो आनुषङ्गिक है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है जो आज तक किसीके द्वारा परहित होने का प्रयत्न नहीं हुआ। निमित्त कारण की मुख्यतासे ऐसा कथन किया जाता है। मैं किसीके द्वारा यहां नही फसा। अपने ही दुर्वलताभावसे फंस गया। और मैं क्या ससारमात्र अपनी दुर्वलतासे ससार की यातनाओं को सहता है। मेरा अन्तरग विचार है जो अन्तिम आयु श्री गिरिराजजीमें ही पूर्ण करूं। अपवाद और उत्सर्गमें मैत्रीभाव होना चाहिए। यही मार्ग है और इसका अनुसरण करना ही श्रेयस्कर है। परन्तु लौकिक अपवादकी रक्षा भी करनी चाहिए। यह भी हमारी दुर्वलता है, अन्यथा इसकी परवा न करते।

आपका शुभचितक
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० मंगलसेन जी

श्रीमान् ब्र० मंगलसेन जी का जन्म कार्तिक कृष्णा १३ वि० सं० १६४७ को मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत मुवारकपुर ग्राममें हुआ था। पिताका नाम लाला भिक्खीमल जी और माताका नाम श्री मुनियादेवी था। जाति अग्रवाल है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मेट्रिक तक हुई है। अपने व्रती जीवनमें इन्होंने अपनी धार्मिक योग्यता भी बढ़ाई है।

विवाह होनेपर भी ये गृहप्रपञ्चमें अधिक दिन तक रत न रह सके और गार्हस्थिक जीवनसे उदास रहने लगे। फलस्वरूप इन्होंने १६८१ के माघमें सप्तम प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर लिए। दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज स्वय है। अपने त्यागी जीवनमें इन्होंने वेदी प्रतिष्ठा आदि अनेक कार्य कराये हैं। ग्राम-सुधार योजनामें रुचि होनेसे कुछ समय इनका इस कार्यमें भी व्यतीत हुआ है। ये बचपनमें भजन गायनके बड़े रुचिया थे, इसलिए इनके द्वारा भी इन्होंने समाजकी सेवा की है।

पूज्य वर्णी जी महाराज से इनका पुराना सम्बन्ध है। फल-स्वरूप ये बहुत काल तक उनके सम्पर्कमें रहे हैं और साक्षात् सम्पर्क न रहने पर पत्र व्यवहार द्वारा उसकी पूर्ति करते रहते हैं। यहां पूज्य वर्णीजीने इन्हें जो पत्र लिखे वे दिये जाते हैं।

[१६–१]

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जो आपकी आजीविका है उसे सहसा न मिटाओ। कल्याणका मार्ग आत्मामें है। केवल परावलम्बी होकर कल्याण चाहनेसे कल्याण नहीं होता। आपकी इच्छा सो करना। स्वाध्याय करो। वही कल्याणका मार्ग है। व्यर्थ मत भटको। मैं बाबाजीकी आज्ञानुसार रहूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणका मार्ग एकतामें है। अनेकताहीने तो संसार बना रखा है। यदि हम अपना हित चाहे तो परसे ममत्व मिटावें, न कि जोड़ें। हमको तो अन्तरङ्गसे यहाँ आनेसे विशेष लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत कई अंशमे हानि हुई। मैं उस समागमको चाहता हूँ जो परकी आशा न करे। बाबाजी मेरे मित्र तथा पूज्य हैं। जैसी उनकी आज्ञा होगी वैसा ही करूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणपथ कल्याणमें है। हम अन्यमे देखते हैं। हे भगवन् आत्मन्! अब तो इस पराधीनबन्धनके जालसे पृथक् हो। इन

परद्रव्योंका आश्रय छोड़। गाथा ४०८, ४०९ समयसारमें लिङ्ग छोड़नेका यह आशय है जो देहाश्रित लिङ्गसे ममत्व छोड़ना। अनादिसे परके आश्रय ही तो रहे। इसीका नाम बन्ध है। मोक्ष नाम तो परसे भिन्न होनेका है। कब ऐसा दिन आवे जो इन परवस्तुओंसे ममत्व छूटे। निर्मल आश्रय ही मोक्षमार्ग है। क्रिया तो परद्रव्याश्रित त्यागनी ही पड़ेगी। हमने १५ दिन मौन रखा। आगे एक दिन मौन और एक दिन बोलनेका विचार है। जितने झंझटसे बचें उतने ही कल्याणके पास जावेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

समताभाव ही मोक्षाभिलाषी जीवोंका मुख्य कर्त्तव्य है और सब शिष्टाचार है। उपयोग लगानेकी आशासे सर्वत्र जाइये; परन्तु अन्तिम बात यही है जो चित्तवृत्तिको शान्त करनेका प्रयत्नही सराहने योग्य है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

प्रशस्त भाव ही संसार बन्धनके नाशका मूल उपाय है। शास्त्रज्ञान तो उपायका उपाय है। यावत् हमारी दृष्टि परोन्मुख है तावत् स्वोन्मुख दृष्टिका उदय नहीं। परन्तु जब स्वोन्मुख हो

तव तो स्वकीय रूपका प्रतिभास हो। केवल स्वरूपका प्रतिभासक है। परन्तु तद्रूप रहना यह विना मोहके उपद्रवके ही होगा। कहनेमे और करनेमें महान् अन्तर है। आप जानते हैं, प्रथम सम्यग्दर्शनके होते ही जीवके परपदार्थोंमें उदासीनता आ जाती है और जब उदासीनताकी भावना दृढ़तम हो जाती है तब आत्मा ज्ञाता दृष्टा ही रहता है। अत. आतुर नहीं होना। उद्यम करना हमारा पुरुषार्थ है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी सम्मति तो यह है कि इस कथोपकथनकी शैलीको छोड़कर कर्त्तव्यपथमें लग जाना ही श्रेयस्कर है। कल्याण करनेवाला आप है। परपदार्थकी आकांक्षा ही वाधक है। परके सम्बन्धसे रागादिक हो होते हैं और रागादिकोंके नाशके अर्थ ही हमारी चेष्टा है। अतः निःशक होकर निराकुलतारूप उद्योगद्वारा ही आत्मतत्त्वकी विशुद्धि होगी। अत. जो आकुलताके उत्पादक हो उन्हें सर्वथा त्याग कर स्वात्मगुणकी निर्मलता ही हमारा ध्येय होना चाहिये। अपनीमण्डलीको मोक्षमार्गमे साधक जान अभी आप सव एकान्तमें अपने ही ग्रामोंके उपवनोंमें २ या ४ दिन अवसर पाकर रहनेका अभ्यास करोगे तो अधिक लाभ उठाओगे। हमारे सवारी आदिका त्याग है; अन्यथा हम आपके उन्हीं उपवनोंमें झोपड़ी वनाकर रहते, क्योंकि वाह्य साधन वहाँ योग्य थे। चिन्ता किसी वातकी न करना। मेरी तो यह धारणा है कि मोक्षकी भी

चिन्ता न करो। मोक्षपथमे लग जाना चिन्ताकी अपेक्षा अति श्रेयस्कर है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

उतना परिग्रह रखना श्रेयस्कर होगा जिससे आपकी इच्छा पूर्ति हो जावे। संक्लेशता न हो और न इतना अधिक हो कि गृध्नता पैदा हो जावे। संसारमें उन जीवोंकी प्रशंसा है जो जालसे पृथक् होनेकी चेष्टा करनेमें लग जाते हैं। आपने अच्छा विचार किया। लाला शीतलप्रसादजीने भी स० २००० मे गृहसे विरत होनेका विचार किया है। पृथक् होनेके पहले अच्छी तरहसे चित्तवृत्तियोंके निरोध करनेका प्रयास करे। केवल बाह्य पदार्थोंके त्यागसे ही शान्तिका लाभ नही जबतक मूर्च्छाकी सत्ता न हटेगी। मूर्च्छा घटाना ही पुरुषार्थ है। इसके वास्ते महान् उत्तम विचारोकी आवश्यकता है।

ईसरी
आश्विन शु० ३, सं० १९९९

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-८]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द समय बिताना और जहाँ तक बने निराकुलताका लक्ष्य त्यागमें रखना। जो भी कार्य करो अन्तिम फल उसका शान्तिसे देखना। यहाँ तक ही वस्तुकी व्यवस्था है। जिसने

इस व्यवस्थाको जान लिया वह पर्यायकी सफलता पानेका भागीदार हो गया।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—९]

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप वहा निमित्तोंकी कटुतासे गृहवास छोड़ना चाहते हो सो भाई साहब! इस दुष्षमकालमे सर्वत्र निमित्तोंमे विपर्ययता हो रही है। यहॉ रहकर मुझे अच्छी तरहसे अनुभव हो गया कि अपनी परणतिको पवित्र बनानेकी चेष्टा करना ही बुरे निमित्तोंसे बचनेका उपाय है। निमित्त कभी भी बुरे नही होते। शंख पीत नहीं होता, परन्तु कामला रोगवालेको पीत भासमान होता है। इसी तरह हमारी जो अन्तस्तलस्थित कलुषता है वही निमित्तोंमें इष्टानिष्ट कल्पना करा रही है और जब तक यह कलुषता न जावेगी तब तक, संसारमे भ्रमण कर आइये, शान्तिका आंशिक भी लाभ न होगा, क्योंकि शान्तिको रोकनेवाली कलुषता तो वहीं बैठी हुई है। क्षेत्र छोड़नेसे क्या होगा? जैसे रोगी मनुष्यको एक मामूली घरसे निकालकर एक दिव्य महलमें ले जाया जाय तो क्या वह निरोग हो जावेगा? अथवा कॉचके नगको स्वर्णमें पच्ची करा दीजिये तो क्या वह हीरा हो जावेगा?

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—१०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। वही वृत्त जाने सो यह वारम्वार पिष्टपेषण ही

है। आप वही लिखते है और वही उत्तर हम देते हैं। एकबार चित्तवृत्तिकी चञ्चलताको छोड़ो और स्वोन्मुख होओ। आज तक परोन्मुख रहे और उसका फल भी जो पर वस्तुका होता है वही हुआ। सब सगतिको छोड़कर एक स्वात्मसंगति करो। वही सर्व-शान्तिकी जड़ और सर्व प्रश्नोके उत्तर करनेमे समर्थ है। जो दुःख आपको है वही तो हमको है। यदि न होता तो कदापि हम उत्तर न देते। उत्तर देना ही इसमे प्रमाण है। जैसे मांगने-वाला दुःखी है वैसे दाता भी करुणाक्रान्त होनेसे दुःखी है। हॉ, दुःखमे कारण पृथक् पृथक् अवश्य है। पर हैं दुःखी दोनो। मेरी तो श्रद्धा यहॉ तक है कि जहॉ तक अभिप्रायमे परोपकारिणी बुद्धिका सद्भाव है चाहे वह दर्शनमोहके सद्भावमें हो और चाहे चारित्रमोहके सद्भावमे, आत्मामे दोनो ही बाधाकारिणी हैं। अब ऐसा भाव उत्पन्न करो कि परसे कल्याण होनेकी आकांक्षा ही शान्त हो जावे, क्योकि अभिलाषा अनात्मीय वस्तु है। इसका त्यागी ही आत्मस्वरूपका शोधक है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—११]

योग्य दर्शनविशुद्धि

हम सानन्द सागर पहुँच गये और यहॉसे ५ या ७ दिनमे चलेंगे। बाईजीके कारण आना पड़ा। संसारमे अन्यत्र शान्ति नही है। अपने पास है। अन्यत्र खोजनेकी चेष्टा व्यर्थ है। आप सबसे पहले जहॉ तक बने प्रत्येक वस्तुसे मोह हटानेकी चेष्टा करें और चित्तमे हमेशा शुद्ध परिणमनका अभ्यास करे। बाह्य पदार्थोंसे स्वात्महित नही होगा। अपने ही भीतर शान्ति खोजनेका निरन्तर

प्रयास करो। अन्य किसीके ऊपर बुरा-भला माननेका अभ्यास छोड़ो। मोहकी दुर्बलता भोजनकी न्यूनतासे नहीं होगी, किन्तु रागादिके त्यागनेसे होगी।

सागर } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–१२]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

दशधा धर्म सानन्द हो गया। जब चित्तमे आकुलता हो पुस्तक लेकर बागमें चले गये। वहीं निर्वाण भूमि है। जो लोग विशेष रूपसे धर्मके सम्मुख नहीं हैं उनके लिये तीर्थयात्रा और साधुसमागम धर्मके कारण है। उसको सबोंने अपना लिया। सानन्द समय तभी जावेगा जब कुटुम्बी जन तथा शत्रु और मित्रोंमें समता आ जायेगी। घर छोड़नेमे कुछ नहीं। हर जगह घर बनाना पड़ेगा, क्योंकि अभी आपकी इतनी कषाय नहीं गई जो अपमान और मानमे समानता आ सके। अभी तो भूमिका ही आरम्भ है। यदि नींव कच्ची होगी तो महल नहीं बनेगा। अतः जहाँ तक बने बगीचामे फूंसकी झोंपड़ी बनाकर अभ्यास करो। कभी-कभी शाहपुर खतौली जाकर अभ्यास करो। ऊपरी लिबाससे अन्तरंगकी चमक नहीं आती।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–१३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

साता और असाता ही इस संसारमे है। दो में से किसी

एकके उदयमे ही यहाँ रहनेकी पद्धति है। इसमे हर्षविषाद करने से यह पद्धति निरन्तर रहती है, निकालनेका मार्ग नही मिलता। जो महापुरुष इन अन्यतर परिणतिसे हर्षित और विषाद युक्त नहीं होते वे ही इससे छुटकारा पा जाते हैं। मार्ग कही नहीं और सब जगत्मे है। चित्तके व्यापारमे थोड़े परावर्तनकी आवश्यक्ता है। निरुद्देश्य या गुमराह रहनेसे संसारवनसे पार होना अति कठिन है। बिना कुतुबनुमाके दिशाओंका ज्ञान नहीं होता और बिना दिशाज्ञानके अज्ञानान्धकारसे व्याप्त संसारअटवीसे भला कौन पार हो सकता है? अतः यहां वहां या मेरे पास आनेका विकल्प छोड़कर एकवार स्वोन्मुख होकर स्वीय रत्न (आत्मज्ञान या रत्नत्रय) की खोज करो। वह अपने ही मे है। आप ही आप शान्त चित्तसे कुछ काल अभ्यास करो। सर्व आपत्तियोंका नाश अनायास हो जायगा। अब तो परकी संगति प्राप्ति और भी अलाभदात्री है। यह भ्रम भगा दो। आप ही मे स्वयभू पद है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—१४]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजो, योग्य दर्शनविशुद्धि

कर्मोदयकी प्रबलता देखकर अशान्त न होना। अर्जित कर्मका भोगना और समता भावसे भोगना यही प्रशस्त है। ससारमे किसीको शान्ति नही। केलेके स्तम्भमें सारकी आशा के तुल्य संसारमे सुखकी आशा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६--१५]

श्रीयुत मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पराधीनताकी श्रद्धा ही ससारका मूल है। यों तो जो कुछ सामग्री हमारे पास है वह सर्व कर्मजन्य है, परन्तु श्रद्धा वस्तु कर्मजन्य नहीं। उसकी उत्पत्ति कर्मोंके अभावमें ही होती है। इसकी दृढता ही संसारकी नाशक है। औदयिक भाव ही कर्मबंधके जनक हैं और वे भाव भी केवल जो मोहनीयके उदयमें होते हैं, वही हैं। शेष कुछ नहीं कर सकते। वचनकी चतुरतासे कुछ लाभ नहीं। लाभ तो आभ्यन्तरकी परिणतिके होनेसे होता है। जहां जाओ वहीं परिणतिकी मलिनता और निर्मलताके निमित्त हैं।

केवल अन्तरङ्गकी बलवत्ता ही श्रेयोमार्गकी जननी है। समवसरणमें असंख्य विभूतियोंके रहने पर भी जीव अपने कल्याणके मार्गमें सावधान रहता है और निर्जन स्थानमें रह कर भी शक्तिहीन अकल्याणका पात्र बन जाता है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६--१६]

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका उत्साह प्रशसनीय है। त्याग धर्ममें कायरताको स्थान नहीं। हम तो जैसे हैं हम जानते हैं, परन्तु मार्गके अनुयायी हैं। आप मार्गके अनुयायी बनो। व्यक्तिके अनुयायी बनने में कोई लाभ नहीं। जहाँ तक बने आभ्यन्तर परिणामोंके आधारपर ही बाह्य त्याग करना। परिग्रह रखनेकी तो मैं शिक्षा नहीं देता।

जितना भी भीतरसे त्यागोगे उतना ही सुख पाओगे। जैनधर्ममें परिग्रहका त्याग बताया है। ग्रहण करनेका उपदेश नहीं। कषायों को कृश करनेका उपदेश है। जो समय इस विचारमे लगे वही प्रशस्त है। अपनी भूल ही से तो यह जगत है। भूल मिटाना धर्म है। परपदार्थके साथ यावत् सम्बन्ध है तावत् ही ससार है। घरसे सम्बन्ध छोड़कर अन्य से सम्बन्ध करना अति लज्जास्पद है। हमारा विचार भी निरन्तर त्यागकी ओर जाता है, परन्तु अन्तरंगकी मलिनता कुछ भी होने नहीं देती। कहनेमे और करनेमे बहुत भेद है। अनेक जन्मके अर्जित कर्मोंका एकदमसे दूर हो जाना सम्भव नहीं, अतः शातिसे त्याग करो। जितनी शान्ति त्याग करते समय रहेगी उतने ही जल्दी संसारका नाश होगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६—१७]

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

'प्राणान्त होगये' यह शब्द हितकर नहीं। उसका क्या खेद जो वस्तु नियमसे होनेवाली है। उसका विचार ही व्यर्थ है। उत्तम काममे वासना ही संसारबधनको काटनेवाला आरा है। घरसे बाहर जानेमें मैं तो कोई लाभ नहीं समझता। लाभ तो आभ्यन्तर उदासीनतामे है। पराधीनता कदापि सुखद वस्तु नहीं। मैं सेवा-धर्म नौकरीको अति निन्द्य समझता हूँ। अपनी योग्य व्यवस्थाकी कुटियासे पराधीनताका स्वर्ग भी अच्छा नहीं। परन्तु आपने जो ऐसी कल्पना कर रखी है कि अन्यत्र ही आप कल्याणका पथ देख रहे है। आपकी इच्छा। घर छोड़ना अच्छा नहीं। वहां तो

आपकी आय है उसे भाइयोंसे मेल कर व्यवस्थित करें। जब चित्त घबड़ावे तो दो चार दिन शाहपुर या खतौली जाकर तत्त्व चर्चा करें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–१८]

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अभी आप स्वय ही अपनी भावसन्ततिका अच्छी तरह विचार करो। तव अनायास यह समझमे आ जावेगा कि ये भाव त्यागधर्मके वाधक हैं। आपके ध्यानमे न आवे तव हम से पूछो। हम अपने अनुभवके अनुसार वतावेंगे—समान है या अन्तर है। क्या करना होगा यह प्रश्न तो ऐसा है जैसे एक नवोढ़ा गर्भवती अपनी सासुसे पूछती है और कहती है—जव हमारे सन्तानोत्पत्ति होगी जगा देना। जितने मलिन परिणाम होंगे उतने ही अधिक संग्रहकर वनोगे। निर्मलतामें भयका अवसर नहीं। यदि यह होता तो यह अनादिनिधन मोक्षमार्ग कदापि विकाशरूप न होता। आजकल निर्मलताका अभाव है, अत. मोक्ष मार्गका भी अभाव है। परपदार्थमे जिस दिन हृदयसे यह वात दूर हो जावेगी कि ये न मोक्षमार्गके साधक हैं, न वाधक हैं उसी दिन मोक्षमहलकी नींव धरी गई समझिये। जव तक वह श्रद्धा नहीं तवतक यह कथा संकल्प मात्रमें मोक्षकी साधक है। आप आओ इसमे हमें कोई आपत्ति नहीं; किन्तु हमारी तो अन्तरंगसे यह सम्मति है जो इस द्रव्यको रेलमे व्यय न करके धर्मध्यानमें व्यय करना श्रेयस्कर है। मनकी शल्यको निष्कासन कर व्रती

बनो। वर्णीजी हों चाहे दिगम्बर गुरु हों, कोई भी व्रती बनानेमें समर्थ नही। मनकी निःशल्य वृत्ति ही करणानुयोगके अनुसार भोजनादि करनेमे व्रती बना देगी। कायरताके भाव छोड़ो और सिंह बनो। मोक्षमार्गमे वही पुरुष गमन कर सकता है जो सिंह-वृत्तिका धारी हो। वहां शृगालवृत्तिवालोंका अधिकार नही। आपकी इच्छा हो सो करो; परन्तु जो करो सो अच्छी तरह परामर्श कर करो। व्यक्त करना अच्छा नहीं। यदि इस भयसे व्यक्त करना है कि लोकोंके भयसे व्रत पालेंगे तब वह व्रत नही।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-१६]

श्रीयुत महाशय लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा कि गृहस्थीमें राग द्वेष नही घटते सो ठीक है। किन्तु जबतक अन्तरंग निर्मलताकी आंशिक विभूतिका उदय न हो तबतक गृहस्थीको छोड़नेसे भी रागादिक नहीं घटते। यह नियम नहीं कि घरको छोड़नेसे ही रागादिक घट जाते हैं। आपने जो अनुभव किया वह एकदेशीय है। मेरा अनुभव है कि घर छोड़नेसे वर्तमान कालमें रागादिक बढ़ते है। उदाहरण देनेकी आवश्यकता नही। हां, यह अवश्य है कि राजमार्ग यही है कि वीतरागमार्गके अर्थ नियमसे परिग्रह त्यागकी आवश्यकता है; परन्तु साथमें यह भी नियम है कि बाह्य योग्यताके अनुकूल ही त्याग होता है। हमारी आत्मा इतनी कायर हो गई है कि निमित्तोके संग्रह ही में मोक्षमार्गकी कुञ्जी चाहती है। आप घरसे उदासीन हो। बाहर रहो, कौन रोकता

है। परिग्रह भी निर्वाहके अनुकूल रखना अनुचित नहीं, ठीक ही है। आप जानते हैं कि अष्टमप्रतिमा तक परिग्रह रहता है। यदि आपका अर्जनमें उपयोग नहीं लगता, मत करो। परन्तु फिर जैसे आजकलके त्यागी हैं क्या उस तरहसे विचरनेका अभिप्राय है या कुछ परिग्रह रखकर वाहर रहनेका अभिप्राय है, स्पष्ट लिखो। फिर हम सम्मति देंगे। आजकलकी हवा विलक्षण है, इसलिये प्राचीन भाषाके ग्रन्थोंका ही स्वाध्याय करना कल्याणका मार्ग है। अब मेरा स्वास्थ्य भी प्रति दिन जरोन्मुख है; किन्तु सन्तोष ही करना लाभदायक है। आप जहां तक बने अन्तरंगकी निर्मलताकी वृद्धि करना। उसके लिये एकत्वकी भावना ही कल्याणकी जननी है। कल्याणका मार्ग स्थानोंमें नहीं तथा कपड़े और घर छोड़नेमें भी नहीं। जहां है वहीं है।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-२०]

श्रीयुत मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला। संसारमें ऐसा ही होता है। जहां तक वने अच्छे होने पर शान्तिसे काल विताओ। यातायातमें कुछ नहीं होता। मोक्षमार्ग निकट है; दूर नहीं। परके आश्रयसे वह सदा दूर रहा है और रहेगा। और जिन भाग्यशाली वीरोंने पराश्रितकी भावनाको पृथक् किया वे ही वीर अल्प कालमें उसके पात्र होंगे। मांगनेसे भीख तक नहीं मिलती, फिर भला मोक्षमार्ग जिससे सदाके लिए संसारवन्धन छूट जावे जैसा अपूर्व पदार्थ क्या दानका

विपय हो सकता है ? आप पथ्यसे रहना, इसीमे हित है। आत्मशुद्धिके भी कारण यदि रागादिकी मन्दता होती जावे तो कालान्तरमे यही परिणाम हो जाता है। परन्तु यहां तो कथा ही में तत्त्वकी प्राप्ति मानकर हम लोग सन्तोपित हो जाते हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२१]

श्रीयुत् मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चित्तमे जैसे-जैसे परपदार्थोंकी मूर्छा घटती जायगी वैसे-वैसे शान्ति उदयरूप होगी। आप जानते हो कि इस रोगसे आप ही दुःखी नहीं। जब तक मोहका अभाव नहीं; हीन पुण्यवान्से लेकर महान् पुण्यशाली तक दुःखी हैं। सुख न संसारमे है, न मोक्षमें (सिद्धशिलामें) और न कर्मोंके सम्बन्धमे है, न कर्मोंके अभावमें। सुख तो अपने पास है। और न उसका यह पुद्गल द्रव्य रोकनेवाला ही है। हम ही अज्ञानी होकर उसके विषयमे नाना प्रकार यद्वा तद्वा कल्पना करके उसको अनेक रूप देकर अनुभव करते हैं। परमार्थसे वह नानारूप नहीं। अखण्ड चैतन्यके साथ अनादिकालसे तन्मय है। परन्तु कामला रोगी जैसे शखमे स्वेतता का तादात्म्य होनेपर भी पीतशंखका ही अनुभव करता है उसीके समान निराकुल सुखका आत्माके साथ तादात्म्य होते हुए भी हम आकुलतारूप ही उसे अनुभवका विषय करते हैं। इस भूलका फल अनन्त संसार ही होता है। अतः अब समस्त पर-पदार्थोंकी ओरसे चित्तवृत्तिको संकोच कर आत्माकी ओर

लगाओ। हममे स्वयं इस विषयमें दृढता नहीं आई, इसीसे पत्र देते हैं। अन्यथा क्या आवश्यकता थी।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-२२]

श्रीयुत् मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

भइया, पत्रमें सारबोधक अल्प शब्दोंमें अभिप्राय आना चाहिये। जितना समय तीन पन्नेके पत्र लिखनेमें लगाया, उतना समय यदि निज परिणामोंकी समालोचनामें लगाते तो जैसे-जैसे विकल्पज्वाला शान्त होती जाती वैसे-वैसे शान्ति मिलती। स्वर्ग जिसके हम कर्त्ता बन रहे हैं, यदि चाहे तो उसे हम ध्वंस भी कर सकते है। जो कुम्भकार घट बना सकता है, क्या उसे वह फोड़ नहीं सकता? इसी तरह जिस संसारको हमने सञ्चय किया, यदि हम चाहें तो उसका ध्वंस भी कर सकते हैं। मेरी तो यह श्रद्धा है कि सञ्चय करनेमें अनेक कारणोंकी आवश्यकता है। ध्वंस करनेमे बहुत सरल उपाय है। मकान बनवानेमें बहुत काल और बहुत जनोंकी आवश्यकता होती है, ध्वंसमें उतना समय और उतने जनोंकी आवश्यकता नहीं होती। आप समझदार होकर हमारा आश्रय चाहते हैं यह क्या उचित है? अपने पुरुषार्थको सम्हालो, स्वप्नदशा त्यागो और धीरतासे काम लो। ज्ञानाभ्यासमें समय लगाओ। लौकिक कार्योंको उदासीन रूपसे करो। संसारको स्वप्नावस्था मानो। परमें इष्ट-अनिष्ट कल्पना छोड़ो। स्थानविशेष तो जहां अन्तरङ्गमे

स्वात्मस्फूर्ति हुई वही है। दूसरे प्राणियोंकी ही कथा मत करो, अपनी कथा करो और देखो कि आज तक मैं किन दुर्बलताओंसे संसारमें रुला और उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करो यह मेरी निजी सम्मति है। आप सब लोग एकबार गांवके बाहर स्वच्छ स्थानमें ही तत्त्वविचार करें। चाहे शाहपुर हो या सलावा, खातौली आपका गांव हो। केवल भोजन गांवमें कर आओ। अनन्तर अपना सारा समय तात्त्विक चर्चा और साथ ही साथ रागद्वेषकी कृशतामें लगाओ। बाहर (हस्तिनागपुर आदि) जाकर भोजनादि सामग्रीके फेरमें न पड़ो। मन चंगा तो कठौतीमें गंगा। यदि मनमें शान्ति और पवित्रताका उदय है तब गांवके बागमें ही हस्तिनागपुर है। यदि निराकुलतापूर्वक एक दिन भी तात्त्विक विचारसे अपनेको भूषित कर लिया तब अपने ही में तीर्थ और तीर्थङ्कर देखोगे। एकबार यथार्थ भावनाका आश्रय लो और इन कलंक भावोंकी ज्वालाको सन्तापके जलसे शान्त करो। इससे अपने ही आप अहंबुद्धिका प्रलय होकर सोऽहं विकल्पको भी स्थान मिलनेका अवसर न आवेगा। वचनकी पटुता, कायकी चेष्टा, मनके व्यापार इन सबका वह विषय नहीं। आप यही आरोप हमपर करते होंगे, परन्तु हम भी उस जालमें हैं जिसमें आप हैं। फिर हमारी प्रवृत्तिपर ध्यान न दो। यदि आप लोग सत्यपथके अनुयायी हैं तब अपने मार्गसे चले जाओ। यही परमपदका पथ है। बाबाजीसे कहना कि महाराज! निस्पृह होकर आपको खतौलीका रहना बाधक नहीं। जहाँ सूरज है वहाँ दिन है। जहां निस्पृह त्यागी रहते हैं वहां निमित्त अच्छा हो जाता है। जहाँ शान्त परिणामी निवास करता है वही स्थान तीर्थ है। जहाँ निमित्त अच्छे हों वे ही तीर्थ हो सो नहीं। जहाँ साधुजन वही तीर्थ है। विशेष क्या लिखें? यह सर्व लिखना भी

हमारे मोहका विलास है। मूर्च्छाकी न्यूनतामें ही स्वात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२३]

श्रीयुत् महाशय लाला मङ्गलसेनजी, दर्शनविशुद्धि

आपने जो ऐसा विचार किया सो सर्वथा उत्तम है। अब थोड़ेसे जावनके लिये आप जैसे स्वतन्त्र धार्मिक मनुष्यको पराधीनतामें जीवन विताना अच्छा नहीं। उदयाधीन जो होता है, होगा। जो कुछ है उसीमें पुरुषार्थ करो। उसीसे सर्व कुछ होगा। शान्तिका मूल कारण यह है कि चित्तमें जो क्षोभ है उसे त्याग दो और जो कुछ मिलता हो उसीमें सन्तोष करो। और स्वप्नमें भी पराये कल्याणकी भावना न आना श्रेयस्कारिणी है। विशेष क्या लिखूं ? आप जहाँ तक बने, सानन्द जीवन विताइये। स्वप्नमें भी आकुलता न करियेगा। वावूजीके लिये भी स्वाध्यायका प्रेम होना हितकारी है। लौकिक वैभव आदि कोई भी सुखका साधन नहीं। उनसे शंका-समाधान करके आप निश्चय करा दीजिये कि विना आभ्यन्तर वोधके हित होना अशक्य है। लौकिक प्रभुतावाले कदापि आभ्यन्तर सुखी नहीं हो सकते। वर्तमानमें जितने प्रभुताशाली हैं वे अत्यन्त दुःखी हैं। सर्वको यह चिन्ता है कि हमारी रक्षा कैसे हो ?

एक मासमें एकवार मौन रखनेका अभ्यास करो। ससारमें यावत् परिणाम होते हैं, स्वाधीन होते हैं। यह प्राणी व्यर्थ कर्त्ता वनकर सवको अपने अधीन मान दुखी होता है।

अनादिसे कोई भी आजतक ऐसा दृष्टान्त देखनेमे नहीं आया कि एक भी परिणमन किसीने अन्यरूप परिणमाया हो। फिर भी यह जीव मोही होकर ऐसी विपरीत चेष्टा करता है। फल उसका स्वयं दुःखी होना है। हे प्रभो! यह सुमति दो कि अब हम इस कुचक्रसे बचें। फिर भी वही बात, प्रभु कौन हैं देनेवाले? स्वय इस विपर्य्ययभावको छोड़कर प्रभु बन जाओ। प्रभु जो हैं सो प्रभु नहीं बना सकते, किन्तु प्रभुने जिन परिणामों से प्रभुता प्राप्त की है उन परिणामोंका आत्माके साथ तादात्म्यकर हम स्वयं प्रभु हो जायेंगे और इतर प्राणियोंके कल्याणमें निमित्त-कारणसे 'णमो अरहताण' की जाप्यके विषय होने लगेंगे। यह सब होना स्वाधीन है, परन्तु यह प्राणी अनादि कालसे परपदार्थोंके साथ अभेदबुद्धिकी कल्पनाके साथ एकीभाव कर रहा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-२४]

श्रीयुत् महाशय मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। शान्तिका मार्ग आत्मामे है। निमित्त कारणमें शान्ति नहीं। इस तत्त्वके यथार्थ ज्ञान विना हम दुर्गतिके पात्र हो रहे हैं। ऐसी श्रद्धासे कभी भी हम कल्याण-पथके पथिक नहीं हो सकते। लाला शीतलप्रसाद जी से हमारी धर्मस्नेह कहना। खेद इस बातका है कि कई जगह दिगम्बर भाई बलात्कारकी वजहसे श्वेताम्बर हो रहे हैं। यह बहुत ही अनुचित बात है। क्या वह पूजन करनेके पात्र नहीं? यदि आपका पुरुषार्थ हो तब लाला शीतलप्रसादजीकी सम्मति

लेकर एक बार खतौली जावो और लाला बाबुलालजीको समझाओ। वह योग्य व्यक्ति हैं। सम्भव है इस कार्यको करनेमें योगदान देवें। इस समय आवश्यकता है, अन्यथा वे सर्व श्वेताम्बर हो जावेंगे। तब पश्चात्तापके सिवाय कुछ न मिलेगा। मुजफ्फरनगरवालोंके हमारे पास कई पत्र आये हैं, परन्तु उत्तर देना उचित नहीं समझा।

२२-२-३८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-२५]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। संसारमें शान्तिका मार्ग खोजना हमारी महती अज्ञानता है; क्योंकि मार्ग तो आप में है, अन्यत्र खोजना रज्जुमें सर्प भ्रान्तिके तुल्य है। अन्य की कथा छोड़ो। जो एक गांवसे दूसरे गांव जाते हैं वह भी मार्ग हमारे ज्ञानमें है। यदि न हो तब उत्तरसे दक्षिण जानेवाला दक्षिण क्यों चलता है, उत्तर क्यों नहीं जाता? ज्ञानमें दक्षिणकी दिशा आती है और उस ज्ञानके अनुकूल चलकर अभीष्ट स्थानमें पहुँच जाता है। इसी प्रकार हमारे आत्मा ही में मोक्षमार्ग है। हमारी कल्पना जब तक निमित्तों पर रहती है, हम भटकते हैं। जिस दिन आत्मामें आ जाती है उसी समय हम मोक्षमार्गी बन जाते हैं। इस पर गम्भीर विचार करो। केवल अनादिरूढ़िपर मत चलो। प्रौढ़ विवेक करो जो सुमार्ग पर लावे। विशेष क्या लिखें। हमारी दृष्टि अनादिकालसे परमें ही आत्मकल्याण देखकर कुण्ठित हो रही है। अतः इसे विवेकरूपी सरसानसे धारदार

बना लेना चाहिए। इस प्रान्तमे गर्मी अधिक पड़ती है, अतः आपकी तरफसे जो आवेगा वह इसे सहन करनेमे व्यथित होगा। अतः सर्वसे उत्तम तो भाद्र मास ही रहेगा। अभी मैं यहां हूँ। यहांसे शायद जबलपुर जाना पड़े। स्वाध्यायका फल ज्ञान है। किन्तु ज्ञानकी महिमा चारित्रसे है। चारित्रहीन ज्ञानकी कोई विशेष प्रभुता नहीं।

नोटः—१. मूर्च्छाका त्याग ही कल्याण का पितामह है। २. ईसरी शान्तिका स्थान था परन्तु वहाँ बाह्य निमित्तोंकी त्रुटि थी। ३. आपका देश अच्छा है, परन्तु स्थान नहीं।

शान्तिनिकुंज सागर } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[१६–२६]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। सर्वत्र अशान्तिका साम्राज्य है। शान्तिका राज्य तो निर्मोही जीवोंके होता है। यदि आप सुख शान्तिसे जीवन व्यतीत करना चाहते है तो परपदार्थके गुण दोष-विवेचक विभावको त्यागो। कोई भी वस्तु अशान्तिप्रद नहीं। हमारी रागादि परणति ही आत्मा को अशान्तिमय बना देती है। उसका त्याग करना ही हमारा कर्तव्य है। पर वस्तु न त्याग की जाती है और न ग्रहण की जाती है। जब हम अपने विभाव रागादि परिणामोंको दुःखोत्पादक जान संवरमय आत्माकी परिणति करनेमे समर्थ होते हैं, अनायास पर-वस्तु का सम्बन्ध छूट जाता है। मैं कब कहता हूँ, जो सत्समागम न करो। परन्तु शान्ति व अशान्ति समागममे नहीं। वह तो जहाँ है वहीं मिलेगी। हमारा

विचार कुछ दिन बाद पावापुरकी ओर जानेका है। स्वास्थ्य अच्छा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२७]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। सानन्द स्वाध्याय करिये। कल्याण का मार्ग यही है। राग-द्वेषकी निवृत्ति ही धर्म है। वह तो काल पाकर होगी। केवल श्रद्धा हो जाना उसके होनेमें कारण है। आप जहाँ तक बने अभिप्रायको निर्मल बनाओ। गृहस्थमें आकुलता रहती है वह ठीक है, परन्तु सर्वथा आकुलताका कारण परपदार्थ को मानना हमारी महती भूल है। केवल अनादि कालसे यह जीव परपदार्थोंके संसर्गमें अपनी प्रवृत्ति कर रहा है और वही संस्कार आभ्यन्तरमें है जिनके बलसे निरन्तर आकुलित रहता है। विशेष उत्तर अवसर पाकर दूंगा। अभी नैनागिर जा रहा हूँ। फिर शाहपुर जाऊँगा, क्यों कि वहां पर बोर्डिंग खुलेगा। ग्यारह हजार रुपया यहाँ हुआ है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–२८]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। स्थानकी सुन्दरता परिणामोंकी पवित्रतापर निर्भर है। प्रत्येक प्राणी चाहता है—आत्माको सुख

हो और उसीके अर्थ निखिल प्रयास करता है। परन्तु उन प्रयासोका फल कटुक ही होता है। 'सुखका उपाय आत्माके निर्मल भावोंपर निर्भर है। निर्मल भावोका उदय परपदार्थोंमें इष्टानिष्ट कल्पनाके अभावमें होता है। हम अपने कुटुम्बी जनको दुःखका कारण मान उन्हें अनिष्ट बतानेमे नहीं चूकते और विरक्त पुरुषोंके समागमको सुखका कारण मान इष्ट कल्पना करनेमें अपनी सम्पूर्ण बुद्धि लगा देते हैं। यह सब भूल ही हमारे कल्याण मार्ग मे विघ्न-स्वरूप है। आप जब तक मुनारिकपुर और तीर्थभूमिमें अन्तर समझकर हेयोपादेयभावसे मुक्त न होगे तब तक शान्ति मार्गसे दूर ही रहोगे। अतः चाहे वहाँ रहो चाहे न रहो, परन्तु उस क्षेत्रमें व्यर्थकी कल्पना मत करो। हम स्वय इस दोषसे रिक्त नहीं। परन्तु दोषको दोष ही मानते हैं। आपके मन्तव्यमे अब तक वह स्थान धर्मध्यानमे विघ्नकर है यह शल्य नहीं जाती, यही महती त्रुटि है। त्रुटिको दूर कर सत्य मगलसेन बनो। व्यर्थके ऊहापोहको त्यागो।

आ० शु० चिं०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–२६]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

असलमें जब तक अपनी कषायपरिणति है तब तक यह सर्व उपद्रव है। कषायके अभावमें कहीं रहो कोई आपत्ति नही। कषाय के अस्तित्वमें चाहे निर्जन वनमे रहो चाहे पेरिस जैसे शहरमें निवास करो सर्वत्र ही आपत्ति है। यही कारण है जो मोही दिगम्बर भी मोक्षमार्गसे परान्मुख है और निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गके

सम्मुख है। खेद इस वातका है जो मोही जीव स्वसदृश ही निर्मोही को वनानेकी चेष्टा करता है। आप मोहको नहीं छोड़ना चाहता। यहाँपर क्या सर्वत्र यही वात देखनेमें आती है। हम जो लिखते हैं उसपर अमल नही करते, केवल अपनी मलिन परिणतिको त्यागनेके भावसे वंचितकर छिपानेका प्रयत्न करते हैं।

आ० शु० चिं०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३०]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, हमको अवतक मलेरिया मित्रता नहीं छोड़ता। जो उदय है उसे भोगना ही उचित है। यह कौन कहता है जो गार्हस्थ्य जीवनमें निराकुलताकी पूर्ति नहीं। यदि निराकुलताकी पूर्ति गृहवास में होजावे तव कौन ऐसा चतुर मनुष्य इसे त्याग दैगम्वरी दीक्षाका आलम्वन लेता। एक कोपीनके सद्भावमें साक्षात् मोक्षमार्ग रुक जाता है। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं जो गृहावस्थामें एकदेश मोक्षमार्ग न हो। यदि गृह छोड़नेसे शान्ति मिले तव तो गृह छोड़ना सर्वथा उचित है। यदि उसके विपरीत आकुलताका सामना करना पड़े तव गृहत्यागसे क्या लाभ। चौवेसे छव्वे होना अच्छा परन्तु दुवे होना तो सर्वथा ही हेय है। अभी दूरस्था भूधरा रम्याः देख-रहे हो। जिन्होंने गृहवास छोड़कर क्षुल्लक ऐलकतक पद अंगीकार किया है वे मोटरो व रेल सवारियोंमें सानंद यात्रा कर रहे हैं तथा गृहस्थोंसे भी विशेष आकुलताके पात्र हैं। तथा जो आरम्भ त्यागके नीचे हैं वे गृहस्थसे अधिक परिग्रह पासमें रखते हुये भी त्यागी वन रहे हैं। तथा वृत्तिको इतनी पराधीन वना रक्खी है जो विवरण

करते लेखनी कम्पायमान होती है। अपना परिग्रह तो त्याग दिया और फिर अन्यसे याचनाकर संग्रह करना क्या हुआ, खेती करनेके तुल्य व्यापार हुआ। आप विवेकी हैं, भूलकर पराधीन न होना। सानन्द स्वाध्यायमे काल लगाना। किसी काममें जल्दी न करना। स्वर्गीय चिरोजाबाईजीका कहना था कि बेटा! अपना परिग्रह छोड़कर परकी आशा न करना, अन्यथा करनेसे दुःखके भाजन होगे। यह हमे अनुभव है।

आ० शु चिं०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३१]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणके हेतु जो कुछ विकल्प होगा वह अच्छा ही होगा, उसमें अन्यथापन नहीं। लौकिक सुखके हेतु जो भी विकल्प होगा वह सर्वथा हेय एवं दुःखदायी होगा। कषायोका निग्रह और कषायोंकी पुष्टि करनेमें जो विकल्प होते हैं वह भिन्न रूपके हैं। उनसे आत्माका परिणमन भी अन्य रूपसे कार्य करनेमें प्रवृत्त होगा। चोरीसे धन कमाने और न्याय मार्गसे धन अर्जन करनेके परिणामोमे महान् अन्तर है। दण्डके निमित्तसे धन देनेमे और दानके निमित्तसे धन त्यागमें कितना अन्तर है? अत. कषायोंके निग्रह करनेके अर्थ जो कषाय है वह बन्धका मूल नहीं।

का० कृ० १२, सं० १९९७ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–३२]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हमारा यत्न निरन्तर बाह्य पदार्थोंके गुण दोष विचारमें पर्य्यवसान हो जाता है, क्योंकि हमारे ज्ञानमें प्रायः बाह्य पदार्थ ही तो आ रहे हैं। अन्तस्तत्वकी ओर दृष्टिको अवकाश ही नहीं मिलता। दृष्टि अन्तस्तत्वकी अनुभूति कर सकती है परन्तु उस ओर उन्मुख ही नहीं होती। उन्मुखताका कारण जो सम्यक्त्वगुण सो मिथ्यात्वके उदयमें विकसित ही नहीं होता। अतः यदि कल्याणकी अभिलाषा है तब इन बाह्य पदार्थोंके चक्रमें न आवो। हमारी तो सम्मति यह है जो ऐसा अभ्यास करो जो यह बाह्य पदार्थ ज्ञेयरूप ही प्रतिभासे। अन्यकी कथा तो छोड़ो, जिसने मोक्षमार्ग दिखाया है वह भी ज्ञेयरूपसे ज्ञानमें आवे।

ईसरी
फा० सु० २ सं० १९९७

आ० शु० चिं०
गणेश वर्णी

[१६–३३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

हमें मलेरिया फिर आने लगा। बाबाजीका स्वास्थ्य गिरता जाता है। उनके रहनेसे हम राजगृही न जा सके। सागरसे एक रसोइया आया है। आप स्वाध्यायमें चित्त लगाओ। शान्तिका कारण आप ही की परणति है। परकी सहायता बाधक है। अन्तस्थ शत्रुका बल तभी तक है जब तक हम पराधीन हैं। पराधीनता ही हमें संसारमें बनाये है तथा यही निजस्वरूपसे दूर किये है। अकाट्य सिद्धान्त है जो सर्व पदार्थ अपने अपने

चतुष्टय को लिये सनातनसे धारावाही प्रवाहसे चले आ रहे हैं। हमारी असत्कल्पनाएँ अन्यथा करना चाहती हैं। उल्लूकी दृष्टिमें दिन रात्रि ही दीख रहा है। पर क्या दिन रात्रि हो जावेगा ? कदापि नही। अतः इस विवेककी कथाको अपनाओ और अनादिभूल को त्यागो। परक्षेत्र आदिके स्नेहसे विरक्त होओ। हमारा सर्वसे धर्मस्नेह कहना। यहाँ वही हलचल है। देखें क्या होता है ? मोहका प्रकोप है जो विश्व अशान्तिमय हो रहा है। जो आत्मा अपने स्वरूपकी ओर लक्ष्य रखते है और अपने उपयोगको राग-द्वेषकी कलुषतासे रक्षित रखते हैं वही इस अशान्तिसे दूषित नहीं होते। आप जहाँ तक बने ऐसा प्रबन्ध करना जो उत्तरकालमे आपत्तिजनक न हो। परिग्रह लेनेमे दुःख, देनेमें दुख, भोगनेमें दुःख, रक्षामें दुःख, धरनेमें दुःख, सड़नेमें दुःख। धिक् इस दुःखमय परिग्रह को। मेरी शीतलप्रसाद जीसे दर्शनविशुद्धि।

पौष सुदि ६ सं० १९९८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–३४]

'कर्मकी गति विचित्र है यह मानना ठीक नहीं। यह सब आत्मद्रव्य का ही विकार है। स्वपरिणामो द्वारा अर्जित संसारको परका बताना महान् अन्याय है। कर्मका ही मानना यही तो एकान्त सांख्यमत की कल्पना है। अथवा हम ऊपरसे जैन-सिद्धान्तके माननेवाले बनते हैं और अन्तरङ्ग दृष्टिसे एकान्त वासनासे दूषित रहते हैं।

संसारका अन्त करनेके लिये आत्मद्रव्यको पृथक् करनेकी चेष्टा करनी ही उचित हैं। संकल्प-विकल्पकी परम्परा ही तो

हमें जगतमें भ्रमण करा रही है। जब तक इनका प्रभुत्व रहेगा, हमें इनकी प्रजा होकर ही निर्वाह करना होगा। हमारी ही कल्पनासे उद्भूत परिणामोंके हम दास बन जाते हैं। उसमें प्रलोभन परद्रव्यकी लालसा है। वह कदापि हमें सुखकर नहीं। स्वाध्यायमें कालक्षेप करना। विश्वकी अशान्ति देख अशान्त न होना। यहाँ यही होता है। नमक सर्वाङ्ग क्षारमय होता है। संसारकी जितनी पर्याय हैं, दुःखमय हैं। इनमें सुखकी कल्पना भ्रम है।

गया } आ० शु० चि०
फाल्गुन शु० ६, सं० १९९८ } गणेशप्रसाद वर्णी

[१६—३५]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनाविशुद्धि

आम अच्छी तरहसे आ गये। अब मत भेजना, क्योंकि फसल हो चुकी है और शाहपुर भी मना कर देना। अब यहाँ पर वर्षा होनेसे गर्मी शान्त हो गई। अब हमारा विचार गुणावा पावापुरकी तरफ जानेका है। वर्षाऋतुमें प्रायः जीवोंको विशेषतया एक स्थान पर रहनेसे ही शान्ति मिलती है। अब आयुका $\frac{3}{4}$ भाग तो आपका बीत चुका है। ध्येय निश्चयका कर ही अब अपने कल्याणके मार्गको वृद्धिरूप करना चाहिए। सर्व जीवोंसे क्षमाभाव कहना। अपने कुटुम्बी जनोंसे विशेषरूपसे तथा उनसे भी विशेष आत्मीय पुत्रोंको क्षमा करना। पुत्रोंकी अपेक्षा निज स्त्रीसे निर्मल परिणामो द्वारा त्यागमार्गको सरल करना। आज कल मेरी बुद्धिमें दो ही मार्ग उत्तम हैं—गृहस्थ-अवस्थामें रहना इष्ट हो तब जलमें कमलकी तरह रहना चाहिए। अष्टमी प्रतिमा तक परिग्रहका सम्बन्ध रहता

है, अतः यह प्रसिद्ध न करना चाहिए जो हमने सर्व कुटुम्बी जनोको त्याग दिया। जिस दिन पैसासे ममता छूट जावे, घर-छोड़ना श्रेयस्कर है। फिर रेल आदि सवारीमें बैठना अच्छा नहीं। तथा सानन्द जीवन बिताओ। व्यर्थ विकल्पोमें मत पड़ो। यही मुख्य मार्ग कल्याणका है। कोई क्या बतावेगा? अपनी अन्तरात्मासे पूछो। यही उत्तर मिलेगा--जिन कार्योंके करनेमें आकुलता हो उन्हें कदापि न करो चाहे वह अशुभ हो चाहे शुभ हों।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३६]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। अब मेरा स्वाध्य अच्छा है। खतौलीसे गुडूची का सत आया था। उससे आराम हो गया। लाला हरिश्चन्द्र जी सागर हैं। सानन्द हैं। अध्ययन करते हैं। इन्द्रचन्द्र अच्छा होगा। आप जब आवें दो मासको निश्चिन्त होकर आना। मेरा शरीर अब नीरोग है। भैया! ससारमे भटकने से कुछ लाभ नहीं। सर्व जगह मनुष्य औदयिक कषायोंके अनुकूल ही तो चलते हैं। केवल घर छोड़ दिया, बाल बच्चे छोड़ दिये। क्या इसीसे निर्मल हो गये? निर्मलतामें कारण अन्तरङ्ग मनोवृत्तिकी विकृति-परिणति न हो। सो तो दूर रहा। त्यागके छलसे अपनी कषाय पुष्ट करना ही तत्त्व रह जाता है। अतः आप सर्व विकल्प छोड़कर कहीं रहो, यहाँ भी आवो कुछ हानि नहीं। परन्तु यह प्रसिद्ध न करो जो हमने गृह त्याग दिया।

जिस दिन सुअवसर आवेगा, अनायास यह घर छूट जावेगा। तत्त्वसे त्याग निज वस्तुका होता है। घर तो पर द्रव्य है। उसका त्याग कैसा। त्याग चारित्रमे जो विभाव है उसका होता है। सो यदि सामर्थ्य है तब उसे छोड़ो। तत्त्वज्ञान पूर्वक त्याग प्रशस्त है, अन्यथा तो कषाय ही का हेर फेर है। नागनाथ कहो या सर्प-नाथ कहो। यदि शाहपुरवाले प० शीतलप्रसाद जी मिलें तब हमारी दर्शनविशुद्धि कहना। मुंसिफ सा० से भी दर्शनविशुद्धि। श्रीइन्द्रचन्द्र व उनकी मा से आशीर्वाद।

ईसरी
जेठ सुदी ६, सं० २००० }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–३७]

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जो कुछ काम करो दृढ़तासे करो, उसमे सफल होओगे। ५० वर्षसे ऊपर हो गये, अबतक भी वही बात। कैसे आत्महित होगा, क्या करें. किसके पास जावें, किस शास्त्रका अध्ययन करें? सब बातोंका उत्तर एक है—आत्मविश्वास करो, न कहीं जाओ, न कहीं आओ। घर ही मे कल्पवृक्ष है। केवल उसको जाननेकी आवश्यकता है। अन्यथा बालू पेलते जाओ तेलकी बूंद भी नही मिलना है। तत्त्वज्ञान क्या अभूतपूर्व वस्तु है? जहाँ आत्मबोध हुआ वहीं तत्त्वज्ञान हो जाता है। यदि आत्मबोध नहीं तो जगतभर घूम आओ स्वप्नकी दशा है। बिना समझे सकल शास्त्रोंका अध्ययन मृगतृष्णा है। अत: सब विकल्पोंको त्यागो, एक परमात्मशरणमे जाओ।

सागर
ज्येष्ठ सुदि ६, सं० २००१ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३८]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम कटनी आ गये। एक मास रहेंगे। श्री मूलशंकर जी भी आज कल यहीं हैं। आप अब निश्चिन्त होकर जैसा कहते थे आत्मकल्याणमे समय लगाइये। कहनेसे कल्याणका लाभ नही। करनेसे लाभ होता है। स्वाध्याय करना ज्ञानका कारण है। यथाशक्ति तदनुकूल अपनी प्रवृत्ति करना ही संवर निर्जराका कारण है। यही कारण है जो असयमी देवोकी अपेक्षा संयमी तिर्यञ्च के विशेष शान्ति और कर्मोंकी निर्जरा होती है।

कटनी
कार्तिक सुदि ४. सं० २००१

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-३६]

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी. योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। शान्तिका कारण यही है जो परिग्रहसे विरक्त रहना। मेरी तो यह सम्मति है जो बात हम लोग व्यवहारमे लाते हैं वह अन्तस्तत्त्वमें आनी चाहिये। कल्याण कोईके द्वारा मिलता नहीं और न किसीकी उपासना उसमे प्रयोजक होती है; केवल शुद्ध द्रव्यका अवलम्बन ही उसका उपाय है। अत: जहाँ तक बने परकी मूर्च्छा छोड़ो। संकल्पविकल्पका मिटना ही तो मोक्षमार्ग है। मैं उस दिनको पञ्च कल्याणक तिथिके सदृश ही पूज्य मानूँगा। अब आप सर्व तरफ से चित्तको सकुचित करो और वर्षा कालमें जहाँ तक बने मेरे साथ रहिए। अब मैं कटनी जा रहा हूँ।

फाल्गुन बदि १, सं० २००१

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–४०]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

यदि आत्मीय परणति पर स्थिर हो गये तब कल्याण दूर नहीं। परपदार्थोंका सम्पर्क उसका बाधक नहीं। बाधक अपना ही कलुषित परिणाम है। अतः चाहे घरमें रहो, चाहे वनमे रहो, कलुषित परिणाम न हो इसकी चेष्टामे सावधान रहो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–४१]

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। बहुत दिनोंसे पत्र नहीं आया सो देना। बनारसवाला रुपया भिजवा दिया होगा। दानका द्रव्य ऋण है। उससे मुक्त होना ही उत्तम है। स्वाध्याय सानन्द होता होगा। संसारमे शान्तिका कारण बाह्य कारणोंसे परे है। फिर भी उसका साधन है। अन्तरङ्गकी निर्मलता क्या है इस ओर हमारा लक्ष्य नहीं जाता। यद्यपि वह प्रतिसमय हमारे जीवनमें आती है परन्तु हम उसके विरुद्ध अनुभव करते हैं। जिस समय कोई कषायका उदय आता है, हमारी आत्मा कलुषित हो जाती है। साथ ही उत्तर क्षणमें कुछ शान्ति भी होती है किन्तु हम उस शान्तिको कषाय कृत कार्यका कार्य कल्पना करते हैं। यही विपर्यय ज्ञान हमारी शान्ति का घातक है। अस्तु, समय पाकर कार्य बन भी जावेगा। पत्रसे स्वास्थ्यका समाचार देना। मनोहर वर्णी सहारनपुर गये हैं।

जबलपुर
ज्येष्ठ कृ० १२ सं० २००२

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-४२]

श्रीयुत लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे और शान्तिसे स्वाध्याय करते होंगे। निमित्त कारणो की प्रणालीसे कदापि क्षुब्ध न होना। वह प्रणाली सर्वत्र है। ससारमें जहां जाइये वहीं यह अपना साम्राज्य जमाए है। परन्तु धन्य तो वह मनुष्य है जो इसके चक्रमे नहीं आता। निमित्त बलात्कार हमारा कुछ अनर्थ नही कर सकते। यदि हम स्वयं उनमे इष्टानिष्ट कल्पना कर इन्द्रजाल की रचना करने लग जावे तव इसे कौन दूर करे? हमी दूर करनेवाले हैं। अतः सर्व विकल्पो को छोड़ केवल स्वात्मबोधके अर्थ किसी को भी दोषी न समझना और सब को हितकारी समझना। यदि ये बाह्य दुःखके कारण न होते तो कौन इस ससारसे उदास होता, अतः किसी भी प्राणीको अपना बाधक न समझ कर ही कल्याण का पथिक होता है। यदि हरिश्चन्द्रजी यात्रासे आ गये हों तब हमारा धर्मस्नेह कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-४३]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जैसी कषाय उपशम होती है वैसा ही त्याग होता है। घर को त्यागने से ही मोक्ष होता है यह श्रद्धा कथञ्चित् ठीक है। किन्तु एकान्त अच्छा नहीं। आप किञ्चिन्मात्र भी अधीर न हूजि। परिणामोंकी निर्मलतासे आपके सर्व कार्य अनायास

सिद्ध हो जावेंगे। धीरतासे काम लीजिए। त्यागमें स्वाधीन जीविकाप्रश्न नहीं। यह तो दुर्बलताका भाव है जो हम पराधीन न होंगे। संसारमें स्वाधीन कौन है? त्यागी परिग्रही कैसा स्वाधीन मेरी समझमें नहीं आता। परिग्रह धर्मका साधक नहीं बाधक है। अतः भादों आने दीजिए; अभीसे चिन्ता क्यों? बाबाजी का आशीर्वाद

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-४४]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका समाचार आपके चि० इन्द्रकुमारसे जानकर प्रसन्नता हुई। आज कल यहाँ पर लाला सुमेरचंद जी आये हुए हैं। परम सज्जन हैं। आपका स्वाध्याय सम्यक् होता होगा। मेरी तो यह सम्मति है जो आप मनोयोगपूर्वक स्वाध्यायमें निज समयको यापन करें और यथाशक्ति रागादि को क्षीण करनेका प्रयास करें। घर रहनेमे रागादिकोंकी वृद्धि होती है इस भूतको हृदयसे निकाल दो और जब तक इसको नहीं निकालोगे कभी भी रागादिकसे निर्मुक्त न होगे। घर छोड़कर फिर भी तो घर ही में रहोगे? अटवीमें रहनेकी तो योग्यता नहीं, क्योंकि सर्व पापोंको पूर्णरूपसे त्याग करनेके अभी हम पात्र नहीं। अभी तो उस सकल पापत्यागकी भावनाभ्यासके ही हम पात्र हैं। जब तक परिणामोंमें पर-पदार्थके साथ सम्बन्ध करने की इच्छा है कोई भी त्याग सफली-भूत नहीं होता। चरणानुयोगमें निमित्त कारणोंके दूर करनेका उपदेश है, क्योंकि वे सब बन्धके कारण अध्यवसान भावोंके जनक होते हैं। परमार्थसे देखा जावे तब हम उन्हें हठात् निमित्त

बना लेते हैं। निमित्तका यही अर्थ तो है जो हमारे रागादि भावोंमे वह विषय होते हैं। इसका यह अर्थ तो नही जो निमित्त कारणने रागादिकोंको उत्पन्न किया। जैसे कोई मनुष्य आतापसे पीड़ित होकर छायामें बैठ गया। तब इसका यह अर्थ नही जो उसे छायाने बैठाया। वह स्वयं उसके पास जाकर बैठ गया। इसी तरह यह स्त्री आदि पदार्थ हैं। यदि यह जीव रागादिक करे तो वह उसमें विषय हो जावे हैं। बलात्कारसे रागादिकोंके जनक नहीं होते। फिर भी यह मोही जीव उन्हे अनिष्ट मान उनके त्याग करनेकी चेष्टा करता है। बलिहारी इस बुद्धि की। विशेष ऊहापोह स्वयं करो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–४५]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

गोली आ गई। बाबाजीका स्वास्थ्य अत्यन्त दुर्बल है। भीतरसे सावधान हैं। ऐसी अवस्थामें परमात्मरूप आत्मा ही का शरण है। अन्यका शरण व्यर्थ है। मेरी तो यह धारणा है जो परकी सहायता परमात्मपदकी बाधक है। आत्माकी केवल अवस्था ही का नाम मोक्ष है। यदि आपमे इतनी समता आ गई है जो परके निमित्तसे हर्ष विषाद नहीं होता है। तब हमारी समझमे और इससे अधिक क्या चाहते हो? यदि चाह है तब वह समता नहीं। समताका जहाँ उदय है वहाँ आत्माकी कृत्यकृत्यावस्था हो जाती है; करनेको शेष नहीं रहता। आप सानन्दसे रहो यही

चाहते है। दूसरा पत्र शीतलप्रसाद जी का है। इन्हे पहुँचा देना। वल्कि आप एक दिन जाना और उन्हे खूब दृढ़ करना। आदमी योग्य हैं। गोली आपकी खायी। पर मलेरिया तो न जावे अच्छा है, क्योंकि अब आयु थोड़ी रह गई है। कोई वाधाजनक नहीं। माघ तक यहीं रहेंगे।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[१६—४६]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

वहुत कालसे आपका धर्मसाधनकारक कोई पत्र नहीं मिला। यद्यपि हमको पूर्ण विश्वास है आप धर्मकार्योंमें शिथिल न होंगे। तथा शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। आप जानते हैं, ससार के निवासी जीव संसारकी ही वात करते हैं और उसकी वृद्धिका ही निरन्तर प्रयत्न करते हैं। यदि कोई आपको निर्दोष होनेपर भी दोषी वना देवे तव भी आपको धर्मकार्योंसे विमुख नहीं होना चाहिये तथा उनके आरोपसे उनके प्रति क्षुब्ध भी न होना चाहिए तथा जो कार्य आपका आपके श्रद्धानका साधक था उसमें अरुचि न होनी चाहिये। प्रत्युत आपत्तियोंके आनेपर प्रमथापेक्षया अधिक प्रयास धर्मसाधनमें करना चाहिये। यद्यपि मेरा लिखना असंगत हो; क्योंकि मैं जो कुछ लिख रहा हूँ किंवदन्तियोंके आधार पर ही तो लिख रहा हूँ, मिथ्या हो परन्तु आपका मेरे पास न आना सन्देहका ही जनक है, अतः आप इसका निराकरण पत्र द्वारा शीघ्र करें, जिसमें मुझे सन्तोष हो। एक वार आकर कुछ दिन स्थानका मोह छोड़िए। स्नेह ही तो

बन्धन है । संसारकी जननी यही ममता है । इसे त्यागो संसार पार हुआ ।

जबलपुर
आषाढ़ सुदी ८, सं० २००३

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६--४७]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आप समयसारका पाठ करते हैं, उत्तम है । कल्याणका मार्ग दरशानेका निमित्त है । उपादानशक्ति तो आत्मामे है । इसके उदय होते ही सर्व आपदाओसे आत्मा सुरक्षित हो जाता है । आवश्यकता हमको आत्मीय परिणतिको कलुषित न होने देनेकी है । कोई संसारमे न तो हमारा शत्रु है और न मित्र है । शत्रुता-मित्रताकी उत्पत्ति हम स्वयं करते हैं । जब एक द्रव्य दूसरेसे भिन्न है । फिर हम क्यो न उसको पर जानें । क्यो परको आत्मीय मानें । यह मानना मिथ्यात्व है । यही जड़ संसारकी है । आज क्या अनादिकालसे यह जीव इसी मान्यतासे दुखी है । यह मान्यता जिस दिन छूट जावेगी उसी दिन संसार बन्धन छूट जावेगा । बन्धनका करनेवाला ही बन्धनको मोचन कर सकता है । हम बन्धन करनेवाले परको मानते हैं और छुड़ानेवाले भी परको मानते हैं । बन्धन करनेवाले स्त्रीपुत्रादिको मानते हैं और छुड़ानेवाले श्री अरिहन्तादिको मानते हैं । इस पर वस्तुकी व्यवस्थामें अपने अनन्त सुखको खो बैठे हैं ।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–४८]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम यहांसे पौर्णमासी को भोजन कर चलेंगे और वडाकर ठहरेंगे। वहांसे मधुवन होकर प्रतिपदाको ईसरी पहुँच जावेंगे। कंठीकी भेजनेकी आवश्यकता नहीं। जलवायु यहांका अच्छा है परन्तु शहरोंमें रहना प्रायः रागादिका निमित्त है। अत. हम वहाँ आ रहे हैं। दूसरे बावा भागीरथजीकी निष्पृहता वहां आनेको प्रेरित कर रही है। वस्तुतः जब तक अपनी कषायपरिणति है तब तक यह सर्व उपद्रव हैं। कषायके अभावमें कहीं रहो, कोई आपत्ति नहीं। कषायके अस्तित्वमें चाहे निर्जन वनमें रहो, चाहे पेरिस जैसे शहरमें निवास करो, सर्वत्र ही आपत्ति है। यही कारण है जो मोही दिगम्बर भी मोक्षमार्गसे पराङ्मुख है और निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गके सम्मुख है। खेद इस बात का है जो मोही जीव स्वसदृश ही निर्मोहीको बनानेकी चेष्टा करता है। आप मोहको नहीं छोड़ना चाहता। यहाँ पर ही क्या सर्वत्र यही बात देखनेमें आती है। हम जो लिखते हैं उस पर अमल नहीं करते। केवल अपनी मलिन परिणतिको त्यागनेके भावसे वञ्चित कर छिपानेका प्रयत्न करते हैं। कहने की अपेक्षा जानना कठिन है और जानने की अपेक्षा लिखना कठिन है और सबसे कठिन अन्तरङ्गसे उसे करना है। करनेका नाम काय, मन, वचन व्यापारसे करना समझते हैं। असलमें उस भावका न होना है। उपचारसे त्यागव्यवहारमें परिणत हो जाता है।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[१६-४६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम आपके पत्रका प्रायः उत्तर देते हैं। अभी गर्मीका प्रकोप बहुत है, अतः आषाढ़ बदिमे जाऊंगा आगमज्ञान मुख्य वस्तु है। परपदार्थका ज्ञाता दृष्टा रहना ही तो आत्माका स्वभाव है और उसकी व्यक्तता मोहके अभावमे होती है। अतः आवश्यकता उसीके कृश करनेकी है। यथार्थ ज्ञान तो सम्यग्दर्शनके होते ही हो जाता है। इष्टानिष्ट कल्पना चारित्रमोहके उदयसे होती है। उसका अभाव होना देश-संयमादि गुणस्थानोके क्रमसे होगा। आप लोग एकदम चाहते हैं कि हमारे वीतरागकी शान्ति आ जावे सो मेरी समझमे नहीं आता। पर्यायके अनुकूल ही शान्ति मिलेगी। हापटा मत मारो, शनैः शनैः सब होगा। विशेष क्या लिखें—तात्त्विक बात तो थोड़ी है, विस्तार बहुत है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो विपरीत मोहके जानेके बाद जो आत्मानुभव सम्यग्ज्ञानीके होता है वही क्रमसे मोहादिकके अभाव होनेपर कैवल्य पदरूपमें परिणमन हो जाता है। अगर आपकी श्रद्धा सत्य है तब आप अपनेको ससारी मत मानो, क्योंकि सिद्ध पर्यायके सम्मुख हो। आशा है, अब सब व्यग्रताओंको छोड़ जो पर्याय उत्पन्न हो गयी है उसे वृद्धिरूप करनेकी चेष्टा करोगे। कदाचित् यह कहो, सम्यग्दृष्टी भी तो निन्दा-गर्हा करता है। मेरी इसमें यह श्रद्धा है जो सम्यग्दृष्टिके मोहके उदयसे निन्दा-गर्हा होती है। वह अहम्बुद्धिसे उसका कर्त्ता नहीं। निन्दा-गर्हा अनात्मीय धर्म है। अनात्मीय धर्ममे उसके उपादेय बुद्धि नहीं। इसका यह अर्थ नहीं जो मैं स्वच्छन्दताका पोषक हूँ। स्वेच्छाचारिता तो सम्यग्ज्ञानीके होती ही नहीं, क्योंकि आत्म-

ख्यातिमे जहाँ प्रतिक्रमणको विष कहा है वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत नहीं हो सकता।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-५०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणका कारण अन्तरङ्गकी निर्मलता है, न घरका छोड़ना है और न १२ मासका मौन है। परन्तु आपकी वात आप जानें। शीघ्रतासे काम करना परिपाकमें उत्तम हो तव तो ठीक है; अन्यथा पश्चाताप होता है। यथापदवी कार्य अच्छा होता है। आवेगमे कार्य करना ठीक नहीं। हमारा स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु योग्य रीतिसे अभी कुछ नहीं कर सकते।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-५१]

श्रीयुत् मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्ध

उदयाधीन शान्ति है। किन्तु परिकर जो शान्ति चाहता है, अशान्त वना देता है। परन्तु जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा है उसे शान्तिका ही लाभ है। औषधि परमात्माका स्मरण है। इससे वड़ी कोई औषधि हो तो टेलीफोन द्वारा अविलम्व भेजो। चिन्ता न करना। शक्ति आने वाद उत्तर दूँगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-५२]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। कल्याणका मार्ग रोकनेवाला कुटुम्ब नहीं। आपकी जो इच्छा सो करो। इसमे कौन प्रति-बन्धक हो सकता है परन्तु कुटुम्बपर दोषारोपण कर त्याग करना अथवा त्याग कर उसकी शल्य रखना महान् अनर्थकी जड़ है। सर्व पदार्थ अपने-अपने चतुष्टयसे परिणमन कर रहे हैं। उनपर किसीका अधिकार नहीं, जो अन्यथारूपको परिणमावे। व्यर्थ के विकल्पजालसे अपनेको बाँध लेना उत्तम पुरुषको उचित नहीं। हमारी शक्ति ज्वर आनेसे दुर्बल हो गई है, अतः विशेष पत्र नहीं लिख सकते। आप अभी न भेजना। हम यहाँ आषाढ़ यदि को ईसरी जावेंगे।

हजारीबाग }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-५३]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम एक पत्र इसके पहिले दे चुके हैं और जो पत्र आता है उसका उत्तर भी देते हैं। परन्तु आप लोगोंका लक्ष्य उस तरफ नही जाता। केवल निमित्त कारणोंकी उत्तमता और जघन्यता पर ही विचार करके सन्तुष्ट हो जाते हो। घरमे रहनेसे बन्ध और बाहर रहनेसे निर्जरा यही चर्चाका विषय रह गया है। अचिन्त्य शक्तिशाली आत्माको इन पर पदार्थों के सहवाससे इतना हम लोगोंने दुर्बल बना दिया है जो बिना

पुस्तकके हम स्वाध्याय नहीं कर सकते, विना मन्दिर गये हमारा श्रावकधर्म नहीं चल सकता, बिना मुनिदानके हमारा अतिथिसंविभाग नहीं बन सकता, विना सत्समागमके हमारी प्रवृत्ति नहीं सुधर सकती। कहाँ तक लिखें—यावत् कार्योंमें निमित्तका बोलवाला है। अतः कल्याण करना है तब अपनी ओर देखो और अपने ज्ञायकभावकी स्वच्छताको कलंकसे बचाओ। अनायास कल्याणमार्गके पात्र हो जाओगे। विशेष पत्र देना समयका दुरुपयोग करना है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–५४]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। दशधा धर्ममें अच्छी प्रवृत्ति रही होगी। परमार्थसे तो यह निवृत्तिरूप है। परन्तु यह मोही जीव उसे व्यवहारमें प्रवृत्तिरूप मानता है तथा मन्द कषायके कार्योंको धर्म का व्यवहार करता है। धर्म तो स्वरूपमें लीनताका नाम है। भगवान कुन्दकुन्द स्वामीने कहा है—

> संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहि।
> जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणपहाणादो॥
> दर्शनज्ञानप्रधानाच्चारित्राद्वीतरागान्मोक्षः।
> ततएव सरागाद्देवासुरमनुजराजविभवक्लेशरूपो बन्धः॥

इससे इष्ट फलवत्ता होने से वीतराग-चारित्र उपादेय है और सरागचारित्र हेय है। वस्तु मर्यादा यही है। वह चारित्र क्या पदार्थ है सो स्वामी कुन्दकुन्द महाराज कहते हैं—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोह-क्कोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

अर्थात् स्वरूपमें आचरण का नाम चारित्र है। इसी का अर्थ स्वसमयप्रवृत्ति है और यही वस्तु स्वभावपनेसे धर्म है। इसीका नाम शुद्धचैतन्य का प्रकाश है और यथावस्थित आत्मगुणपनेसे साम्यशब्दसे कहा जाता है। और यही दर्शन-चारित्र, मोहनीयके उदयसे जायमान समस्त मोह और क्षोभके अभावसे अत्यन्त निर्विकार जो जीवका परिणाम है, साम्यशब्दसे कहनेमें आता है, अतः दश-लक्षण पर्वमें जिन गुणोंकी हम पूजा करते हैं इसीके अन्तर्गत है। यह धर्म मुख्यरूपसे निर्मोही जीवका परिणाम है और फिर इसकी मध्यम वृत्ति, निरीह वृत्ति दिगम्बर साधुओंके होती है। उससे नीचे दर्जेमें पञ्चम गुणस्थानवालोंके होती है। चतुर्थ गुणस्थानवालोंके उसकी श्रद्धा है। प्रवृत्तिमें वह धर्म नहीं। मिथ्यादृष्टियोंके तो उसकी गन्ध ही नहीं। अतः यह बात अपनी आत्मासे पूछते हैं कि हमारे कौनसा भाव है केवल बाह्य मन-वचन-कायके व्यापारसे उसका सम्बन्ध नहीं। यह तो उसके अनुमापक है। वह वस्तु तो निर्मल आत्मामें उदय होती है। जिन्हें आत्मकल्याण करना है वह इन क्रोधादिक कषायोंको कम करने की चेष्टा करें। आप लोग संसारसे भयभीत हैं। परन्तु अभी निमित्त कारणों की योजनामें ही मुग्ध हो रहे हैं। अस्तु, कल्याण तो अपनी आत्माके ऊपरका भार उतारनेसे ही होगा। वह भार केवल शब्दों द्वारा दशधा धर्मके स्तवनादिसे नहीं उतरेगा किन्तु आत्मामें जो विकृत औदयिक भाव हैं उन्हें अनात्मीय जान त्यागनेसे होगा। विशेष हमारा स्वास्थ्य गत १८ माससे इतना दुर्बल हो गया है जो उपदेश करता है,—अर्हत्परमेष्ठी का ही

स्मरण करो। इन लौकिक मनुष्योंका सम्पर्क छोड़ो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—५५]

श्रीमान् लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मेरा तात्पर्य यह है जो आप निःशल्य होकर कुछ दिन घर ही स्वाध्याय करो और जो उदयमें है उसको आनन्दसे भोगो। पुत्रकी शादी हो गई। उसकी तो आपको चिन्ता नहीं। चिन्ता करनेसे होता ही क्या है? मेरा तो यह विश्वास है कि आत्मकल्याणकी भी चिन्ता न करो; कार्य करते जाओ। मनुष्य जन्ममें संयमकी योग्यता है इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य जन्म पाया और संयम हो गया। यदि कारण-कूट मिल जावें, हो सकता है। कौन ऐसा मनुष्य है जो संयमकी अभिलाषा न करता हो? परन्तु कहनेमात्रसे संयम नहीं होता। अनुकूल कारणोंके सद्भावमें संयमका उदय होना दुर्लभ नहीं। अतः जहाँ तक बने मूर्च्छाको छोड़ना और विशेष विकल्प न करना। हमारा तो आपसे प्राचीन परिचय है। यदि आपमें कोई दोष है तब आप मर्यादासे अधिक व्यय करते हैं। इस पर आप विचार करें। खेश आ गया। नर्म्मावाड़ीका होता तब अच्छा था। यह भी अच्छा है। परन्तु अब न भेजना। जब कभी नर्म्मावाड़ी की रुई उत्तम मिल जावे तब बनवा लेना। जल्दी न करना।

जबलपुर
पौष वदि ७, सं० २००३

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६--५६]

श्रीयुत् लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बहुत दिन हुए आपका पत्र आया था। वह आज मिला। आपने लिखा, मुझे भेदज्ञान हो गया। अब और क्या चाहते हो? इसकी महिमासे आपके सब मनोरथ सिद्ध हो जावेंगे। अब विकल्प छोड़ो। इसीके अर्थ सकल प्रयास हैं। शास्त्रस्वाध्यायका इतना ही फल है। अब तो जितने अंश निवृत्तिके हैं, उपयोगमे आना चाहिये। हमारा स्वास्थ्य अब प्रतिदिन क्षीण दशाको प्राप्त हो रहा है। एक बार इच्छा थी जो उस प्रान्तमें आवे। परन्तु बाह्य कारण अनुकूल नहीं। प्रथम तो हर स्थानमे हिन्दु-मुसलमानोके झगड़े हो रहे हैं तथा लोगोंमे अशान्ति बहुत है। अन्नकी प्राप्ति दुर्लभ हो रही है। ऐसी दशा जीवोके पापोदयसे होती है। उसकी निवृत्ति शुभ परिणामोंसे होती है। उस ओर जीवोंका लक्ष्य नहीं। अथवा यो कहिये, संसारमे यही होता है। अतः जिन्हे इस चक्रमें न फंसना हो उन्हें परपदार्थसे ममता त्याग देनी चाहिये। निर्मोही जीव सुखके भाजन हो सकते हैं। मोही जीव सर्वदा दुःखी रहेंगे। उन्हें सुखका मार्ग समवसरणमें भी नहीं मिल सकता। सूर्योदयमें घूघू (उल्लू) को नहीं दीखता। सूर्यके विकाशमें नेत्रवान् ही देखता है, यह ठीक है। फिर भी यह नियम नहीं कि देखे ही। आँख बन्द करले तब कोई क्या करे? विशेष क्या लिखें—हमारा विचार कुछ दिन द्रोणगिरी रहनेका है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–५७]

लाला त्रिलोकचंद्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपके यहाँ बड़े-बड़े विद्वानोंका समारोह हुआ। उनके सम्पर्कसे जो लाभ हुआ होगा वह तो आप ही जानें। हम तो इतना जानते हैं कि जितनी मूर्च्छा घटी होगी उतना ही आनन्द मिला होगा। इस पत्रको मुवारिकपुर भेज देना।

सागर
वैशाख वदि ३,स० २००४ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–५८]

श्रीयुत् महाशय मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आत्मलाभसे उत्कृष्ट लाभ नहीं। यदि वह हो गया तब अब न तो हमारी आवश्यकता है और जिनसे आपको आत्मलाभ हुआ उनकी आवश्यकता है। अब तो आवश्यकता उसे स्थिर करने की है। एतदर्थ मूर्च्छा त्यागो। परसे ममता त्यागो। सानन्दसे जीवनयापन करो। यातायात छोड़ दो। जिससे आकुलता न हो वह करो। स्वाध्यायका फल एतावन्मात्र ही है। मुझे हर्ष इस बातका है जो आप लोगोंका काल तत्त्व-विचारमें जाता है। श्रीमान् त्रिलोकचन्द्रजीसे मेरी दर्शनविशुद्धि कहना। तथा लाला हुकमचन्दजी आदिसे दर्शनविशुद्धि कहना। वहाँ पर हमारा समयसार हस्तलिखित रक्खा है। उसे समगौरया श्रीमान् पं० मुन्नालालजीके हाथ भेज देना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—५९]

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जो लिख रहे हैं, लौकिक शिष्टाचारकी यही प्रणाली है। परमार्थसे विचारो, शास्त्रीय शब्दोंके प्रयोगको ही जब हम एकान्तसे विचारते हैं तब जो पर पदार्थोंमे हमारी ममता है वही तो दुखकी जननी है और भी गहरेपनसे विचारो तो परको छोड़ो। जो हमारी निज शरीरमे आत्मबुद्धि है वही तो परमे ममताका कारण है। शरीरको भी छोड़ो। शरीरमे आत्मीय बुद्धिका कारण अन्तरङ्ग मिथ्यात्व है। वही हमारा प्रबल शत्रु है। यदि वह न हो तब हम शरीरको पोषण करते हुए आत्मीय न माने। अतः शत्रु पर विजय करना ही हमारा कर्त्तव्य होना चाहिये। जिसके एकत्व भावना हो गई उसके सर्व धर्म होगया। धर्म कोई बाह्य वस्तु नही। अन्तरङ्गमें कलुषित भावका न होना यह भाव कब होवे हैं, जब अन्तरङ्ग अभिप्राय अति निर्मल हो जाता है। उसके लिये केवल अपनी तरफ देखना ही बहुत है। परकी तरफ देखना ही ससारका कारण है। आत्माका ज्ञान इतना विशद है जो उसमें निखिल पदार्थ प्रतिबिम्बित हो सकते हैं। परन्तु हमारे देखनेमे राग, द्वेष, मोह नहीं होना चाहिये। अन्तरङ्गसे न तो आप मुझे चाहते हैं और न मैं आपको चाहता हूँ। वहिरंगसे आप हमारे और हम आपके यही बात मोही पदार्थोंमे लगाना। जहां एक तरफ मोह है वहां दूसरी तरफ उपचारसे जो चाहो सो कहो। जैसे भगवानमे दीनदयालु पतितपावन आदि अनेक आरोप प्रतिदिन लोग करते ही हैं।

ज्येष्ठ सुदी ४, सं० २००४

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–६०]

श्रीयुत् महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं हमारा आपसे धार्मिक स्नेह है और जबतक हमारे व आपके यह मोह है वहां ही यह ससार बन्धन है। जिस अन्तरङ्गमें यह वासना मिट जावेगी, न मैं आपका और न आप मेरे। हम और आप तो अभी उस पथके श्रद्धालु हैं, चर्यामें आनेसे आपसे आप ममता मिटती जाती है। समता आती जाती है। एक दिन न रहेगी ममता न चाहेंगे समता। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। जो उपयोग शिष्टाचारमें जाता है वह अपने ही स्वरूपके संभालने मे जावे तब परकी अपेक्षा न रक्खो। हम तो स्वयं इस जालमें फंसे है परन्तु आपको हितैषी जान यही कहेंगे आप इसमें मत फसो। यदि हमारी सम्मति मानो तब परमेश्वरमें प्रेम भी त्यागो। भक्ति करो यह भी कमजोरीका उपदेश है। मोहके सद्भावमे ही यह होता है। परन्तु तात्त्विक दृष्टिसे सम्यग्ज्ञानी कुछ नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं जो उसके भक्ति नहीं, परन्तु उसके अभिप्रायकी वही जाने। मेरा तो यह विश्वास है—कोई किसी की क्या जाने। अपना २ परिणमन अपने २ मे हो रहा है। व्यवहार की कथा विचित्र है।

जेठ सुदि ६, सं० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–६१]

श्रीमान् लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका आया। वृत्त जाने। कायरता ही मोक्षमार्गकी

घातिका है। इसे स्थान मत दो। पर का आश्रय त्यागो। स्वाधीन बनो। जब हम और आपको यह निश्चय हो गया जो सब द्रव्य अपने-अपने रूप परिणमते है तब आवश्यकता नहीं जो हम किसीकी अनुचित प्रशंसा करें। भगवान वीतराग सर्वज्ञ हैं तथा मोक्षमार्गोपदेशी है। मोक्षमार्ग क्या, संसारमार्गके भी उपदेष्टा हैं। इतना ही भगवान का स्वरूप है। इतर व्यवहार करना क्या उचित है? परन्तु मोही जीव जो न करे सो अल्प है। आपको कल्याण करना इष्ट है तब वह प्रवृत्ति जो अनादिसे अपना रहे हो, त्यागो। शूरवीर बनो। पर पर ही है। अपना अस्तित्व जो परके सम्बन्धसे विजातीय हो रहा है उसको छोड़ो। दृढ़प्रतिज्ञ बनो। यही संसार को छेदने का उपाय है। अपनी सत्ता को अपनाओ।

अषाढ़ वदि ५, सं० २००४ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–६२]

श्रीयुत लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

अब मैं यही रहूँगा। आप स्वाध्यायमे सत्समागमकी अपेक्षा विशेष प्रवृत्ति करिये। सत्समागम आस्रव का कारण है और स्वाध्याय स्वात्माभिमुख होनेका उपाय है। सत्समागममे प्रकृति विरुद्ध भी मनुष्य मिल जाते हैं। स्वाध्याय मे इसकी सम्भावना भी नहीं। इसकी समानता रखनेवाला अन्य कोई नही। चाहे करके देख लो। इसकी अवहेलनासे ही हम आज पद पदमे तिरस्कृत होते हैं, दर-दर गिड़गिड़ाते हैं।

सागर
अषाढ़ शु० ६, सं० २००४ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६३]

श्रीयुत् लाला मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। स्वाध्याय सानन्दसे होता होगा। कल्याण का मार्ग तो आभ्यन्तर कषायके अभावमें है। यह स्वाध्याय सहकारी कारण है।

सागर
श्रावण शुक्ला ११, सं० २००४

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६४]

श्रीयुत महाशय लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। समाचार जाने। देखो, यह जो हमारी आपकी कल्पना है जो परसे कल्याण होता है. निमित्ताधीन होती है और मोहज है। अतः श्रद्धामें तो यही रखना चाहिये कि जिस दिन यह कल्पना मिट जायगी उस दिन क्या होगा? यह वही कह सकते हैं जिसके कल्पना मिटेगी। वही जानेगा भी। पहले तो हम और आप आगमके बलसे कहते हैं, अनुभव होना अशक्य है। हाँ, जब किसी विषयका राग होता है और उसका विषय सिद्ध होने पर वह राग मिट जाता है उस समय जो शान्ति आती है, उससे अनुमान कर सकते हैं जो सम्पूर्ण मोहाभावमें अखण्ड शान्तिका अनुभव होता होगा। अथवा वहां अनुभवका क्या काम है। कोई किसी प्रकार का विकल्प ही नहीं। हमारी तो यह सम्मति है जो इन विकल्पोंको छोड़िए। शास्त्रोंमें जो प्रक्रिया इसकी लिखी है उसी उपायका अवलम्बन कर परिणति स्वच्छ बनानेका प्रयत्न करिये। अथवा आगम की कथा छोड़िए। जिस

जिस कार्यके करनेमें सक्लेश होता है वे सब कार्य त्यागनेकी चेष्टा करिये। हम तो एक यही उपाय कल्याणका समझते हैं। मैं कुछ नहीं जानता, फिर भी लोग मुझे एक जाननेवाला मानते हैं। न जाने इसमें कौनसा हेतु है ? आजकल वर्णी मनोहर-लालजी यहीं हैं। वहुत सुवोध हैं। मेरी तो यह सम्मति है कि अब आप थोड़े दिन शान्तिसे स्वाध्याय करो और जो पास में हैं उसीके अनुसार व्यय करो। आपके अनुकूल व्यय उत्तम होता है। समयकी वात है जव जैसा आवे सन्तोषपूर्वक विताना चाहिये। मैं भाद्र मास तक यहीं रहूँगा। एक वार वरुआसागर जानेका विचार है। अभी, ग्रामके वाहर हूं। आपका विचार क्या भादोंमें आनेका है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–६५]

महानुभाव इच्छाकार !

मैं आपको पुण्यशाली समझता हूँ जो तत्त्वज्ञ-महाशयोंके सह-वास में आपका समय जाता है। यद्यपि आत्मा स्वभावतः अद्वैत है। आत्मा ही क्या सभी वस्तु अद्वैत है। और कल्याण-लाभ के लिये यह अद्वैत भावना अत्यन्त उपयोगिनी है। एकत्व भावना का यही तत्त्व है। परन्तु मोह से हमारी आत्मा इतनी पतित हो चुकी है जो हम स्वयं अद्वैत होकर जगत्‌को अपना मानने का प्रयास करते हैं। 'ममेदं अस्याहम्" यह मेरा है मैं इसका हूँ इत्यादि विकल्पोंमे उलझकर ससारके पात्र बने हैं। तथापि अहमेदं इत्यादि कम्मे णोकम्मम्मि इत्यादि—पाठ हम पढ़ते है।

परन्तु उस रूप होने का प्रयत्न नहीं। केवल सम्यग्दर्शन की कथा कर सन्तोषामृत का पानकर तृप्ति कर लेते हैं और वह भी कथामें ही रह जाता है। यदि परीक्षा करना हो तब जो तत्त्व का विवेचन कर रहा है उसके प्रतिकूल शब्दों का प्रयोग करके प्रत्यक्ष उसके भावोंका निर्णय कर लो। अस्तु, इसमें क्या रखा है? जो हो, आप लोग जाने या प्रभु जाने। हम ससारको सुलझानेका उपदेश देते हैं, परन्तु स्वयं नहीं सुलझते। ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्थित चलता है और चलेगा, यह तो ठीक है, परन्तु त्यागाश्रम ठीक चलता है इसकी कथा भी नहीं। यह क्या बात है? उस प्रान्त को पाकर यदि इस धर्म की पुष्टि न की तब तो मैं यही समझा जो अभी उस आश्रम की नींव पक्की नहीं। अतः आवश्यकता त्यागधर्म की है। इसके होनेसे एक ब्रह्मचर्याश्रम क्या. सभी धर्मके कार्य निर्विघ्न चल सकते है। इसके विना लवण विना भोजन की तरह कोई भी कार्य की पूर्ति नहीं। मेरा यह विश्वास है जा भोगी ही योगी हो सकता है। विना भोग के योग नहीं। मुख्यतया सुखी जीव ही काल पाकर वीतरागी होता है। यह उत्सर्ग नहीं, अपवाद भी नहीं। दुःखमें भी भावना अच्छी होती हैं। प्रायः तीर्थङ्कर स्वर्गसे ही इस भूलोकमें अवतीर्ण होते हैं। किन्तु नरकसे भी आकर तीर्थङ्कर होते हैं। अतः कहने का तात्पर्य यह है जो उस प्रान्तके मनुष्य भोगी बहुत है। अब उन्हें उचित है जो त्यागधर्मको अपनावें। बहुत दिन गाढ़ी दालमें घी का स्वाद चखा, मधुररसका स्वाद लिया, पुण्य-फलको भोगा। आजन्मसे आज तक यही किया। परन्तु इससे शरीर ही को पुष्ट किया जो पर वस्तु है और परसे ही पुष्ट किया। गारा, चूना, ईंटसे मकान ही बनता है इन्द्र-भवन नहीं बन जावेगा। इसमें हमारा कोई अपराध नहीं। किन्तु उसको

अपना माना यही हमारी महती अज्ञानता है। अब इसे त्याग देवें, अतएव त्यागधर्म की आवश्यकता है। अतः आवश्यकता हमको इस बातकी है जो बहुत दिन पर को अपना माना, आजन्मसे यह कार्य किया, अब इस चोट्टापन को त्याग कर अपने को अपनावे जिससे संसार की यातनाओंके पात्र न हों। इसके होते आपका जो आश्रम है वह अनायास चलेगा। अथवा आपका न आश्रम है और न आप आश्रमके हैं। यह व्यवहार भी न रहेगा। अथवा आपकी उसमे जो निजत्व की कल्पना है तब इस धर्म की महिमासे वह भी विलीन हो जावेगी। वह क्या विलीन हो जावेगी, श्रीगोमट्ट स्वामी यात्राके जानेका विकल्प है वह भी शान्त हो जावेगा। जो कुछ आपके पास है उसे त्यागो और ब्रह्मचर्याश्रमको देकर अपरिग्रही बनो। श्रीगोमट्टस्वामी जाकर क्या इससे अधिक निर्जरा सम्पादन कर लोगे? सम्भव है आपकी मण्डली इस वाक्यसे असन्तुष्ट हो जावे। परन्तु मेरा जो विश्वास है, त्यागमें निर्जरा है और वन्दनामे पुण्य है। आजकल अष्टान्हिका पर्व है। देव लोग नन्दीश्वर जाते हैं। पुण्यलाभ सम्पादन करते हैं। यदि हम चाहे तब संयम धारण कर उनसे अधिक लाभ ले सकते हैं। किन्तु संयम पालें तभी। अतः आप वहाँ जो आवे उसे यही उपदेश देना जो ब्रह्मचर्यका पालन कर देवोंको मात करदो। त्यागधर्मका व्याख्यान करना यह पत्र सुना देना, यह आकांक्षा न करना जो हमारे आश्रमको यह बलाय मिले। सर्व मंडलीसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६६]

योग्य इच्छाकार

हम तो शान्ति उसको समझते हैं जहाँ फिर उस विषयका विकल्प ही न उठे। हम तो अब तक ऐसे शान्ति रसास्वादनसे वञ्चित हैं। हाँ, श्रद्धा अवश्य है और यह विश्वास है कि काल पाकर शान्ति भी मिलेगी। आप लोगोंके चक्रमें आ गये। यह आपका दोष नहीं हमारी मोहकी दुर्बलता है। अन्यथा कोई कुछ नहीं कर सकता। आत्मा सर्वत्र स्वतन्त्र है परन्तु मोही जीव निरन्तर पर पदार्थोंसे दोषारोपण करता है। कल्याणका मार्ग कहीं नहीं आप ही मे है। यदि आप इसपर अमल करोगे तो अल्पकालमें सुखके पात्र हो जाओगे। यदि मोहके आवेगमें आकर इतस्ततः भ्रमण करोगे तब जैसे वर्तमानमे हो वही रहोगे। केवल गाँठका द्रव्य खो दोगे। हमारी तो यही सम्मति है कि किसीके चक्रमे न आओ, अन्यथा जो संसारी जीवोंकी गति है वही गति होगी।

भाद्रपद सुदी १३, सं० २००५ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६७]

योग्य इच्छाकार

आत्मा अनादिसे अनन्त ज्ञायक है। परद्रव्यसे भिन्न स्वरूपसे अभिन्न होकर भी अनादिसे कर्मबन्धके साथ यह दशा हो रही है जो प्रत्येक प्राणीको अनुभूत है। कौन मनुष्य दुःख चाहता है परन्तु कर्मबन्धका ऐसा विलक्षण प्रभाव है जो परको निज मान जगत रागद्वेषमय हो रहा है। हाँ. ऐसे भी विरले प्राणी हैं जो इस चक्रमें होकर भी शान्त हैं। इसका आश्चर्य नहीं।

भीतरकी निर्मलतामें वह शक्ति है जो इन सब विरुद्ध समागमके सद्भावमें भी जिसके प्रभावसे जलमें कमलवत् निर्लेप रहते हैं वह प्राणी इनमें है। कुछ उनका देश भिन्न नहीं। कहना कुछ शान्तिका उत्पादक नहीं है। शान्तिका उदय अन्तरंगमें स्वाभाविक परिणामसे होता है। मोहके अभावमें आत्मा विकृत भावोंसे रहित हो जाता है। यही कैवल्यावस्था है। इसकी महिमा कुछ पदार्थोंके आभाससे नहीं और न प्रतिभास सुखका कारण है। अतः हमको आवश्यकता विकृत भावोंसे बचनेकी है। यदि विकृतभाव औदयिक होवे, होने दो। उसमें निजत्व कल्पना न करो। इससे अधिक हमारा पुरुषार्थ नहीं। बड़े-बड़े पुरुष भी इससे अधिक क्या करते है? कुछ नहीं; केवल अभिप्रायकी निर्मलता है जो बुद्धिपूर्वक सर्व दुःखापहारिणी है। अतः उसको निर्मल बनाना ही हमारा कर्तव्य होना चाहिये। स्वप्नमें भी किसीको अन्यथा नहीं मानना चाहिये और न किसी प्राणीको शत्रु मानना चाहिये, चाहे कोई कितना ही अपकार करे। उसके प्रति हमारा विषादरूप परिणाम न होना चाहिये और चाहे कोई कितना भी उपकार करे उसके प्रति हर्षभाव न होना चाहिये। हर्ष-विषाद दोनो ही परिणाम विकृत हैं। मोहसे इनमें उपादेय और अनुपादेय बुद्धि होती है। दोनो ही संसारके जनक हैं। हमको तो कुछ विशेषता प्रतीत होती नहीं, जिससे उसके विषयमें हम क्या कह सकते हैं? मेरा यह विश्वास है, अन्यका अभिप्राय अन्य कुछ नहीं कह सकता। जो व्यवहार होता है वह निजके ज्ञानमें जो आता है वही कहा जाता है। प्रमाणके लिये यह कहा जाता है—भगवानके ज्ञानमें ऐसा ही आया है।

कठघर कूपिका
आषाढ शु० ८, सं० २००८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-६८]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया,संतोष हुआ। तब तो परमार्थसे यही है जो परपदार्थ को पर मानना आपको आप मानना। ज्ञानमें ज्ञेय आता है यह तो उसकी स्वाभाविक स्वच्छता है। उसमे ज्ञेय झलकता है अर्थात् ज्ञेय निमित्तक ही वह विकारावस्थाको प्राप्त होता है। व्यवहार यह होता है हम ज्ञेयको जानते हैं। आपके पत्रसे यह निश्चय हो गया जो आप समयसारके तत्त्वको समझने लगे हैं। रागद्वेषकी हानि स्वयमेव ज्ञानीके हो जाती है। हम कुछ नहीं जानते ऐसा स्वप्नमे भी खेद नहीं करना चाहिये। तत्त्वसे विचार करो, केवलीके ज्ञान और सम्यग्दृष्टिके ज्ञानमें विशेप अन्तर नहीं। वे भी स्वपरको जानते हैं यह भी स्वपरको जानता है। वे बहुत पर्यायोंको जानते हैं यह अल्प जानता है। सूर्य दीपककी तरह ही तो अन्तर है। अतः खेद करना हाय हम कुछ नहीं जानते अच्छा नहीं। स्वपरभेद ज्ञानसे अन्य अब क्या चाहते हो। रागादिक होते हैं एतावता सम्यग्दृष्टिके क्या बिगाड़ हो गया। उन्हें ज्ञेयरूप ही तो जानता है। औदयिक भाव ही तो उन्हें मानता है। उन परिणामोको उपादेय तो नहीं मानता। जैसे मुनि महाराजके संज्वलनके उदयमें महाव्रतादि होते हैं, उन्हें करता भी है और यथायोग्य भोक्ता भी होता है परन्तु वह मुनि उन्हें उपादेय नहीं मानता। जिन्हें उपादेय नहीं मानता उनके होनेमें परमार्थसे प्रेम नहीं। इसीतरह सम्यग्दृष्टि जीवोंकी विषय कषायके कार्योंमें पद्धति है। उनकी गाड़ी मोक्षमार्गमे तेज चालसे जा रही है और इसकी मन्द चालसे जा रही है, अन्तर इतना ही है। अतः सर्वप्रकार के विकल्पोंको त्याग स्वाध्याय करते जावो। अन्य विकल्प करनेकी चेष्टा न करो तथा वह अच्छा और अमुक निकृष्ट

यह सब विकल्पोंको त्यागो। आपके पत्रसे हमको प्रसन्नता हुई। आप जब अवकाश मिले, आना। निःशल्य होकर आना।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६--६९]

श्रीयुत् महाशय ला० मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

अपने परिणाम निर्मल करनेकी चेष्टा करना ही पुरुषार्थ है। असंख्यात लोकप्रमाण कषाय हैं। कल्याणका मार्ग सुलभ है। सरलता चाहिये। जो काम करें निष्कपटतासे करें। हमको आपका देश इष्ट था, क्योंकि उस प्रान्तमें विवेकी हैं किन्तु हमारी मोहान्धता ने यहाँ ला पटका। परन्तु इसका भी विषाद नहीं। हमने अपनी परीक्षा कर ली। आप किसीसे ममता न करना। मैं तो कोई वस्तु नहीं परमात्मासे भी ममता न करना। यही तत्त्व है। स्नेहको निर्मूल करना यही भावना हितकारी है। हमको इस बातकी बड़ी प्रसन्नता है कि आप अब पहिलेसे बहुत शान्त हैं। मेरी मुजफ्फर-नगरवालोंसे दर्शनविशुद्धि कहना।

सागर
जेष्ठ सुदि ६, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६--७०]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आपका लाला सुमेरुचन्द्रजी के पास आया, समाचार जाने। महाशय! व्यग्रता बाह्य कार्योंसे नहीं होती। व्यग्रता यदि अन्तरंगमें हो तब समझना चाहिए कि अब हमारा पतन हुआ।

ऐसे तो आप जानते हैं हम आपको प्रतिदिन व्यग्र होना पड़ता है। अन्तरङ्गसे पर को पर समझो। निरन्तर अपनेमें दोष और गुण की परीक्षा करते जाओ। जो गुणों की वृद्धि हो, जानो आज दिन अच्छा गया। हमको उस ओर बुलाने की चेष्टा करना कोई लाभदायक नहीं। अव हमारी शक्ति नहीं कि कुछ कर सकें। आप स्वाध्याय करो और इन सम्मेलनोंके चक्रमें न पड़ो।

वरुआसागर } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–७१]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपका पवित्र विचार ही संसार वन्धन मिटानेमें कारण है। पर तो पर ही है। पदार्थ व्यवस्था इस प्रकार की ही है। हम आज तक आत्मीय स्वरूप को जाने विना ही पर को निज मान भ्रमण कर रहे हैं। जव यह निश्चय हो गया कि हम ज्ञाता दृष्टा हैं तव फिर स्वय यह भ्रम जो हमे परमें आत्मा मना रहा था अनायास चला जावेगा। देखो अष्टावक्रगीतामें लिखा है–

> श्रद्धस्व श्रद्धस्व तात नात्र मोहं कुरुष्व भो।
> ज्ञानस्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परः॥

अत. सर्व विकल्प त्याग उपेक्षा को अपनाओ। हम संसारी कायर हैं ऐसी हीनता नियमसे छोड़ दो। भगवान् के समक्ष भी अज्ञानी वनकर स्तवन मत करो। जव आपने भगवान को जान लिया तभी तो भक्ति करते हो फिर अज्ञानी मानना अच्छा नहीं।

हमको आपका समागम इष्ट है। अब हमारी अवस्था भी पकपान सदृश है। कब आओगे, उत्तर देना। हम सागर ही हैं।

बरुवासागर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–७२]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, चश्मा नहीं मिला। यदि कल्याण चाहते हो तो स्वतंत्र बनने का प्रयास करो। पर जितने हैं पर हैं वे हमारा क्या कर सकते हैं? हम उनका क्या कर सकते हैं? यदि इनको अपनाया अपने अस्तित्वमें अन्तर आया, क्षति हुई। मेरी बात मानो किसी का भी साथ मत करो। आप ही का साथ करो।

क्षेत्रपाल–ललितपुर
कार्तिक सुदि २, स० २००८ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–७३]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी सा०, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, अब सर्व विकल्प छोड़कर अन्तरंग मूर्च्छा को कृश करो। कल्याण का मार्ग आप ही में है। व्यर्थ संसारमें भटकना है। निमित्तमें निमित्तका परिणमन रहेगा। उपादानमें उपादानका परिणमन रहेगा। निर्विवाद विषयमें विवाद करने का समय नहीं। अनादिसे हम अपनी ही भूलसे

ही वन्धको प्राप्त हो रहे हैं। जिस समय यह अज्ञान गया अनन्त संसार चला गया। विशेष यह है कि परकी आशा छोड़ो।

२०,१०,५० }
आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-७४]

श्रीयुत लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मैं हृदयसे कहता हूँ जो परके अतिशयको जानकर मत लुभाओ। व्यर्थके परिणमन हैं, होवे ही रहते हैं। शुद्ध जीव पदार्थके परिणमनको आगम द्वारा जानकर उसके ऊपर भी लुभानेकी चेष्टा मत करो। होना था हो गया। यदि शुद्ध परिणमनसे मोहित हो तब आकाशादि पर क्यों नहीं मोहित होते। कदाचित् यह कहो जो उसमें चैतन्यशक्ति नहीं। शुद्ध जीवमें जो चैतन्य शक्ति है क्या उससे तुम्हें कुछ लाभ है या नहीं ? लाभ होता है यह तो कह नहीं सकते। 'अएणदवियेण' गाथा देखो। तब यही कहना पड़ेगा जो कुछ नहीं। तब जैसे शुद्ध आत्मा वैसे ही आकाश। कदाचित् कहो—उनमें शुद्ध चैतन्यका परिणमन होनेसे राग होता है तब राग तो वन्धका ही कारण हुआ। अत. ऐसा चिन्तवन करना चाहिए जिससे राग न हो फिर चाहे वह शुद्ध चैतन्यका हो व शुद्ध द्रव्यका हो व घटादिकका हो। अतः इन अतिशयके विकल्पोंको त्यागो और आत्महित करो। हमसे भी अब विकल्प त्यागो। जब आपकी इच्छा हो आजाना, न हो न आना। हम तो यही चाहते हैं और उसीको प्रवल आत्मा मानते हैं जो आपको रागादिसे लिप्त नहीं होने देता। शास्त्रस्वाध्याय करनेका यही फल है जो परपदार्थोंमें इष्टानिष्ट कल्पना मिट जावे।

पर पदार्थ न तो मिटेंगे और न तुम्हारी इच्छाके अनुकूल

परिणमन करेंगे। व्यर्थके उपद्रव बलात्कार क्यों करते हो ? सनत्कुमार व उसकी माँ का स्वामित्व छोड़ो, चाहे घर रहो चाहे अन्यन्त्र रहो। विशेष क्या लिखें ? जो लिखते हैं अपनी परिणतिसे दुखी होकर लिखना पड़ता है, लिखना नहीं चाहते। जिस दिन पत्र देना आपसे छूट जावेगा फिर आप जान लेना अब वर्णीजीका हमसे सम्बन्ध नहीं रहा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–७५]

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, इच्छाकार

बहुत काल बाद पत्र आया। शान्ति आपको आई, इसका कारण आपकी निज परिणति है। अन्य तो निमित्तमात्र हैं। अतः आप तो विशेष प्रयास, जिससे कि स्थायिनी शान्तिके पात्र हो, उसीमें करिए। मैं तो जो हूँ सो हूँ। किन्तु आराध्य आत्माओं का अवलम्बन त्याग स्वात्मावलम्बनमें ही रमण कीजिये। अनायास यह बन्धन हमें अनन्त संसारका कारण बना रहा है। बन्धन क्या हमारा जो स्वजन्य मोह है वह विलय जावेगा। श्री सनत्कुमारसे आशीर्वाद। यदि सुख चाहो तब स्वात्मावलम्बनका पाठ पढ़ो; आयके अनुकूल व्यय करो।

सागर
कार्तिक सुदि ३ सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–७६]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। कल्याणका मार्ग परावलम्बन त्यागे ही होता है। इस शिष्टाचार पद्धतिने अबोध-पद्धतिकी तरह

ही आज तक हमे निजस्वरूपसे वञ्चित रक्खा है। अतः अब इस पराधीनताको त्याग स्वाधीन मार्गमे लगना ही श्रेयोमार्ग है। आपने स्वाध्याय अच्छा किया है। अतः आपको विशेष क्या लिखूँ—आप आवेंगे उस समय स्वय ही यही कहेंगे। सनत्कुमारसे आशीर्वाद कहना तथा यह कहना जो थोड़ा-बहुत स्वाध्यायमे उपयोग लगावे तथा जहाँ तक बने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करे। विशेष क्या लिखें। जो जितना विषयोसे उदासीन रहेगा उतना ही अधिक प्रसन्न रहेगा। धनादिकी विपुलता सुखका कारण नहीं, मूर्च्छाकी न्यूनता सुखका कारण है। आप सागर ही आवें।

सागर
कार्तिक सुदि ६, स० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–७७]

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। भाई साहब कल्याणका मार्ग तो जहाँ हैं वहाँ ही है। यह तो हमारी आपकी कल्पना है जो पर भी कारण है इसका निषेध नहीं; परन्तु कार्य-सिद्धि कहाँ होती है इसपर दृष्टिदान देना चाहिये। सामग्री कार्यकी जनक है। किन्तु कार्य कहाँ होता है यह भी विचारणीय है। आप तो सानन्द स्वाध्याय करिये और जो कुछ परिणतिमे रागादिक हों उनमे तटस्थ रहिए। यही उनका त्याग है। अनन्त जन्म बीत गये; हमने अपनी परिणतिपर अधिकार न पाया। उसीका यह फल है जो अनन्त-संसारकी यातना भोगी। इसका खेद व्यर्थ है जो गयी सो गई। वर्तमान पर्यायको अन्यथा न जाने देना चाहिये

यही हमारा आपका कर्तव्य है। सब अच्छा होगा। हम दो मास और यहाँ रहेंगे।

सागर
अगहन बदि ३, स० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—७८]

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, इच्छाकार

आप आनन्दसे जीवन-यात्रा समाप्त करना। किसी की चिन्ता न करना। आत्मा एकाकी है। मोहके वशीभूत होकर नाना यातनाओंकी पात्र हो रही है। आप तत्त्वज्ञानी हैं। सब विकल्प त्याग कर अन्तिम कार्य करना। मुझे पूर्ण श्रद्धा है जो आप सावधानीपूर्वक उत्सर्ग करेंगे। आपके बालक समर्थ हैं। आप स्वयं समर्थ हैं। यही समय सावधानीका है। मूर्च्छा त्यागना। मैं तो कोई वस्तु नहीं; परमात्मासे स्नेह त्यागना।

सागर
अगहन वदि ६, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—७९]

श्रीयुत महाशय लाल मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपकी श्रद्धा निर्मल है, यही कल्याणकी जननी है। आत्मामें जो देखने-जाननेकी शक्ति है वह निरन्तर रहती है। तरतम परिणमन रहे; इससे हानि नहीं। हानि का कारण परमें निजत्व कल्पना है। यही संसार की दादी है।

जहाँ तक साम्य-भाव है, वहाँ तक ही यह निजस्वरूपमें रहता है। अगाड़ी बड़ा फँस गया। फँसानेवाला स्वय विकृत भाव है—

'साम्यसीमानमालम्ब्य कृत्वात्मन्यात्मनिश्चयम्।
पृथक्करोति विज्ञानी संश्लिष्टे जीव-कर्म्मणी॥'

अतः-आपत्ति आने पर स्वरूपसे च्युत न होना चाहिये। आप जानते हैं, नारकी कितनी वेदनामे ग्रस्त रहते हैं परन्तु वे भी उस अवस्थामें स्वरूपलाभके पात्र हो जाते हैं। अतः शारीरिक वेदना अन्तर्दृष्टिकी बाधक नहीं। फिर भी मोही जीव इस चक्रमें आते रहते हैं। पर-पदार्थका अणुमात्र भी अपराध नहीं।

'रागी बध्नाति कर्म्माणि वीतरागो विमुच्यते।
एषः जिनोपदेशोऽयं संक्षेपाद्बन्ध-मोक्षयोः॥'

सानन्दसे दिन बिताना और शीतऋतु बीतने पर आना। शीघ्रता न करना। बालकोंसे आशीर्वाद तथा हमारा यह संदेश कहना—स्वाध्यायमें दत्तचित्त रहें। चाहे १५ मिनटका कर्तव्य जान कर करें। ब्रह्मचर्य सभी पर्वों पर पालन करें।

सागर
अगहन सुदी २, स० २००९ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१९—८०]

श्रीयुत लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। आपका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा हो गया यह पढ़कर अति प्रसन्नता हुई और आप रोग-आक्रान्त होने पर भी स्वभावसे च्युत नहीं हुये इसकी महती प्रसन्नता हुई। यह तो

पर्य्याय कारणकूटसे उत्पन्न हुई है; एक दिन अवश्य ही विघटैगी। इसके रहनेका हर्ष नहीं और जानेका विपाद नहीं करना ही महापुरुषोंका मुख्य कार्य है। स्वभावमे विकृति न आने पावे यही पुरुषार्थ है। श्रद्धा अटल रहना ही मोक्षमार्गकी आद्य जननी है। आप निश्चिन्त रहिये और जो कुछ दृढ़ निश्चय किया है वह न जाने पावे; यही महत्ती पुरुषार्थता है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद फिर अनन्त संसारकी जड़ कट जाती है। फिर वह नहीं रह सकता। अपनी आत्मा ही अपनेको अनन्त संसारसे पार उतारनेवाली है। परावलम्बन ही बाधक है। आपके बालक सुबोध हैं। पुत्रोंका यही कर्त्तव्य था जो आपके पुत्रोंने किया। मैं उनको यही आशीर्वाद देता हूँ जो वे धर्ममे इसी प्रकार निरन्तर दृढ़ रहें। आप शीत कालमे न आना। वसन्तऋतुमें आना। मुझे आनन्द है जो आपका जीवन धर्ममे जा रहा है। श्री सनत्कुमार दर्शनविशुद्धि। मेरीभावनाका पाठ कर लिया करो। यही सन्देश श्री इन्द्रकुमारको देना।

सागर — आ० शु० चि०

अगहन सुदी ४, स० २००६ — **गणेश वर्णी**

[१६—८१]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

समगौरया द्वारा वस्त्र आगये, उपयोगी हैं। आपका स्वास्थ्य अच्छा है। संयमकी सिद्धिका मूल है। अब शीत-काल में एक स्थान पर ही रहना और बाह्य परिश्रम विशेष न करना। समय पाकर ही विशेष कल्याण होगा। तथा मेरा तो निजका यह विश्वास है—जिसने मोह पर विजय प्राप्त करली उसने संसार

पर विजय प्राप्त करली। सबसे प्रबल अरिके विजय होने पर शेष कोई रहता ही नहीं। अन्य कर्मोंमे अरिकल्पना सहकारितासे है। परमार्थसे शत्रु तो मोह ही है। धन्य है उन महानुभावोंको जिन्होंने इस अरिको ही अरि समझा। जिसने इस पर विजय प्राप्त कर ली वही परमात्माका उपासक और निर्ग्रन्थपदका पात्र होता है। यह भी एक कहना कुछ दिनका है वह स्वय परमात्मा है। परमार्थ से वह वही है। उसकी कथा कहना मोहीका काम है। वह अनिर्वाच्य है। श्रीइन्द्रकुमार जी तथा श्री सनत्कुमार जी योग्य दर्शनविशुद्धि। जहाँ तक बने स्वाध्यायसे प्रेम करना।

सागर,
अगहन सुदि ६, स० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—८२]

श्रीयुत लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। कल्याणका मार्ग यही है जो परमें निजत्व कल्पना न करना। आपत्तियाँ तो औदयिकी हैं। आती जाती रहती हैं। ऐसा उपाय करना जो अब अग्रेतन कालमे न आवें। मूल उपाय यही है। उन्हें ऋणवत् अदा करता जावे। विशेष क्या लिखूं—सन्तोपसे जीवन विताओ।

सागर
अगहन सुदि १२, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—८३]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। कल्याणका मार्ग कहीं नहीं, अपनेमे ही है। आवश्यकता श्रद्धा एवं निर्मल परिणामोकी है। जिसकी श्रद्धा दृढ़ है उसका उत्थान अनायास हो जाता है। अनादि कालसे हमारी प्रवृत्ति परपदार्थोंमे रही। उसीसे आत्माका कल्याण अकल्याण मानकर मोह, राग, द्वेष द्वारा अनन्त यातनाओंके पात्र रहे। अतः इन पराधीनताके द्वारा हुए संकटोंसे यदि अपनी रक्षा करनेका भाव है तब अपनेको केवल जाननेका प्रयत्न करो। दृष्टि बदलना है। समीप ही श्रेयोमार्ग है। पराधीनता त्यागो। शुद्धचित्तसे परामर्श करो; कहीं भ्रमणकी आवश्यकता नहीं। उष्ण जलको शीतल करनेके अर्थ जैसे उष्णता दूर करनेकी आवश्यकता है, शीतलता तो उसकी स्वाभाविक वस्तु है। इसी तरह आत्मामे शान्ति स्वाभाविक है। परन्तु अशान्तिके कारण मोहादि शत्रुओंको दूर करनेकी आवश्यकता है। शान्ति तो अन्तस्तलमें निहित है। श्री सनत्कुमारजी आशीर्वाद। जहाँ तक बने बाह्याडम्बरसे बचना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—८४]

श्रीयुत लाला मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आये समाचार जाने। मेरा शरीर निरोग है। यह गल्प है जो मेरा फागुनमे अवसान होगा। आप चिन्ता न करें।

संसारमे शान्तिकी मूल चिन्तानिवृत्ति है। मेरी तो यह भावना है जो अपने स्वरूपको छोड़ अन्यत्र मनको न जाने दो। मोक्ष-मार्गका मूल कारण परमें निज कल्पनाका त्याग है। जिस कालमें मोहका क्षपण हो जावेगा राग-द्वेष अनायास चले जावेंगे। आप तो ज्ञानी हैं। सब पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं। फिर अपनाना कहाँका न्याय है। जिस हित अपनाया जावेगा अनायास यह आपत्ति टल जावेगी। आप भूलकर अभी आनेकी चेष्टा न करना। श्री सनत्कुमार आशीर्वाद। जितना निर्मल रहोगे उतना सुख पाओगे।

सागर
पौष सुदि १२, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—८५]

श्री महाशय, कल्याणके पात्र हो

पत्र आया, समाचार जाने। स्वाध्याय ही कल्याण करेगा। हमने कुछ नहीं किया। आपकी योग्यताने आपका विकाश किया। एक बार प्रवचनसार भी वांचना और जहाँ तक बने ममता त्यागना। सार यही है। संसार का बीज मोह है। यही जीतना ज्ञानियोंका काम है। अभी गर्मी बहुत है। वर्षामें आनेका विचार करना।

ईसरी बाजार,
जेठ वदि १, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-८६]

श्रीमान् लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

अन्तरङ्गसे जो रुचि है वही कल्याणका मार्ग है। अन्यत्र कहीं कुछ नहीं। इसका अर्थ यह है कि हमारे लिये कुछ नहीं, हमारा कल्याणमार्ग हम में ही है। हम जहाँ जावेंगे वहीं हममें है। आप जब आवें, बड़ी प्रसन्नता हमे है परन्तु कार्यकी उत्पत्ति तो आप मे ही होगी। स्वाध्याय करना परम धर्म है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ईसरी बाजार,
जेठ सुदि ११, स० २०११
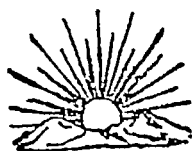
ब्र० गोविन्दलाल जी

श्री मान् ब्र० गोविन्दलाल जी का जन्म अषाढ़ सुदि १ वि० सं० १९३५ को गया में हुआ था। पिता का नाम श्री लछमण लालजी जैन था। जाति खण्डेलवाल और गोत्र लुहाड्या था। इनकी शिक्षा इंटरमेडिएट तक हुई थी। स्वाध्याय द्वारा इन्होंने अपनी धार्मिक योग्यता भी अच्छी तरह सम्पादित कर ली थी।

ये शिक्षा प्राप्त करने के बाद जजकी कचहरी मे शिरस्तेदारके के पद पर रह कर सरकारी नौकरी करने लगे थे। वहाँसे निवृत्त होनेके बाद इन्होंने ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली थी। इनके दीक्षा गुरु पूज्य श्री वर्णी जी महाराज ही थे।

पूज्य श्री वर्णी जी महाराजके सम्पर्कमें आनेके बाद अपना उदासीन जीवन व्यतीत करते हुए ये ईसरी उदासीनाश्रममें रहने लगे थे। इन्हे सरकारकी ओरसे पेंशन मिलती थी। इसलिए ये अन्त तक अपना खर्च स्वयं वहन करते रहे। इनके पास जो सम्पत्ति थी उसमेंसे लगभग ५-७ हजार रुपया इन्होंने दानमें भी व्यय किया था। वि० सं० २००६ कार्तिक मासमें समाधि-पूर्वक इन्होंने इहलीला समाप्त की थी। इनका जीवन निस्पृही, परोपकारी और धर्मनिष्ठ था। ये प्रायः पूज्य श्री वर्णी जी महाराजको उनकी अनुपस्थितिमें पत्र लिखा करते थे। यहाँ उत्तर स्वरूप पूज्य श्री वर्णी जी महाराजने इन्हें जो पत्र लिखे थे वे यहाँ दिये जाते हैं।

[१७—१]

श्रीयुत महाशय गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके द्रव्यको तो हम न्यायमार्ग का समझते हैं। परन्तु हमारा उदय अभी वहाँकी यात्राका नहीं, अन्यथा हमारा प्रयास विफल न होता, सरियातक आये। अकस्मात् पैरमे वेदना हो गई, अब एकदम शान्त है किन्तु मार्गमे स्वाध्यायकी त्रुटि हमको एकदम असह्य हुई जो कि हमारा जीवन है। यह शीतऋतु है। स्वाध्याय रात्रिमे ४ घंटा हमारा ईसरीमे होता था वह एकदम चला गया, अतः खेद हुआ। शक्ति तो हमारे पैरोमे १६ मील चलनेकी है। ६ बजे बाद चौधरीवान से चले और १२ मील चलकर १० बजे सरिया आगये। दूसरे लिखनेका एकदम अभ्यास छूट गया। हम रिक्सामे बैठना तो उचित नही समझते। मनुष्य सवारीका तात्पर्य डोलीसे है सो भी जव चलनेकी शक्ति एकदम न रहे उस समयकी बात है। आप जानते हैं कि मैंने जब गिरिराजपर डोलीपर जाना अनुचित समझा तब श्रीवीरप्रभुके निर्वाणक्षेत्रको रिक्सा पर नहीं जा सकता। वन्दनाका अर्थ अन्तरङ्ग निर्मलता है। जहाँ परिणामोंमे संक्लेश हो जावे वहाँ यात्रा जानेका तात्त्विक लाभ नही। आपने लिखा कि हमारे द्रव्यसे यदि यात्रा नहीं करना चाहते तो श्री कन्हैयालालजी वा श्री पतासीबाई खर्च करनेको प्रस्तुत हैं सो यह कहना तो तब उचित था जब आपके द्रव्यको अयोग्य समझता। तथा मेरे पास भी १००) थे जिनको,मैंने बनारस भिजवा दिये। अब यदि २ मास बाद निमित्त मिल गया तब जा सकते हैं परन्तु अभी तो शीत-कालमें नहीं जावेंगे। समयसारकी यात्रा करेंगे। यह नियम तीन मास तक लिया है जो प्रातःकाल स्वाध्यायके समय बोलना और

फिर नहीं बोलना। तथा ईसरी जाकर १ मासमे एकबार ही पत्र डालना, प्रतिपदाको पत्र देना। शेप कुशल है। यदि मेरे निमित्तसे आपको कोई प्रकार व्याकुलता हुई हो तो क्षमा करना जो कर्मरूप उसमें मैं हो गया।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७–२]

श्रीयुत बाबू गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आपका वा श्रीबाबू राजेन्द्रकुमार जवेरीका वा पुनः कितारी और दूसरा पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं यह संसार रागद्वेषमूलक है। तथा जब हमारे पास परिग्रह है तब हम कहे–हमें इसकी मूर्च्छा नहीं, असम्भव है। वह विकल्प नहीं, अन्य होगया। विकल्पजाल छूटना ही मोक्षमार्गका साधक है। हमारा दिन मौनका सुख और शान्तिमें जाता है। निमियाघाटसे ईसरी आगये, परन्तु स्थान यदि मेरेसे पूछा जाय तब निमिया-घाट शान्तिप्रद और रम्य तथा जल व वायु दोनोंकी अपेक्षा ईसरीसे अच्छा है।

आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[१७–३]

श्रीयुत बाबू गोविन्दप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा यहाँ आनकर संसार समुद्रके विषभँवरमे फस गये, सो छूटे कब थे ? बाबूजी जबतक आभ्यन्तर मोहकी

सत्ता बलवती है तबतक इस जीवका कल्याण होना दुर्लभ है। आचार्योंने जो लिखा है 'निःशल्यो व्रती' सो इतना उत्तम लक्षण है जो वचनागोचर इसका भाव है। हम धर्मसाधन तो करना चाहते हैं और उसके अर्थ घर भी छोड़ देते हैं, धन भी छोड़ देते हैं परन्तु शल्य नहीं छोड़ते। यही कारण है जो आप बिना फंसाये फंस गये। अस्तु अब इस कथाको छोड़ो। श्री रतनलालके वियोगसे इस समय उसकी अनाथ विधवा असहाया तथा हीना है, अतः आपका जितना पुरुषार्थ हो उसे लगाकर उसके धनकी रक्षाका प्रबन्ध कर देना तथा उन दोनों माँ बेटीकी सुरक्षित स्थानमें रहनेकी व्यवस्था करके ही अबकी बार निःशल्य होकर ही आना। हम लोग अभी बहुत जघन्य श्रेणीके मनुष्य हैं और चाहते हैं कि उत्तम श्रेणीवालोंके आत्मीक रसका आस्वाद लेवें। सो स्वाद तो दूर रहा जो है उसीके स्वादसे वञ्चित रहते हैं। उतावली न करना, धीरतासे काम करना। यदि उसके कुटुम्बी आपत्ति करें तब पञ्चायतकी शरण लेना। श्रीयुत बाबू विलासरायजी तथा सेठी चम्पालालजी आदि वहाँ हैं। आप कुछ भी भय न करना। आप स्वयं ३० वर्ष अदालतमे बिताए, आप क्यो भीरु होंगे? राजगृही जानेका विचार पक्का है परन्तु कारणकूट मिलने पर ही तो कार्यमे परिणत होगा। आजकल सेठी प्रेमसुखजी ३ दिनसे ज्वरसे पीड़ित हैं कुछ नहीं खाया। आज कुछ शान्ति है। शेष ब्रह्मचारी आपको इच्छाकार कहते हैं। श्रीकुञ्जीलालजी अच्छे हैं। भगतजी कलकत्ते गये। यह न समझना हमें बिल्कुल नादान समझ लिया। आपका तो उनसे सम्बन्ध था इससे यदि दुःख हो तो आश्चर्य नहीं। परन्तु हम तो आपसे भी विलक्षण हैं जो बिना सम्बन्धके दुखी है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७—४]

श्रीयुत महाशय वावू गोविन्दप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

रतनलालजीका असामयिक स्वर्गवास अतिदुःखका कारण सुननेवालोंको हुआ। फिर आपकी तो कथा ही दूसरी है। सबसे बलवान दुःख तो उसकी गृहिणी और बच्चीको हुआ होगा। आप जहाँ तक बने उन्हे अच्छी तरह सान्त्वना देना, क्योंकि आप उनके हितैषी हैं। विपत्तिमें शान्ति देना उत्तम पुरुषोंका काम है। संसार दुःखमय है। वही पुरुष इसमे सुखी हो सकता है जो मूर्छा छोड़े। परन्तु वह विचारी अनाथ विधवा क्या कर सकती है? उसकी रक्षा करना मेरी समझमे एक महान् पुण्यके बराबर है। विशेष क्या लिखें। हमारा आप कोई विकल्प न करना। योग्यता मिलने पर राजगृही जावेंगे। हमारे तो श्री पार्श्व-नाथ और वीरप्रभुमे कोई अन्तर नहीं।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७—५]

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हमने पत्र दिया है। हमारा विचार राजगृही जानेका है परन्तु अभी जाना कठिन है, अतः आपको यदि अवकाश हो तो देख जाना। ससार दुःखमय है। इससे उद्धारका उपाय मोहकी कृशता है। उसपर हमारी दृष्टि नहीं। दृष्टि क्यो हो, निरन्तर पर-पदार्थो मे रत हैं, अत. तत्त्वज्ञान भी कुछ उपयोगी नहीं। केवल

तत्त्वज्ञानका उपयोग, हमारी प्रतिष्ठा रहे इसीके लिये है। व्रतादिकका उपयोग पर पदार्थकी मूर्च्छा जाए विना कुछ नहीं। सेठ कमलापतिका कोई समाचार नहीं। अति लोभी; एक पोस्ट कार्ड तक नहीं दिया। आपकी उनपर बड़ी श्रद्धा है तथा उनकी आप पर है, अतः एक पत्र डाल देना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आप हमारी चिन्ता न करना, क्योकि उदयाधीन सर्व सामग्री मिलती है। आपका आना तब होगा जब वीर प्रभुने ज्ञानमे देखा होगा। कहने से कुछ नहीं, अतः निःशल्य होकर वहीं सानन्दसे स्वाध्याय आदिमें समय बिताइए यही कल्याण का पथ है। देखिए उदयकी बात, हमारे मनमें यह आई थी जो आपसे ताजा घी मगावें, परन्तु मनने कहा क्यों लिखते हो पर आपने भेज दिया। यह क्या है उदय ही ता है। यह सर्व होकर भी मनुष्योंकी यथार्थ प्रवृत्ति न हो यही आश्चर्य है!

श्रीयुत लालचन्दजी से इच्छाकार, आप सानन्द नित्य नेममें उपयोग लगाइए यही पर्यायका लाभ है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७–६]

श्रीयुत महाशय गोविन्द बाबु, योग्य दर्शनविशुद्धि

बन्धुवर, आप रञ्चमात्र विकल्प न करना। आपको मेरी प्रकृतिका पता है। फिर आप लिखते हैं—आपका क्षमा मॉगना (   ) का कारण है। नहीं, मेरी बाल्यावस्थासे ही किसी भी प्राणीके प्रति स्वप्नमे द्वेषबुद्धि नहीं रहती फिर आप तो हमारे

धर्मात्मा स्नेही सज्जन हैं। प्रत्युत आपके विना मुझे यहाँ वहुत ही खेदसा रहता है। मैं उनसे प्रसन्न रहता हूँ जो अन्तरंग खुश दिल रहते हैं। अव आप मेरी तरफसे कोई भी कणिका शल्यमयी न रखिये और जहाँ तक वने धर्म ही अपना कल्याणकारी है इसी ओर लक्ष्य रखियेगा। मैंने ब्रह्मचारियोंसे पूछा तव निम्न पुस्तकें उनने माँगी। समयसार सटीक ब्रह्मचारी भगवानदास और ब्र० आत्मानन्द, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ब्र० कमलापति। १ पत्र आप इस पतेसे डाल देवें, वी० पा० का पता ईसरी मगलसेनके नाम लिख देवें। मोक्षमार्ग मिलता नहीं, अतः नहीं लिखा। और पुस्तकें आपके आनेपर मॅगावेंगे। वादाम प्रायः मैं जबसे आम आए नहीं खाता, अतः हमारे व आपके व जगत पूज्य पार्श्वप्रभुके चरण समर्पितका रञ्ज न करना। फिर भी हम भी तो आखिर छद्मस्थ अल्पज्ञ प्रमादी जीव हैं। यदि किसी प्रकारकी त्रुटि हो जावे तो उसे अनात्मधर्म जान वस्तु मर्यादा जान दृढ़ ज्ञानी होना, न कि खेद करना। आप जानते हैं आज तक हम और आप जो इस संसारमें भ्रमण कर रहे हैं उसका मूल कारण यही प्रमाद दशा है। यदि हम प्रमादसे अन्यथा लिख देवें तव क्या यह लिखना श्रेयस्कर होगा, कदापि नहीं। अथवा आप लिख जावें अथवा कोई लिख जावे, प्रशंसनीय नहीं। जव आप यहाँ शुभागमन करेंगे मैं सव समाधान कर दूंगा। और भी लिखता हूँ मेरी ऐसी प्रकृति है जो विना देनेवालेकी मर्जीके विना तथा अपनी आवश्यकताके विना रुपया व्यय करना नहीं जानता। स्याद्वाद विद्यालयसे अन्तः प्रेम है, अतः पुनरुक्ति आदि आपसे हो गई न कि भ्रम। मेरे पास अव कुल १०००) था उसमें ७००) और स्याद्वाद विद्यालयमें देनेका निश्चय किया है। केवल डाकखानेसे निकालनेका विलम्ब है, । ३००) रह गये हैं, इसीमें

स्वकीय आयुको पूर्ण करूँगा। यदि न्यूनता पड़ेगी, आप सज्जन हैं, मुझे किञ्चित भी विकल्प नहीं। शष आपके सर्व समाचार लोकोंसे कह दिये। आपका पत्र आने पर सन्तोष होगा।

जेठ सुदी ६, सं० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७–७]

श्रीयुत महाशय बा० गोविन्दलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे यह एक पद्धति लिखनेकी है। वास्तव आनन्द तो तब होगा जब यह रागादि शत्रु दूर हों। इनके सद्भाव में काहेका आनन्द। जिस रोगको हमने पर्याय भर जाना और जिसके अर्थ दुनियाँके नामी वैद्य हकीमोंको नब्ज दिखाया तथा उनके लिखे या बने या पिसे पदार्थोंका अनुपान किया और कर रहे हैं वह तो वास्तवमें हमारा रोग नही, जो रोग है उसको न जाना और न उसके जाननेकी चेष्टा की और न उस रोगके वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट रामवाण औषधका प्रयोग किया। यद्यपि उस रोगके मिटनेसे यह रोग सहज ही मिट जाता है। जैसे सूर्य्योदयमें अन्धकार। अस्तु, अब मैं यहांसे जेठ सुदी १ या २ को चलूंगा। कोईको मेरे पास भेजनेकी आवश्यकता नहीं, मेरा उदय ऐसा ही कहता है जो सानन्द रहो और किसी को अपनेसे कष्ट मत पहुँचाओ तथा पर्यायकी सार्थकता करो यही तुम्हारा कर्त्तव्य है। श्री चन्दाबाईसे मेरा इच्छाकार कहना। मैं तो उन्हें बहुत सज्जन और धर्मात्मा जानता हूँ। यद्यपि मेरा विचार जल्दी आनेका न था परन्तु ऐसा ही होना था, निश्चित सिद्धान्त तो

यही है, आजका यह भाव है। श्री छोटेलालजीको इच्छाकार तथा सर्व ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार। जो मनुष्य अपनी आलोचना करेगा वह संसारसे पार होगा। जो परकी समालोचनामें अपना समय लगावेगा वह संसार मध्यका पात्र होगा, विशेष क्या लिखें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७—८]

श्रीयुत बा० गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अपरच हमारा आना जाना पराधीन हो गया। यहांसे मैंने कई बार आनेका प्रयत्न किया परन्तु कारण कूटके न मिलनेसे नहीं आ सका। अब गर्मी बहुत पड़ने लगी है। यहां पर केवल ४ बजे तक गर्मी रहती है। इस से यह विचार किया जो जेठ भर यहीं रहना उत्तम होगा, क्योंकि वहां की अपेक्षा गर्मी कम पड़ती है। आज पं० नन्हेंलालजी वैद्य आए हैं। २०) मासिक का १ मकान भाड़ा लेनेका विचार है। नन्हेंलालको भेज देवें। जैसे आश्रमवाले कहें सो लिखना। आश्रमवासी सम्पूर्ण ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार। श्रीयुत प्रेमसुखजीसे दर्शनविशुद्धि।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७—९]

श्रीयुत बा० गोविन्दलालजी, दर्शनविशुद्धिः

पत्र आया, समाचार जाने। आपकी जो श्रद्धा है उसके हम स्वामी नहीं। परन्तु हमारी श्रद्धा है जो किसीके उपदेशका किसी

पर प्रभाव नहीं पड़ता है। यदि ऐसा था तब अनन्त बार समवसरणमे गए और अनन्तबार द्रव्यलिंग धारण कर ग्रैवेयक गए परन्तु आत्मकल्याणसे वञ्चित रहे, अतः मेरे निमित्तसे आप आनेकी चेष्टा कर रहे हैं यह मेरी बुद्धिमे नहीं आता है। बच्ची की दयासे वहां पर हैं यह भी बुद्धिमे नहीं आता है। जिस मोहसे ठहरे हो उसका नाम भी नही। अपने मोहभावसे सर्व चेष्टा है, बच्चीकी दया नहीं। अपने परिणाममे जो उसके निमित्तसे अनुकम्पा हुई है उसके दूर करनेकी सर्व चेष्टा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-१०]

श्रीयुत महाशय गोविन्दरामजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द आ गए। उदयाधीन सामग्री भी मिल गई, परन्तु गर्मीका प्रकोप सर्वत्र है। सर्वसे बड़ा सुख इस बातका हुआ जो चित्त अब क्षुब्ध नहीं होता। हमारा यह विचार यहां आनेसे हुआ जो श्री तीर्थराजको छोड़ गृहस्थोंके सम्बन्धमे रहना अच्छा नहीं, क्योंकि ममत्व ही बन्धका जनक है। यहां तक निश्चय किया, चाहे आप लोग रहो या न रहो। भाद्र मास तक तो ईसरी ही रहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-११]

श्रीयुत बाबूजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

दुःख तो कल्पनामे है, कल्याण आत्मामें है। मैं स्वयं अकिंचित्कर आपसे पुरुषोंका उपकार कर सकता हूँ? फिर फागुन वदी १ को वहा आऊंगा ही। श्रीप्रेमसुखजीसे दर्शन-विशुद्धि। कलकत्तेसे कोई समाचार आया नहीं। गृहस्थका संग दुःखद है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-१२]

श्रीयुत महाशय बाबूजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द स्वाध्याय होता होगा, स्वाध्यायका फल रागादिकों की उपशमता है। यदि उपशमता तीव्रोदयसे न भी हो तब मन्दता तो अवश्य ही होनी चाहिये। मन्दता भी न हो तो विवेक अवश्य होना चाहिये। यदि विवेक भी न हो तब तो स्वाध्याय करनेवालेने क्या लाभ स्वाध्यायसे लिया। जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको निरन्तर अवनतकर तात्त्विक सुधार करनेका प्रयत्न करता है वही इस व्यवहारधर्मसे लाभ उठा सकता है। जो केवल ऊपरी दृष्टिसे शुभोपयोगमें ही सन्तोष कर लेते हैं वे उस पारमार्थिक लाभसे जिससे चिरकालीन शान्ति मिले वचित रहता है। जो परिग्रह वर्त्तमानमें आकुलता का उत्पादक है यदि व्यवहार धर्मसे वह मिल गया तब मेरी समझमें आकुलताके सिवाय क्या लाभ

उठाया ? यदि अज्ञानी जीव इससे सन्तोष कर लें तब आश्चर्य नहीं। परन्तु जो स्वाध्याय करके तत्त्वज्ञानके सम्पादन अर्थ निरन्तर प्रयास करते हैं यदि वे मनुष्य सामान्य मनुष्योंकी तरह भी इसीमें सन्तुष्ट हो जावें तब आश्चर्य है। जिन्होंने शान्तिके ऊपर ही अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है उन्हें इन बाह्य ज्ञेयोंमें उलझना उचित नहीं। अपनी लालसाको छोड़नेके अर्थ जिन जीवोंने त्यागधर्मको अङ्गीकार किया फिर भी उन्हींकी तरफ यदि लक्ष्य रक्खा तब उस जीवने उस त्यागमें क्या लाभ उठाया। क्योंकि त्यागका अर्थ आकुलताका अभाव है। यदि वह न हुई तब उस त्यागसे क्या लाभ ? जितने कार्य्य संसारमें मनुष्य करता है उसका लक्ष्य सुखकी ओर रहता है और सुखोत्पत्ति वास्तव रीतिसे विचार किया जावे तब त्यागसे ही होती है। इसीसे जैनधर्मका उपदेश त्यागको लक्ष्य करके ही है। यदि इसपर लक्ष्य न दिया तब वह मार्मिक ज्ञानी नहीं। इसके ऊपर जिनकी दृष्टि रही वही त्याग कर सफल प्रयत्न हो सकते हैं। हम जेठ बाद आवेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-१३]

श्रीयुत बाबुजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मनुष्य वही है जो निर्द्वन्द्व रहे। हम तो ऊपर से बहुत चेष्टा निर्द्वन्द्व होनेकी करते हैं परन्तु आभ्यन्तर व्यापारके बिना कुछ। होता नहीं। वहां की उपेक्षा यहां अशान्तिके बहुत बाह्य कारण हैं फिर भी उनसे आत्मरक्षाकी निरन्तर चेष्टा रहती है। मोही जीव

बाह्य कारणोंसे पृथक् होनेका प्रयत्न करता है परन्तु जो कारण हैं अशान्तिके हैं उनका परिज्ञान ही नहीं। यही कारण है कि एक बाह्य कारणसे छूटता है और उससे कहीं अधिक संग्रह कर लेता है यही तो महती मूढ़ता है। जब तक इसको न निकालेगा सभी प्रयाश निष्फल हैं। हम अपनी व्यवस्था जो अनुभूत है लिख रहे हैं। आप लोगोंकी आप जानें या वीर प्रभु जानें। हम भी जानते हैं परन्तु हमारा जानना अनुमानाभास भी हो सकता है। आभ्यन्तर कलुषताको छोड़नेकी चेष्टा ही मोक्षमार्गमें जानेकी गली है। इस गलीसे मोक्षमार्गका पन्थ दीखता है।

सागर
जेष्ठ वदि ११ सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७–१४]

श्रीयुत् बाबु गोविन्दप्रसाद जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। भाग्यवान् जीव ही श्री १००८ पार्श्व प्रभुके निर्वाण क्षेत्रमें निवास करनेका पात्र होता है। आप लोगोंके सौभाग्यका उदय है जो निराकुलतामें धर्म साधन कर रहे हैं। ऐसी भावना भावो जो हम भी आ जावें। अब हमारा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। २ या ३ वर्षके मिहमान हैं, आप लोगोंके समागममें समाधिमरण हो। अन्तिम आशा है जो अन्तिम संस्कार श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमें आप लोगों द्वारा हो। पं० शिखरचन्दजीसे दर्शनविशुद्धि। योग्य व्यक्ति हैं। जो त्यागी महाराज हों, सर्वसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७–१५]

श्रीयुत बाबु गोविन्दलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। पैदल चलनेवालोंको गर्मी और शर्दीका पता मालूम होता है। सवारीमे जानेवालोंको इसका बोध नहीं। हमे श्री गिरिराज आना इष्ट है परन्तु किस प्रकार पहुँचेंगे इसका पता नहीं। उदय ही पहुँचायेगा। उदय भी पुरुषार्थका भेद है। किन्तु एक बात स्मरण रखना—हमको बहुत अंशोंमे आपकी समाज नहीं चाहती, अतः सब तरहसे परामर्श करके ही हमारे बुलानेका प्रयत्न करना। अभी कुछ नहीं गया है। श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरके पट्टशिष्योंने हमको कमंडलु छीननेकी धमकी दी है। प्रायः आपकी समाज अधिकांशमें उनके श्रीमुखसे निकला उसे ही आर्षवाक्य मानती है, अतः हम तो आवेंगे ही परन्तु अब आप लोगोंके द्वारा आना अच्छा नहीं। इसे अच्छी तरह विचार लेना। व्यर्थके झगड़ेमें मत पड़ना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वाध्याय ही परम तप है। प्रायश्चितके विषयमे लिखा था सो कोई विकल्प न करो। यदि विकल्प मेटना है तब दो दिन मौनसे बिताओ और एक पात्रको भोजन करा देना।

इटावा
चैत्र सुदि ६ सं० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७–१६]

श्रीयुत बाबु सा०, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हम तो आपके द्वारा स्वप्नमे भी अपमानित नहीं किए जाते, क्षमा काहे की करें। आप

सानन्दसे धर्म साधन करिए। आपके हृदयमें यह कैसे आ गई जो मैं विलायत जाता हूं और यदि आगमानुकूल जाऊँ तब क्या क्षति है ? विलायत तो भरतक्षेत्रमें ही आगमानुकूल है। मेरा तो यह कहना है कि १०० गृहस्थ हों, २० विद्वान् हों, २० त्यागी हों। एक बड़ा भारी जहाज हो। उसमें शुद्ध खान-पान रहे। अथवा हवाई विमान हो, ५० लाख रुपया हों, २४ घंटे मे लन्दन पहुँच जावे। वहाँ पर १५ लाख रुपया लगाकर एक मन्दिर बनाया जावे। तथा वहाँ ऐसी प्रभावना की जावे जो यह जैनधर्म कहलाता है। ऐसी ही प्रभावना अमेरिकामें भी की जावे। परन्तु यह होना क्या सम्भव है ? अस्तु मैं तो जैनधर्मका श्रद्धालु हूँ। कोई कुछ समझे। तथा यह भी मेरी भावना है जो प्राणी मात्रको धर्म समझाया जावे, चाहे किसी वर्गका हो। केवल हम ही उसके पात्र हैं यह मत ठीक नहीं। पं० शिखरचन्दजी से दर्शनविशुद्धि। सर्वत्यागी गणसे इच्छाकार।

इटावा
आ० व० ६, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७–१७]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसादजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हमारा स्वास्थ्य अच्छा है। परन्तु जसवन्तनगर आए, एकदम ज्वर आ गया तथा पैरोंसे सूजन आ गई। अभी अच्छे होनेकी सम्भावना नहीं। एक मासमें आराम होगा। तवतक इटावा ही रहेगे। क्या होगा हम नहीं कह सकते। हमने पुरुषार्थ में त्रुटि न रक्खी परन्तु भाग्यमें सहायता नहीं। आपको इसका खेद न करना चाहिए। मेरा सर्व महाशयोंसे

इच्छाकार। श्री अधिष्ठाता सोहनलालजीसे विशेष कहना। सेठ जी का अब स्वास्थ्य अच्छा हो॥। हमारी क्या दशा होगी, श्री भगवान जाने।

इटावा
पौष सुदि १२, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७–१८]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मै सब प्रकारसे आपकी वैयावृत्य करनेको तैयार हूं परन्तु यहाँसे सब चले गये, कोई यहाँ पर नहीं है। तथा यहाँ पर गर्मी बड़े वेगसे पड़ रही है। आप जानते हैं आज कल ऐसा काल है जो ऊपरसे व्याख्यान देनेवाले बहुत हैं अमल करनेवाले न वक्ता हैं और न श्रोता हैं। अस्तु आपने आजन्म धर्मसाधन किया है। यथाशक्ति दान भी दिया है। अब अन्तिम समय श्री पार्श्वप्रभुके पादरजको न छोड़िए और अन्तरग मे निर्मल वृत्ति रखिए। अन्य तो निमित्तमात्र हैं। आत्मीय मूर्च्छाको छोड़िए। आत्मा अकेला है, अकेला ही जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है और अकेला ही मुक्तिका पात्र होता है, अतः आप शान्तिसे रहिए और असाध्य बीमारी न हो तब शीघ्रता न करिए। जो रुचे सो अल्प भोजन करिए। औषधिके चक्रमे न पड़िए। केवल पार्श्व स्मरण औषध सेवन करिए, और समाधिमरणका पाठ सुनिए। पर्यायके अनुकूल त्याग करिए, आडम्बरमें न पड़िए। राग-द्वेषके अभावमे आप स्वयं परमात्मा हैं, अतः परमेश्वर की भक्ति करिए परन्तु भक्तिमें राग न करिए। परमेश्वर विषयक

स्मरण ही आत्माको शान्तिदायक होगा। यदि किसीसे ममता हो तब उसे त्यागिए यही कल्याणका मार्ग है। बाह्यमे निमित्त कारणका ही त्याग किया जाता है परन्तु अन्तरग त्याग बिना यह त्याग थोथा है। मैं आशा करता हूँ जो आप सब विकल्प छोड़ शान्त होनेका प्रयास करेंगे। आप स्वयं वर्णी हैं। आपकी वृत्तिसे अन्य वर्णी बन जाते हैं। आप क्या वर्णीका आश्रय लेते हैं!

इटावा
वैशाख सुदि ६, स २००७

आ० शु० चि०
गणेशवर्णी

[१७–१९]

श्रीमान् बाबुजी योग्य इच्छाकार

मैं आपको पत्र दे चुका। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आनन्दसे स्वाध्याय करिए। स्वाध्यायका तात्पर्य आत्मा पदार्थ पर से भिन्न है, ज्ञाता दृष्टा है। कोई द्रव्य का कोई द्रव्य न कर्ता है न धर्ता है और न नाशक है। व्यर्थ की कल्पना छोड़िए। मैं तो कोई ज्ञानी विज्ञानी नहीं किन्तु जो वीतरागी विज्ञानी हैं उनकी भी आशा छोड़िए, अपनी भूल मेटो यही शिवमार्ग है।

इटावा
वैशाख सुदि ६, स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७–२०]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसादजी, योग्य इच्छाकार

आपकी सम्मति प्रशस्त है परन्तु वहां पहुँचना तो कठिन हो रहा है। शरीरशक्ति प्रबल नहीं। भावना यही है जो आपकी

सम्मति है। मैं आपको निजी समझता हूं। सर्व त्यागी मण्डलसे इच्छाकार।

इटावा
जेठ सुदि २, स० २००७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-२१]

श्रीयुत बाबु गोविन्दप्रसादजो, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। अब मेरा स्वास्थ प्रतिदिन पक्कपान सदृश ही होता जाता है। गर्मी के प्रकोपसे एक मील चलना असम्भव है। कहां यह उत्साह था जो श्री गिरिराज के पादमूल मे समाधि करूंगा। अब कहां यह भावना जो एक स्थान मे शान्तिसे जीवन यापन करूं। अब अन्तरगसे किसीसे भाषण करनेको उत्साह नहीं होता किन्तु श्रद्धामें न्यूनता नहीं। आप भी शरीरकी कुछ भी दशा हो परिणामोंमे उत्साह रखना। कल्याणका मूल परिणामकी अमलता है, समलता घातक है। समलताका कारण अन्तरङ्गसे भेदज्ञानका अभाव है। अतः अपनेको भेदज्ञानसे ओतप्रोत रखना। गल्पवादमे काल न जावे। भगवतीआराधनाका स्वाध्याय करना। शल्य न करना। अब समय सावधानीका है। बाबु धन्यकुमार इच्छाकार, योग्य हैं। तथा उनके घरसे भी इच्छाकार कहना।

इटावा
द्वि० अषाढ़वदी ३, सं० २००७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-२२]

महानुभाव. इच्छाकार

मैंने पत्र डालना बन्द कर दिया है। शरीर की अवस्था दूषित

न हो ऐसा उपाय करना, यही कल्याणका पथ है। मेरा तो यह विश्वास है जो पर पदार्थमें मूर्च्छा त्यागो चाहे वह लौकिक पदार्थ हों, चाहे अलौकिक हों। कल्याणका मार्ग तो निरीह वृत्तिमें है। उपेक्षा ही मोक्षकी जननी है। अब एकोऽहं नान्योऽहं यही भावना भावो। अब हमारा शरीर यात्रा योग्य नहीं।

इटावा
श्रावण वदी ६, सं० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-२३]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसाद जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। अब वृद्धावस्थामें मकरध्वजकी आवश्यकता नहीं। आपको भी मैं सम्मति दूंगा जो अब आप भी सर्व विकल्पोंको त्यागिए। तथा अधिकांशमें यही भावना भाइए—

"जन्मे मरे अकेला चेतन सुख दुखका भोगी"

इसका ही सहारा कल्याणकारी है। कोई शक्ति नहीं जो आत्माका कल्याण कर सके। हम मोही जीव संसार भरको अपना कल्याणकारी मान लेते हैं। जैनसिद्धान्त तो यह कहता है—

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः"

सर्वथा असत्यार्थ ही न मानना यही पाठ ही ठीक है। धन्य-कुमारजी आगए अच्छी तरह हैं।

ललितपुर
श्रावण सुदि ४, सं० २००८

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-२४]

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दलाल जी, जैन इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मैं आपका अपराध क्षमा करूँ इसका यह अर्थ हुआ जो कि आपको अपराधी बनाऊँ अतः मेरी तो यह भावना है जो आप किसीके अपराधी नहीं और न हैं, और न आगामी होंगे। थोड़े कालकी संसार स्थिति है उसे पूर्ण कर लो पश्चात् यथा नाम तथा होंगे। खाने पीनेसे आत्मा अपराधी नहीं होता। गृद्धता अपराधकी जनक है। सो नहीं होनी चाहिए। अतः पर्यायानुकूल भोजन करनेमें कुछ भी अपराध नहीं। व्यर्थके विकल्प मत करो। सानन्द से स्वाध्याय करो। कार्य करते जाओ। सबसे ममता त्यागो। मेरी तो यह श्रद्धा है जो अन्य से ममता त्यागो यह तो सब कोई कहता है पर धर्म तो यही कहता है कि अपनेसे ममता त्यागो। हम क्या कहें ?"

"अपनी सुध भूल आप आप दुख उपायो।"

किसी को क्या दोष देवें ? अस्तु पछतानेमे कुछ लाभ नहीं। सन्तोष ही लाभका जनक है। सन्तोषका अर्थ परसे सम्बन्ध छोड़नेका है। अब जहाँ तक बने आपकी दृष्टि ही कल्याण जननी है। अनादि कालसे पर दृष्टि ही रही, हमने परको अपराधी समझा यही पहली त्रुटि जीवनमें रही, इसे त्यागो। सब त्यागियोंसे इच्छाकार। मैंने न तो कोईका अपराध किया और न कोईने मेरा अपराध किया, अतः क्षमा मांगना उचित नहीं समझता हूँ। यदि मै अपराधी हूं तो अपना ही अपराधी हूं। जब तक इसे न छोड़ू गा कुछ भी न होगा।

क्षेत्रपाल ललितपुर
अषाढ़ सुदी ३, सं० २००८

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० हुकुमचन्द्रजी

श्रीमान् ब्र० हुकुमचन्द्रजीका जन्म मेरठ जिलान्तर्गत सलावामें कार्तिक कृष्णा ६ वि० सं० १६५२ को हुआ था। पिताका नाम लाला माडूमलजी और जाति अग्रवाल है। प्रारम्भिक शिक्षा लेनेके बाद ये अपने घरका कार्यभार स्वयं देखने लगे। इनके यहाँ जमीदारी और कपड़ेका व्यापार होता था।

इनका विवाह तो हुआ था। किन्तु २५ वर्षकी उम्रमें ही पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृह-कार्यसे विरत हो आत्म-साधनामें लग गये। स्वाध्याय द्वारा इन्होंने षट्खण्डागम और कषायप्राभृत जैसे महान् ग्रन्थोंमें भी प्रवेश पा लिया है। सर्व-प्रथम इन्होंने ब्रह्मचर्यके साथ व्रत प्रतिमाके व्रत लिए थे और कुछ काल बाद ब्रह्मचर्य प्रतिमा स्वीकार कर ली है। दीक्षा गुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज हैं।

अपने गार्हस्थिक जीवनमें इन्होंने कांग्रेस द्वारा देशसेवाके कार्यको भी रुचिपूर्वक किया है। कुछ दिन तक ये नगर कांग्रेसके मंत्री भी रहे हैं। उत्तर प्रान्तीय गुरुकुल खुल जानेपर ये बहुत कालतक उसके अधिष्ठाता भी रहे हैं। आजकल ये इस गुरुकुल द्वारा धर्म और समाजकी सेवा करते रहते हैं। इनकी चित्तवृत्ति माध्यस्थ्य, सेवाभावी और निरहंकारी है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति है। अक्सर इनका अधिक समय उनके सानिध्यमें जाता है। अलग रहने पर पत्राचार द्वारा अपनी जिज्ञासा पूर्ति करते रहते हैं। उत्तरस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी महाराजद्वारा जो पत्र इन्हें लिखे गये हैं उनमेंसे कतिपय उपलब्ध हुए पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[१८-१]

श्रीयुत महाशय पण्डित हुकमचन्द्र जी जैन ब्रह्मचारी,

योग्य इच्छाकार

मैं का० सुदि २ को श्री गिरिराजजीकी ओर प्रस्थान करूँगा वहां पर महान् समारोह होनेवाला है। व्याख्यान तत्त्व विवेचन तो होवेंगे ही किन्तु यह होना प्रायः कठिन है। जो ४ या ६ व्यक्ति जो कि सर्व तरहसे सम्पन्न हैं मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हों। मोक्ष मार्गसे तात्पर्य निवृत्तिमार्गसे है। संयम विना सम्यग्दर्शन ज्ञान कर्मवन्धन नहीं काट सकते। आपेक्षिक विवेचना कर मूल अभिप्रायका घात नहीं होना चाहिए। अतः जहांतक पुरुषार्थ हो इसमे लगाना जिससे मेला और यात्राकी सार्थकता हो। आज जो धार्मिक संस्था यथार्थ नहीं चलती उसका मूल कारण हमारे गृहस्थ भाई त्यागी होकर संस्था नहीं चलाते। अतः परिश्रम कर अबकी बार वह प्रयत्न करना जो ४ या ६ गृहस्थ आप लोकोंकी गणनामे आ जावें। केवल शब्दोकी बहुलतासे प्रसन्न हो जाना पानी विलोवन सदृश है। तथा वहां पर जो संस्था है उसमे २०० छात्र अध्ययन करें ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए। तथा आपकी जो मण्डली हो कमसे कम २० महानुभाव उसमें होना चाहिए। इस प्रकारके व्याख्यान होना चाहिए जो प्राणीमात्रको उसमे रुचि हो। धर्म्म वस्तु व्यक्तिगत है। विकाशकी आवश्यकता है। जब असंख्यात लोकप्रमाण कषाय हैं तब उनका अभाव भी उतने ही प्रकारका होगा। पूर्ण कषायके अभावका नाम ही तो यथाख्यातचारित्र है। एक भी भेद जहां रहे वहां वह यथाख्यात नहीं हो सकता।

१९

भगवान् समन्तभद्रने तो लिखा है—'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो'–आदि अतः ऐसा विवेचन करो जो सर्व मनुष्य लाभ उठा सकें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८–२]

श्रीमान् प० हुकमचन्द्र जी तथा सर्व मण्डली,

योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। प्रसन्नता इस बातकी है जो आप लोक सामूहिक रूपसे एक विशेष क्षेत्रपर तत्त्व विचार कर रहे हैं। किन्तु अब अन्यत्र जानेकी इच्छा करना ही आपके तत्त्व विचारमे बाधक है। इस विकल्पको त्यागो जो अन्यत्र विशेष लाभ होगा। लाभ तो पर समागम त्यागमें है, न कि पर समागममें। हम शिखिरजी मोह वश जा रहे हैं। लाभ विशेष होगा यह नियम नहीं। फिर आप ये कहोगे क्यों जा रहे हो। मोहकी प्रबलतासे।

आपका समागम अति उत्तम है। तत्त्व विचार क्षयोपशमके अधीन है। कल्याण होना मोहकी कृशतामें है। समयसार ही कल्याणमे प्रयोजक हो सो नहीं, कल्याणका कारण तो अन्तरंगकी निर्मलता है। कल्याणकी व्याप्ति मोहके अभावमें है। सर्वागमका ज्ञान इसका साधक नहीं, अतः भूलकर इस भीषण गर्मीमें अपने उपयोगका दुरुपयोग न करिए। मैं आधे जेठमें गया पहुँचूगा। जहां पर हूँ यहांसे २५ मील है। श्रीहस्तिनाग पुरके मदिरकी शीतलताको त्याग विहारकी ज्वालामें भूलकर अभी मत आइए। मैं आपको तथा आपकी मण्डलीको उत्तम दृष्टिसे

देखता हूं, अतः यही सम्मति दूंगा जो बाहर जानेके विकल्प त्यागिए। मैं तो अब मंदिरमें जाता हूँ तो प्रतिमाके समक्ष यह भावना व्यक्त करता हूं-भगवन्! आपके ज्ञानमें ऐसा देखा गया हो जो अब वापिस नआना पड़े। मेरी कार्य मात्र करनेमे यही भावना रहती है जो अब फिर न करना पड़े, चाहे शुभ कार्य हो चाहे अशुभ। आप लोक ज्ञानी हैं। ज्ञानके साथ मुमुक्षी भी हैं। फिर अब चिर स्थितिका एक स्थान बनाकर सर्वसे सम्बन्ध छोड़िए और मुझे भी अपना जान इन विकल्पोंसे मुक्त कीजिए। विशेष क्या लिखूं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-३]

श्रीयुत महाशय पं० हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, योग्य कल्याण-भाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने। आप विवेकशील हैं, अतएव आप जहाँ रहेंगे वहाँ उसीका प्रचार होगा। आप करें चाहे न करें मेरी तो यह सम्मति है जो अन्तरंग परिणामोमें परमें निजपना न आवे यही तत्व मोक्षका उपयोगी है। चाहे कहो चाहे सुनो, जब तक परको नहीं भूलोगे शान्ति न मिलेगी। एक ही तात्पर्य है। 'आतमके अहित विषय कषाय' इसका वही अर्थ है। मुजफ्फर-नगरवालोंको यही संदेश कहना और कहना इसीके अनुयायी बनें। जो काम करो यह तत्व न भूलो चाहे वह कार्य यथाशक्ति कुछ हो,

आपका सम्पर्क सबको इष्ट है। सम्पर्कसे लाभ होता ही है, नियम नहीं। परन्तु जब होगा तब संसर्गसे ही होगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-४]

श्रीयुत महाशय लाला हुकमचन्द्रजी साहब श्रीयुत पण्डित शीतलप्रसाद जी व श्रीयुत लाला मक्खनलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप लोकोका समागम अत्यन्त हितकर है परन्तु उदय भी होना चाहिए। कल्याणका मार्ग सुलभ है, किन्तु हृदय सरल होना आवश्यक है। हृदयकी सरलताका अर्थ है अन्तरङ्ग मोह ग्रन्थी नहीं होनी चाहिए। हम अपनी कहते हैं। ७८ वर्षके हो गए परन्तु भीतरसे जिसको कहते हैं उस पर अमल करनेसे वञ्चित रहे। निरन्तर जगत्की चिन्तामें व्यस्त रहे। इसमें अन्तरङ्ग रहस्य स्वप्रशंसाके भिक्षुक रहे। बाहरसे भद्र बनना अन्तरङ्गकी भद्रताका अनुमापक नहीं। आप लोकोंको धन्य है जो निर्ममतासे क्षेत्र पर धर्मध्यान करनेका लाभ ले रहे हो। आप कुछ विचारें, हमें जैसा ज्ञानमें आया लिख दिया। हमारा विचार श्री ईसरीमें अन्तिम आयुके अवसान का है। अब श्री पार्श्वनाथका ही शरण है। आपको वचन दिया था उसका पालन न कर सके इसकी क्षमा चाहते हैं।

पौष वदि ३
सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१८-५]

श्रीयुत महाशय लाला हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार अवगत किए। मेरी तो अन्तरङ्गसे यही सम्मति है—आप लोकोंने पुरुषार्थ कर जो समागमका लाभ लिया है वह सर्वको हो। अतः जहाँ तक बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ चले उसे एक मिनटको भी भंग न करना। मुझे तो आप महानुभावोंके समागमसे अपूर्व लाभ होगा इसमें कोई शंका नहीं, परन्तु मैं हृदयसे यही चाहता हूँ जो आप लोकोंका निरपाय समागम हुआ है वह आनिर्वाण भंग न हो। पुरुषार्थोंमें परम-पुरुषार्थ मोक्ष ही है। तीन पुरुषार्थोंमे शान्ति नहीं। चरामवस्था भी उनकी हो जावे; परन्तु उनमें शान्तिका आस्वाद नहीं। तथा हि—

> अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्म्मणा।
> एभ्यः संसारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मनः॥
> विहाय वैरिणं काममर्थञ्चानर्थसंकुलम्।
> धर्म्ममप्येतयोर्मूलं सर्वत्र चानादरं कुरु॥

तात्पर्य्य यह है जो धर्म अर्थ कामसे संसारमें शान्ति नहीं प्रत्युत अशान्तिकी ही उत्पत्ति होती है। अतः आप लोकोंका जो पुरुषार्थ है वह निरपाय पदके अर्थ है। समागम उत्तम हो यह भी एक कहनेकी शैली है। न हो यह भी एक कथन पद्धति है। वस्तुकी स्वच्छावस्था ही तो हमको प्राप्त हो, निरन्तर यही ध्येय ज्ञानीके है। यद्यपि श्रद्धाकी प्रबलतासे सम्यग्ज्ञानीकी महिमा अनिर्वाच्य है तथापि चारित्रमोहनीयकी महिमासे ६ मास मृत मनुष्यको बलभद्र छोड़ न सका। अस्तु, इसके लिखनेका आपके सामने अवसर न था। विशेष क्या लिखूँ, कल्याणका मार्ग आपमें है। हम अन्यत्र

अन्वेषण करते हैं। यही महती है ( ) है। बीचमें जो है सो मैं क्या लिखूँ। मेरा तो यह कहना है—जितना पुरुषार्थ शब्द वर्गणाओंमें हमारा है इसका शतांश भी यदि आभ्यन्तरमें हो तब यह जो कुछ पर्य्यायमें होता है, अनायास शान्त हो जावेगा। बलवन्तसिंह यहाँ आगए सानन्द हैं। सर्वमण्डलीसे यथायोग्य। सत्समागममें यथार्थ निर्णय हो सकता है, आज कल प्रायः जो लिखनेकी पद्धति है उसमें अहम्मन्यताकी गन्ध प्रायः रहती है। अस्तु, हम लोकोंको उचित है जो अन्तःकरणकी शुद्धिपूर्वक तत्त्वका निर्णय करें। यदि अन्तःकरण न माने मत मानो फिर निर्णय करो।

भाद्र सुदि ६ } सं० २०१० } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[१८-६]

योग्य इच्छाकार

आज भगवान्के निर्वाणका दिवस है। साथी लोक पावापुर गए हैं। कुछ मनमें आया जो लोकोंको कुछ लिखूं। अन्तरंगसे मैं आप लोकोंके समागमको चाहता था परन्तु कारणकूटके अभावमें नहीं हो सका। परन्तु आपको सम्मति देता हूं जो भूल कर भी हस्तनागपुर क्षेत्रको त्याग कर अन्यत्र न जाना। कहीं कुछ नहीं और सर्वत्र सब कुछ है। तब भ्रमण करनेसे क्या लाभ। वहीं पर जो लाभकी वस्तु है अपनेमें ही है। जब यह सिद्धान्त है तब व्यर्थ भ्रमण करनेसे क्या लाभ, प्रत्युत हानि है। मोही जीव जो न करे सो थोड़ा। मोही जीव ही तो यह कहता है—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत् परान् प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥

अनवस्थित चित्तवाले तोकुछ भी नहीं। उनका समागम भूलकर न करना। और आपकी जो मण्डली है, प्रत्येक व्यक्तिको इच्छाकार कहना और यह कहना सर्वसे ममता त्यागो। सर्वसे तात्पर्य्य अपनेसे भी है। जो अपनेसे ममता त्याग देगा वह फिर अन्यसे ममता करेगा सम्भव नहीं। यदि उचित समझो तब गुरुकुलकी अपील हो तो यह सन्देश हमारा सुना देना जो आप लोकोका व्यय हो उसमें १) मे पैसा गुरुकुल को देवें। जैसे आपका वार्षिक व्यय ४०००) है तब ६२॥) गुरुकुलको है। खर्च भोजन वस्त्र विवाह। छात्र सम्मेलनमे यह कहना जो छात्र १००) मासिक व्यय करें वह १॥–) गुरुकुल को देवें। यदि क्षुल्लक मनोहरजी आए हों तब हमारी इच्छाकार कहना और कहना गुरुकुल सस्था को पुष्ट करो इसमेवि शेष लाभ है। निवृत्तिमार्गमें यह सर्वथा अनुचित नहीं।

जिनभवन गया
का० व० ३०, स० २०१०

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१८–७]

श्रीयुत महाशय लाला हुकमचन्द्रजी.

योग्य कल्याणभाजन हो

सानन्दसे स्वाध्याय होता होगा। ज्ञानके द्वारा ही आत्मकल्याण होता है। हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ यही है। अनादि कालसे इसको न पाकर जो दशा जीवकी हुई वह प्रत्यक्ष है, परन्तु जीव लापरवाहीसे उसका प्रतीकार नहीं करता। अत्यन्त

सन्निहित प्रतीकार है, परन्तु परके द्वारा ही उसको चाहता है यही दोष है। जब तक यह दोष न जावेगा यही दशा होगी। हमने सुना है मुजफ्फरनगरमें पञ्चकल्याणक होनेवाले हैं। क्या यह सत्य है। यह सत्य है तब आपका शुभागमन तब तक रुक ही जावेगा। यदि वहांवाले इसे वहीं पर एक ऐसा ज्ञानाश्रम खोलें जिसमें आप की गोष्ठी वहां रहे तब प्रान्त भरके मुमुक्षुओंको आश्रय मिले। मैं हृदयसे लिखता हूं। विशेष आपके समागमको सर्व चाहते हैं। वहां की समाज विवेकशील है।

अ० सु० १०।
सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८–८]

श्रीयुत महाशय पं० हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। सानन्द तो असम्भव नहीं। मेरा तो विश्वास है, आनन्दका विपरिणमन बहु कारणसाध्य है और आनन्दका विकाश स्वाधीन है। परन्तु अज्ञानी जीवकी मान्यता ही विघातक है। अतः जिसे आनन्दरसामृतपान करना हो उसे पराधीनताका त्याग करना उचित है। आपकी मण्डली जो हो सर्वसे यही बात कहना। हमारी तो बुद्धिमें आता है जो व्यग्रता नहीं होना चाहिए। यह कार्यमात्रका बाधक है।

ईसरीबाजार
आश्विन सुदि ६, स० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—९]

श्रीयुत महाशय पं० हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

महानुभाव सकल पञ्चान मुजफ्फरनगर योग्य कल्याणपात्र हो। क्या लिखूं अब मेरी शक्ति इस योग्य नहीं जो आप लोकों के सम्पर्कमें आ सकूं। यदि मेरी सम्मति मानो तब स्वयं आप लोक सर्व कर सकत हैं। आपके प्रान्तमें बाह्य साधन भी हैं, उपयोग करना चाहिए। पं० हुकमचन्दजी एक योग्य व्यक्ति है। हम भी उपयोग कर सकते हैं परन्तु उसी ओर लक्ष्य नहीं। आप लोक तो साक्षर हैं। चारों जाति में श्रेयोमार्ग खुला है। साक्षान्मार्ग इसी पर्य्यायमें है। परन्तु हम तो अपनेको बिलकुल अकर्मण्य समझते हैं। एक ने कहा है—

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडम्बितः॥

। जिस समय उस ओर लक्ष्य दिया यह संसार अनायास मिट जावेगा। गल्पवादके रसिक नहीं होना चाहिए। हम तो अब लिखनेमें भी आलस करते हैं।

ईसरीबाजार
पौषसुदि ११, सं २०११ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—१०]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। अशुद्ध सांजन ये भावोंके विशेषण हैं, विशेष कुछ नहीं। हमारा स्वास्थ्य अब अवस्थानुकूल है।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। श्री शीतलप्रसाद जीसे इच्छा-कर कहना और जो जो महाशय हों सर्वसे यथायोग्य कहना। मेरी तो यह सम्मति—मगदर्शकका स्मरण मोक्षका कारण नहीं। उसने जिन कारणोंसे जो अभिमत प्राप्त किया उन कारणोंपर चलना चाहिए।

फागुन वदि ३०, सं० २०११ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—११]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छामि

पत्र आया, समाचार जाने। आप सानन्द होंगे। संसारका मूल कारण यह आत्मा जब अशुद्ध सांजन भावरूप परिणमन करता है तभी तो संसारका जनक होता है अशुद्ध भावोंका तादात्म्य आत्मासे है। इन्हीं भावोंका नाम रागादि है और सांजन भाव परिणमन पुद्गलोंका है। जिसे ज्ञानावरणादि कह सकते हैं। ये दोनों अविनाभावी हैं। एकके अभावमें अन्य नहीं रह सकता है। जिस समय सूक्ष्म लोभका अभाव होता है अन्तर्मुहूर्त्त बाद ही ज्ञानावरणादि कर्मकलंक अपने आप उदय देकर खिर जाते हैं। अतः आवश्यकता राग दूर करने की नहीं। वे तो स्वयं काल पूर्ण कर विनष्ट हो जावेंगे और न मोहादि द्रव्यकर्म पृथक् करनेकी है। केवल रागमें राग न करनेकी आवश्यकता है। जिस समय रागादि परिणाम हों, भीतरसे उनमें रुचि न हो। विशेष नहीं। अब हमारी अवस्था कुछ भी परिश्रम करनेमें अक्षम है। सर्व साधर्मियोंसे उपेक्षारूप रहे। यही संदेश कहना। जितना घनिष्ट हो उससे प्रथम ही यही संदेश कहना। गुरुकुलका ऐसा उत्सव करना

जिससे मासवाद फिर लोकोंको बिना पत्रिकाके स्वयमेव आनेकी रुचि हो। छात्रों भी ऐसी रुचि हो जो ब्रह्मचर्य्य ही में जीवन व्यय हो। ऐसा दृश्य कर्त्तव्यरूपमें छात्रलोक दिखावें जो युवकोंके मनमे गुरुकुलमे छात्र बनकर अध्ययन करें ऐसी जिज्ञासा हो जावे। लाला मक्खनलालजी सानन्द होंगे। श्री लाला त्रिलोकचन्द्रसे कहना तत्त्वश्रद्धान शून्य मनुष्यकी दशा जो होती है उस पर दोष करना ही व्यर्थ है।

फा० सु० १०, स० २०११ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[१८—१२]

श्रीयुत महाशय पण्डित हुकुमचन्द्रजी,

योग्य कल्याणभाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने। आप वस्तुस्वरूप जानते हैं। क्या लिखे, जिसमे शान्ति मिले सो करना। सम्यग्दृष्टि उदयानुकूल वर्त्तमानमें कार्य्य करें इसमे कोई विवाद नहीं। परन्तु उस उदय मे वह शक्ति नहीं जो उसके मूल श्रद्धानको हानि पहुँचा सके। संसारका कारण परमार्थसे तो उसके रहा नहीं। मेरी तो यह सम्मति है जिससे मुजफ्फरनगरवालोंको आप द्वारा शान्ति मिले सो करिए। हमारी ओरसे यह कह देना—

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जन्यः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

अतः समाजको यह कह देना, यदि कल्याण चाहते हो तब श्लोक पर दृष्टि दो—

वैशाख वदि ३०
सं० २०१२ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[१८-१३]

कल्याण भाजन हो

यह क्या लिखते हो। अंकुर हीसे तरु होता है। अतः कुछ न कहो। मोहकी महिमामें जो न हो थोड़ा है। मोह भावमें तो कुछ नहीं होता। आप सानन्दसे जीवन विता रहे हो। मेरा विश्वास है तत्वज्ञ जीव कहीं रहे कुछ व्यग्र नहीं होता। व्यग्रताका कारण परका अपनाना है। जिसके यह छूट गया वह सदा अव्यग्र रहता है। जो परको अपनाते हैं वे कभी भी आनन्दका स्वाद नहीं पाते। जिन्होंने आप जाना उन्होंके सर्व कल्याण हो गया।

> येन दृष्टं परं ब्रह्म सोऽहं ब्रह्मेति चिन्तयेत्।
> किं चिन्तयति निश्चिन्तो द्वितीयं यो न पश्यति ॥

ईसरी बाजार, जि० हजारीबाग }
जेठ सुदि ६, सं० २०१२ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-१४]

श्रीमान् पं० हुकमचन्द्र जी, श्रीमान् लाला शीतलप्रसाद जी

योग्य कल्याणमय जीवन हो

पत्र आया, समाचार जाने। गुरुकुलकी सेवा आप लोक कर रहे हैं यह तो उपचार है। परमार्थसे आप अपनी ही सेवा कर रहे हैं। सेवा ही बलात्कार करनी पड़ती है। जिसकी सेवा कर रहे हैं परमार्थसे तो वह तो न निरोग है और न रोगी है। परन्तु अनादि मोहादि निमित्तक रोगोंसे आक्रान्त हो रहा है।

एतन्निवारणके अर्थ ही यह औषध है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो नवीन रोगका कारण मिट गया है। परन्तु जो प्राचीन रोग सत्तामे बैठा है उसके अपहरण करनेके अर्थ ही यह गुरुकुल सेवा, साधर्मियोकी वैयावृत्य, स्वाध्याय प्रवचन, पञ्चपरमेष्ठी स्मरण आदि उपचार है। काल पाकर यह औषध भी छूट जावेगी। हम लोक अपनेको कायर न मानें और न यह कहें क्या करें पञ्चम काल है। रहा हम तो पञ्चम काल नही। विशेष क्या लिखें, पक्व पान हैं। फिर भी आप लोकोकी शूरता वीरता धीरता और वीतरागता देख चित्तसे प्रसन्न रहते हैं। आपके जानेसे हमको अन्तरङ्गसे जो मोही जीवोको होता है वह ऊपरसे न हो फिर भी है। किन्तु प्रसन्नता इस बातकी है जो आपकी मण्डलीको आपके वहां रहनेसे आनन्द है। परमार्थसे तो जितने उपद्रव दूर हों अन्तरंगसे उतना ही प्रसन्नता होनी चाहिए। हम लिखना जानते हैं परन्तु उतना कर्त्तव्यमे नही लाते यही दुर्बलता है। सर्व मण्डलीसे यथायोग्य कहना और यह कहना जो उत्तरप्रान्तमे विशेष शीतलता है वह हममें भी आवे। श्री हरिश्चन्द्र दर्शनविशुद्धिः। समागम पाकर कमल न रहना।

ईसरीबाजार } आ० शु० चि०
आषाढ़ बदि १, सं० २०१२ } गणेश वर्णी

[१८—१५]

श्रीयुत महाशय पं० हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, श्री प० शीतल प्रसादजी, योग्य कल्याणभाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने। आप लोक भ्रमणकर परोपकार कर रहे हैं। इस अवस्थामे ऐसा होना स्वाभाविक है और स्वभा-

वाप्तिमें बाधक नहीं प्रत्युत साधक ही है। व्यर्थकी उदासीनतामें कुछ तत्त्व नहीं। बड़े आचार्य प्रमत्तगुणस्थान तक क्या यह नहीं करते। तदुक्त—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥

क्या यह निर्विकल्पकता मोहाभावके पहले नहीं होती है? यदि होती तब ये वाक्य न निकलते। अतः मैं तो आपके कार्य्यसे प्रसन्न हूं। धार्मिक वृत्तिका विस्तार ही होना श्रेयस्कर है। वहां पर जो मण्डली हो उसको कहना जो धर्मके कार्य हैं उनमें इसी प्रकारकी तन्मयता कल्याणजननी है। सर्वसे महान् यह भाव होना चाहिए जो महापुरुष हुए वे मनुष्य ही तो थे। हम भी तो मनुष्य हैं। किन्तु अन्तर इतना ही है जो हम लक्ष्यकी ओर दृष्टि-पात नहीं देते। दृष्टि तो है। जो ज्ञान परको जाने और आपको न जाने यह बुद्धिमें नहीं आता। हम आत्माको नहीं जानते सो बात नहीं, जानते हैं। किन्तु उसमें जो विकार भाव हैं उन्हें अपनाने लगे। अपनानेवाले हम ही तो हैं यह प्रत्यय किसे नहीं। रही बात ये जो विकृतभाव हैं वे औपाधिक हैं। जो क्लेशकर है उसे त्यागो। शरीर वृद्ध है, विशेष लिखनेको उत्साह नहीं होता।

नोट—यदि कल्याणकी इच्छा है तब परका सहारा त्यागो इससे अधिक कुछ नहीं। विशेष बात जो भाई कल्याणके अभि-लाषी हैं वह तीर्थयात्राकी तरह १ मास २ मास हस्तनागपुर रहें। कल्याणका कारण गृहत्याग भी तो है। मूर्च्छा त्याग ही तो कल्याण है। ज्ञानार्जन का फल भी यही है। यदि यह नहीं हुवा तब जैसा धन वैसा ही ज्ञान। विचारसे कुछ अन्तर नहीं।

ईसरी बाजार, हजारीबाग
आषाढ़ वदि १२, सं० २०१२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—१६]

श्रीयुत महाशय पं० हुकमचन्द्रजी साहब, योग्य कल्याण-भाजन हो

मेरा तो यह दृढ़तम विश्वास है, जिसकी ज्ञानमे रुचि हो गयी उसको देव गुरु शास्त्रमें श्रद्धा हो गयी। यह तो उसका फल है। केवल ज्ञानगुणकी महिमा है जो स्वपरकी व्यवस्था बनाए है। उसके विभावमे यह सर्व दृश्यमान हो रहा है। उसके स्वभावमे तो वही वही है। अतः सर्व विकल्पोंको त्याग उसीका विकल्प रहे यही कर्त्तव्य मार्ग होना श्रेयोमार्ग है। अब हमारी अवस्था परिश्रम करने योग्य नहीं। यदि त्रिलोकचन्द्रजी मिलें तो कहना—श्री विश्वम्भरको न देखो अपनेको देखो। बालकको आशीर्वाद।

ईसरी बाजार, हजारीबाग
श्र० सुदि ६, सं० २०१२

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—१७]

श्रीमान ब्रह्मचारी पं० हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। वहाँकी समाजकी कृतज्ञता जान परम प्रसन्नता हुई। मेरी तो यह सम्मत्ति है जो आप प्रथम भादो सुदि ५ से पूर्णिमा तक उन्हें सानन्दसे दशधा धर्मका व्याख्यान देकर तृप्त कर देवें। ऐसा करनेमें कोई क्षति नहीं। कल्याणका मार्ग तो हर कालमे है। पर्व विशेष दिनोंमे होता है परन्तु जब सिद्धोंकी स्थापना कर हम पूजादि व्यवहार करते हैं—मूर्तिमें भगवान्की स्थापना कर पूजादि करते हैं तब यह करना अनुचित नहीं। विशेष क्या लिखें। समाजको अब इस बातका प्रयत्नकरना

आवश्यक है जो स्वयं परिश्रम कर तत्ववेत्ता बने। जो ज्ञान जगत् की व्यवस्था कर सके और स्वकीय स्वरूपको न जाने, समझमें नहीं आता। परन्तु हम औरोंको उपदेश देते हैं स्वयं उससे तटस्थ रहते हैं। अतः जो चतुर हों उन्हें उचित है—१ दोहा या गाथा या चौपई या श्लोक प्रतिदिन कण्ठ करें। २ वर्षमें ७२१ गाथा कण्ठस्थ हो सकती हैं, जीवकाण्डके पण्डित हो गए। इसी प्रकार ३ वर्षमें कर्मकाण्डके विद्वान् हो सकते हैं। ½ श्लोक कण्ठ करें। १० वर्षमें और ¼ करनेसे २० वर्षमें नमः श्रीवर्द्धमानाय इतना भी प्रतिदिन याद करें। २० वर्षमें जीवकाण्ड-कर्मकाण्डके प्रौढ़ विद्वान् हो सकते हैं। परन्तु टससे मस नहीं होना चाहते हैं। गप्पसे ही सर्व हो जावे। सो तो आज तक हो ही रहा है। भगवान्‌का नाम लेना भगवान् नहीं बनावेगा। भगवान् निर्दिष्ट पदपर चलनेसे भगवान् हो जावोगे। करके देख लो। आपके पत्रसे सर्व प्रसन्न हुए। प्रसन्नताका कारण यथार्थ है। गुणानुरागी लोक है। श्री पं० शीतलप्रसादजीसे इच्छाकार। पं० त्रिलोकचन्द्रजीसे धर्मस्नेह। ज्ञान पानेका फल वो सर्वसे उपेक्षा करना। परन्तु यथाशक्ति कार्य भी करना। पूर्ण उपेक्षा तो पूर्ण चारित्रमें है। अविरत अवस्थामें तो असम्भव है, श्रद्धामें है। परन्तु अभी वह विकाशमें नहीं। मैं तो उन्हें वैसा ही मानता हूँ जैसा कि पहले मानता था।

ईसरी बाजार,
भाद्र सुदि १, सं० २०१२

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-१८]

श्रीयुत पं० हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। कल्याणका पथ तो मोहके

अभावमे है। मेरी तो यह दृढ़ श्रद्धा है—जितने प्रयास सम्यग्दृष्टि करता है उसका उद्देश्य उन कार्योंकी सन्तति अगाड़ी नहीं चाहता, अतः सम्यग्दृष्टिके ही सवर होता है। उसके कर्तृत्व बुद्धि नहीं। कर्तृत्व होना और बात है। दोष मेटनेको सम्यग्दृष्टि बनना अच्छा नहीं। श्री लाला मक्खनलालजी व श्री पण्डित शीतल प्रसादजीसे घने स्नेहसे कल्याणभाजन हो कहना। स्नेह पत्र तो स्नेह विरहका सूचक जानना। माघ वदि १४ से ३ दिन बनारस विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती होगी।

पौष वदि ६, सं० २०१२ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी
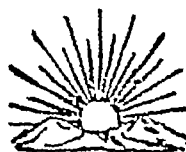
ब्र० कमलापतिजी सेठ

श्रीमान् ब्र० कमलापति जी सेठका जन्म लगभग सत्तर वर्ष पूर्व मध्यप्रदेशके वराचठा (वड़ा) में हुआ था। जाति गोलापूर्व थी। इनके दो विवाह हुए थे। उनमेंसे प्रथम पत्नीसे एक पुत्रकी प्राप्ति हुई थी और दूसरी पत्नीसे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई थी। सब सन्तानें जीवित हैं और सदाचारपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन यापन कर रही हैं।

सेठजी स्वभावके सरल और धर्मात्मा पुरुष थे। जो भी इनसे सम्पर्क स्थापित करता था उसपर ये अपनी ममता उडेले विना नहीं रहते थे। अपने जीवनमें इन्होंने ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार किये थे और उनका अच्छी तरह पालन करते थे।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके प्रति इनका विशेष अनुराग था और अधिकतर समय उन्हींके सानिध्यमें जाता था। यदा-कदा अलग होनेपर ये पत्रों द्वारा अपनी जिज्ञासा प्रकट किया करते थे। उत्तर स्वरूप पूज्य वर्णीजी इन्हें जो पत्र लिखते थे उनमेंसे उपलब्ध हुए कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[१९—१]

श्रीमान् महाशय सेठ कमलापति जी, योग्य इच्छाकार

आपकी प्रवृत्ति बहुत ही निमित्तमार्गकी ओर प्रसार कर रही है। इसका आपको तो आनन्द आता ही होगा, परन्तु हमको श्रवण कर ही आनन्द आता है। मनुष्य-जन्म लाभका यही फल है। अनन्त मनुष्य जन्म पाए, परन्तु संयमरत्नके विना नहीं के तुल्य हुए। यदि इस जन्मका भी संयमकी रक्षामें उपयोग न किया तब इतर जन्मो से कौनसी विशेषता इसके लाभ में पायी। विषयसुखकी सामग्री तो सर्वत्र सुलभ है। सयमके लाभकी योग्यता इसी मनुष्यजन्ममें है। जिन महाशयोंने या महापुरुषोने इस ओर लक्ष्य दिया उन्हींने कुछ अपने महत्त्वको समझा। हम तो आपके वियोगसे व्यामोहजालमें उलझ गये। मनुष्य पर्यायबुद्धि होता है, यह सर्वथा नहीं। हम सदृश ही इसके पात्र हैं। परन्तु फिर भी निवृत्तिमार्गके उत्कृष्टत्वकी श्रद्धा हृदयमें जाज्वल्यमान रहती है। अनेक बार मनमे उत्कृष्ट श्रावकके उत्कृष्ट भावकी अभिलाषा रहती है, परन्तु अन्तरङ्गकी दुर्बलता और कारण-कलापके अभावमें मनकी कल्पना मन ही में विलीन हो जाती है। अहर्निश निष्परिग्रहव्रतकी अभिलाषा रहती है और ऐसा भी नहीं है जो कुछ भाव न हों, परन्तु वास्तवमें उपादानकी न्यूनता प्रबल बाधक है। जिन जीवोंकी भवस्थिति अल्प रह गयी है उन्हें अनायास साधन मिल जाते हैं। जिनकी भवस्थिति बहुत है उन्हें साक्षात्कारण मिलने पर भी विपरीत परिणमन हो जाता है। जैसे, मरीचिकुमार। इसका यह तात्पर्य नहीं जो पुरुषार्थकी ओर दृष्टिका निषेध हो। श्रद्धामें अन्तर

न होना चाहिए। आपके समागमके बाद हमको तो निरन्तर हानिका ही लाभ हुआ। इसमें किसी का दोष नहीं। मैं निजकी भूल ही मानता हूं। फिर भी—

"जो जो देखी वीरप्रभुने सो सो होसी वीरा रे"

इससे चित्त व्यग्र नहीं होता।

अब तो अन्तरङ्गसे यह प्रबल भावना हो गई है जो वर्षा बाद पार्श्वप्रभुके शरणमें अपने को पहुँचा देना। फिर क्या होगा श्री पार्श्वप्रभु ही जाने। हमारी भावना यह है तथा ऐसा नियम भी है जो भावनाके अनुकूल कार्य होता है। सम्भव है जो हमारी भावना सफलीभूत हो जावे। यह भी नियम नहीं जो आप लोगोंके समागमादिसे हमारी कषायकृशता हो जावे। निमित्त तो निमित्त ही है। आप लोगोंके परिणामोंकी कथा श्रवण कर कुछ साहस होता भी है, परन्तु फिर अन्तमें यही मान लेना पड़ता है जो कार्यकी उत्पत्तिके प्रति मुख्य उपादान यथार्थ होना चाहिये। उपादानकी योग्यता इस पर्याय में है। सम्भव है, व्यक्त हो जावे। संयम कोई अलौकिक वस्तु नहीं। संज्ञी जीव मनुष्यपर्यायमें उसका लाभ ले सकता है। हम लोग भी तो उसके पात्र हो सकते हैं, परन्तु मनोदुर्बलताके कारण दैन्यवृत्तिवाले बन रहे हैं। बाह्य तपकी कठिनता देखकर ही भयभीत हो जाते हैं। परमार्थसे विचार किया जावे तब भय तो कषायमें है। इसके अभावमें काहेका भय। अस्तु, हम आपके व्रतकी प्रशंसा करते हैं। इस वाक्यका अर्थ यह है जो व्रत वस्तु सर्वथा प्रशस्त है। श्रीबाबू गोविन्द, सोहनलालजीसे दर्शनविशुद्धि। यदि वहाँ पर पतासीबाई हों तब मेरा उनसे इच्छाकार तथा सावित्री, चन्दाबाई, सरस्वती आदिसे

इच्छाकार सबसे कहना। मनुष्य-जन्मका यही फल है जो अपनी आत्माको संयममार्गमें लगाना। और सामग्री सब सुलभ हैं परन्तु सबसे कठिन संयम मिलना है। यह साधारण लोगोंकी धारणा है, परन्तु ऐसा नहीं। और सामग्री का लाभ तो कठिन है, क्योंकि पराधीन है। संयम मिलना स्वाधीन है, क्योंकि आत्मधर्म है। जैसे क्रोध करनेमें अनिष्ट-पदार्थका सहवास आदि अनेक कारण चाहिये और क्षमाके लिये केवल आत्माकी आवश्यकता है। विशेष क्या लिखें—कषायसे दग्ध हैं। अतः बुद्धि अपना कार्य नहीं करती। अथवा यों कहिये बुद्धिका काम तो होता है, परन्तु कषायके संमिश्रण होनेसे स्वच्छ नहीं होता। अतः जिन महानुभावोंको आत्महित करना हो उन्हें इसका संस्कार मिटाना चाहिये। अथवा मिटावो। हमको यही उचित है जो हम आपसे संसर्ग त्याग देवें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

सिं० राजारामजी

श्रीमान् सिंवई राजारामजीका जन्म लगभग ६७ वर्ष पूर्व सागर जिलाके अन्तर्गत पाटन ग्राममें हुआ था। पिताका नाम वंशीधरजी और माताका नाम जियाबाई था। जाति गोलापूर्व थी। अपनी प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका ध्यान मुख्य रूपसे व्यापारकी ओर आकर्षित हुआ और इस निमित्त ये सागर आकर रहने लगे।

सागरमें रहते हुए अपनी व्यापारिक कुशलताके कारण इन्होंने व्यापारमें बड़ी उन्नति की और वहाँके धनी-मानी पुरुषोंमें इनकी गणना होने लगी। वर्तमानमें इनका परिवार बहुत ही समृद्ध और खुशहाल है। सागरनिवासी श्रीमान् पं० मुन्नालालजी रांधेलीय इनके लघुभ्राता हैं।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें ये गृहकार्यसे विरक्त हो गये और ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर उनका योग्यतापूर्वक पालन करने लगे। इन्होने ऐहिक लीला सन् १९५० मे समाधिमरण-पूर्वक समाप्त की थी।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा थी। फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२०—१]

श्रीयुत महाशय ब्र० सिंघई राजाराम जी, योग्य इच्छाकार

आपका कई वार पत्र आया, मैं उत्तर न दे सका। इसका मूल कारण यह है जो मेरी सम्मति तो यह है जो ये पत्र व्यवहार भी कुछ हितकारी नहीं। एक तरहसे निवृत्तिमार्गमें बाधक हैं। जितना सम्पर्कसे परिग्रह है, उससे अधिक पत्रसे होता है। अतः मेरी सम्मति मानो तब जो काल पत्रके लिखनेमें जाता है वह काल स्वाध्यायमें लगाओ। जहाँ तक बने, परकी गुण-दोष विवेचना छोड़ो। गृहस्थके घर जो भोजन मिले, सन्तोष-पूर्वक कर लो। जिसके घर भोजन करो उसके हितकी बातें कहो। भोजनकी स्वच्छताका उपदेश दो। वस्तु, चाहे भोजन में अल्प हो, स्वच्छ हो। पानी छाननेका वस्त्र अत्यन्त स्वच्छ हो। अस्तु, यह चर्चाकी आवश्यकता यहाँ न थी; इस बातकी है जो अपनी आत्माको स्वच्छ बनाया जावे; क्योंकि हमारा अधिकार सीमित है; वस्तुमर्यादाके अनुकूल ही रहना चाहिये। सिद्धान्तका भी यही अभिप्राय है। सर्व पदार्थ अपने-अपने रूप में ही रहते हैं। कल्पनासे कुछ ही मान लो; परन्तु कल्पनाके अनुसार पदार्थ नहीं बदलता। अपने ज्ञानमें हमने रसरीको सर्प मान लिया; एतावता रसरी सर्प न हुई; परन्तु हमारी कल्पनाने सर्प मानकर हमको भयभीत कर दिया। अतः पर पदार्थको अनादिसे सुखकर व दुःखकर माननेकी जो प्रकृति है उसे त्यागो। यह अभ्यास यदि दृढ़तम हो जावेगा, अनायास इस संसार-बंधनसे हमारी मुक्ति हो जावेगी। इससे हमारे साथ जो पत्र व्यवहारकी प्रकृति है, त्याग दो। उससे दो लाभ होंगे—

परपदार्थको जॉचनेकी आदत छोड़नेका अवसर मिलेगा तथा परिग्रह-पापसे छूट जावोगे। सर्वमंडलीसे इच्छाकार।

ईसरी वाजार, जेठ वदि १२, सं० २००५ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[२०--२]

श्रीयुत् महाशय ब्र० सिंघई राजाराम जी, योग्य इच्छाकार

.... वास्तवमें प्रशंसासे कुछ लाभ नहीं। लाभ तो आत्माकी प्रशंसा व अप्रशंसा दोनो हीमें, जहाँ हर्ष-विषाद न हो, वहाँ है। उस दिनको अपने कल्याणका समझो जब आत्मामें परकृत उपकार-अनुपकारकी भावना मिट जावे। भैया राजाराम! मेरे अपनाने से न तो आपका कल्याण होगा और न आप मुझे अपनावेंगे। इससे मेरा भी कुछ कल्याण न होगा। वह दिन आपके उत्कर्षका होगा जिस दिन आप अपनेको अपनावेंगे। भैया! यदि मेरी वात पर श्रद्धा है तव अव ये सर्व कल्पनाएँ छोड़ दो। मैं सागर ही रहता; परन्तु न तो मैंने अपनेको अपनाया और न सागरने अपनेको अपना समझा। यह तो मैंने वास्तविक तत्त्व, जो समझा, आपको लिखा। अव लौकिक वात लिखता हूँ। वैशाख सुदि १२, सं० २००४ को श्री द्रोणगिरि क्षेत्र पर मैंने यह प्रतिज्ञा ली थी कि सागर-समाज एक लाख रुपया महिला-समाज महिलाविद्यालयको देवे तव जाना; अन्यथा सागर न जाना और यदि जाना हो जावे और वह यह पूरी न करे तव क्षुल्लक हो जाना। मैं सत्याग्रह न करता था; परन्तु मुझे हठात् ले गये। फल जो हुआ सो आपसे गुप्त नहीं। यही दशमी-प्रतिमाका कारण हुआ; परन्तु मेरी कुछ क्षति न हुई। हाँ, इतनी क्षति अवश्य हुई कि श्री १००८ पार्श्वप्रभुकी निर्वाणभूमि छूट गई तथा

जलवायुके लिये वह स्थान अच्छा था वह भी छूट गया। अस्तु, इसका कोई हर्ष-विषाद नहीं। उदयानुकूल सब बाह्य सामग्री मिलती है; परन्तु मोक्षमार्गका लाभ उदयाधीन नहीं। यह तो आत्माकी स्वाभाविक परिणति है। हर स्थान और हर संज्ञी पर्यायमे इसका लाभ होता है। अतः सन्तोष है। यदि यह न हुआ तब मनुष्यपर्यायका कोई तत्त्व हमने न निकाला। अतः जहाँ तक बने, आप कहीं रहो परन्तु बुद्धिपूर्वक मोक्षमार्गके लाभसे वञ्चित न रहना यही मेरा सन्देश सब त्यागीवर्गसे कह देना। जो ज्ञानी हैं, उनसे क्या कहूँ ? उनके तो यह खेल बाएँ हाथका है। परन्तु श्रोतावर्गसे अवश्य कहना। शास्त्र बाँचने और सुननेका फल तत्काल मोक्षमार्गका आंशिक लाभ है। यदि यह न हुआ तब कुछ न हुआ। स्त्रीसमाजसे भी कहना, शास्त्र श्रवणका फल यह है जो पर्यायमें निजत्व-कल्पना छोड़ दो। आत्मा न तो नपुंसक है और न स्त्री है और न पुरुष है। अतः पर्यायमें जो अपनेको तुच्छ समझती हो उसे छोड़ो और निजत्व का अनुभव करो। अपना कर्त्तव्य सम्हालो। जिनको तुम अपना मानती हो वह न तुम्हारे हैं और न तुम उनकी हो। वैसे कौन कहता है, तुम्हारी यह सम्पदा नहीं है; परन्तु इसमे मग्न न होओ। यदि व्यापारी-वर्ग हो तब कहना, यह जड़वाद बहुत अर्जन किया और इसीको खाया, दान दिया अथवा न खाया और न दान दिया, तिजोड़ी भर दी जो सात पीढ़ी खावे। फल क्या हुआ सो आपको अनुभूत है। परन्तु अब कुछ दिन आत्मीयगुणोंका विकाश करो। विकारको तजो जिससे आत्माको शान्ति मिले। हम तो सागरसमाजका उपकार मानते हैं जो उसके द्वारा हम उस पतित-अवस्थासे इस वेषमे पहुँच गए। परिणामवस्तु अन्तरङ्गकी अवस्था विशेष है। उसके विषयमें हम आपको

क्या लिखे—न तो हम आपके स्वामी हैं और न आप हमारे हैं। सिंघईजीसे कहना—पर्यायकी अन्तिम अवस्था है, जितना इसमें मूर्च्छा त्यागोगे, सुख पावोगे। न तो वर्णी शान्ति देगा और न गुलाब-तारा और न उनकी माँ और न रज्जू मुनीम और न मन्दिर-सरस्वतीसदन मानस्तम्भ आदि। ये तो सर्व ऊपरी निमित्त हैं। कल्याणका मार्ग तो अन्तरङ्गकी निर्मल-परिणति ही होगी जिसमे इन विभावोंके कर्तृत्वका अभिमान नहीं। हम क्यो बार-बार लिखते हैं? तुम्हारा अन्न खाया है तथा और बहुत उपकार हमारे ऊपर है उसीका यह तमाशा है। यद्यपि कोई किसीका कुछ नहीं करता। हम जो लिख रहे हैं सो निमित्तकारणकी मुख्यतासे। अथवा आज गर्मीका प्रकोप था, अत. उपयोग अन्यत्र न जावे। अथवा इस जातिकी कषाय थी। शेष शुभ। सर्व त्यागीवर्ग तथा विशेषतया प० छोटेलाल वर्णीजीसे इच्छाकार। नोट—श्रीयुत प० लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त' जी से कहना—आपके भावोंको जानकर प्रसन्नता हुई, परन्तु हमारी रक्षा करनेवाला न कोई है और न था और न होगा, क्योंकि हमारी पुण्यप्रकृति ऐसी है और हम इससे दुःखी भी नहीं। हाँ, आपके परिणाम अति प्रशस्त हैं। श्रीयुत विद्यार्थी नरेन्द्रजीसे आशीर्वाद। दवाई आ गई; परन्तु अभी हमारे उस चालका उदय नहीं जो दवाई लाभ पहुँचा सके। कार्यके प्रति कारणकूट होना चाहिए। हमको इस बातका अफसोस है जो आप छात्र पदकी अवहेलना करते हो। तुम्हारी इच्छा जो हो सो करो; परन्तु हम इसे अच्छा नहीं मानते। यह भी विश्वास है जो आप हमारा कहना भी इस विषयमें उपादेय न मानोगे।

मुरार छावनी, ग्वालियर
जेठ सुदि ६, सं० २००५

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

श्री ब्र० शान्तिदासजी

श्रीमन् ब्र० शान्तिदास जी नासिकके रहने वाले थे। इन्होंने जीवन कालमें बूढ़ी चँदेरी क्षेत्रकी बहुत सेवा की है। स्वभावके शान्त और निरहङ्कारी थे। पूज्य श्री वर्णी जी के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा थी। पूज्य वर्णी जी महाराजने इन्हें जो पत्र लिखे हैं उनमेंसे उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२१-१]

श्रीमान् ब्रह्मचारी शान्तिदास जी, योग्य इच्छाकार

आपकी हिम्मत प्रशंसनीय है। हम तो अकिञ्चित्कर हैं। आप पुरुषार्थी हैं। जो चाहो करो, परन्तु संघ न होनेसे होना कठिन है। धर्मध्यान अच्छा होता होगा। हमारा भी अच्छा होता है।

ईसरी बाजार,
आषाढ सुदि १५, स० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२१–२]

श्रीमान् ब्र० शान्तिदासजी, योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे आपकी अन्तरङ्ग-परिणति प्राणियोंके कल्याण की है, परन्तु किया क्या जावे। असंघरित-मनुष्योंमें आपका जो भाव है तदनुकूल-प्रवृत्ति होना असम्भव है। मेरी तो यही सम्मति है—सानन्दसे स्वाध्याय करो तथा अन्य विकल्प त्यागो। हम स्वयं आपकी बातको उत्तम समझते हैं, किन्तु क्या करें? अतः आपकी शक्ति जो है उसे अन्यत्र मत लगाओ, केवल स्वहितमें लगाओ। आनुसङ्गिक परकी भलाईमें लगे इसका विकल्प न करो।

ईसरी बाजार,
श्रावण सुदि ४, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० खेतसीदासजी

श्रीमान् ब्र० खेतसीदासजीका जन्म वि० स० १९३५ को विहार प्रदेशके गिरडीह नगरमें हुआ था। पिताका नाम प्रयागचन्द्रजी, माताका नाम रुक्मिणीदेवी और जाति खण्डेलवाल थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई थी फिर भी इन्होंने स्वाध्याय द्वारा अच्छी योग्यता सम्पादित कर ली थी।

इनके श्री गिरनारीलालजी, चिरञ्जीलालजी और श्री महावीरप्रसादजी ये तीन पुत्र तथा श्री पूर्णीबाईजी और ईसरीबाईजी ये दो पुत्रियाँ इस प्रकार कुल पाँच सन्ताने हैं। श्री ईसरीबाई यद्यपि अजैन कुलमें विवाही गई हैं पर ये अपने पूज्य पिताजीके द्वारा प्राप्त संस्कारोंके कारण जैनधर्मका उत्तम रीतिसे पालन करती हैं।

ब्र० जी स्वभावके उदार, कट्टर तेरह पन्थके अनुयायी और सप्तम प्रतिमाके व्रत पालते थे। इन्होंने अपने जीवन कालमें एक शिखरबन्द मन्दिरका निर्माण कराया था और उसकी व्यवस्था के लिए दो मकान लगा गये हैं।

वैसे तो ये अपने पुत्रोंके पास ही रहते थे फिर भी इनका अधिकतर समय स्वाध्याय आदि कार्योंमें ही व्यतीत होता था। इन्होंने समता तत्त्वका अच्छी तरह अभ्यास किया था। इनका समाधिमरण फाल्गुन शुक्ला ८ वि० सं० २०११ को हुआ था।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी विशेष भक्ति थी। फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखा गया एक पत्र यहाँ दिया जाता है।

[२२-१]

श्रीयुत ब्रह्मचारी खेतसींदासजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सर्व कुटुम्बसे दर्शनविशुद्धि। आप तो आप ही हैं। आपको क्या लिखे। मनुष्यको सब बन्धनोंमे स्नेहबन्धन अतिप्रबल है। मैं आपको निरन्तर कहता था—छोड़ो इस जालको, परन्तु मैं सागरके चक्रमें आ गया। अब मुझे आप लोगोंकी सूक्तियाँ याद आती हैं जो श्री पार्श्वप्रभुका शरण मत छोड़ो। उस समय मोहके नशामें एक न मानी। जब नशा उतरा तब अब याद आती हैं। हाँ क्या अनर्थ हुआ, परन्तु अब क्या होता है। जब जीव नरकमें पहुँच जाता है तब याद आती है जो मनुष्य पर्यायमें संयमादि न पाला। अब क्या होता है। बहुत उडांग मारे तब सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है। अस्तु. आप भी अब मोहको छोड़िये और शेष जीवनको सुखमय बिताइए। आपके बालक प्रायः अब शुद्ध प्रक्रियासे ही भोजनादिकी व्यवस्था करते होंगे तथा सदाचारादिकी रक्षामें सावधान होंगे।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

ब्र० जीवारामजी

श्रीमान् ब्र० जीवारामजी मेरठके आस-पासके रहनेवाले थे। इनका अन्तिम समय श्री १०५ क्षु० सहजानन्द जी (मनोहरलाल जी) के सम्पर्कमें व्यतीत हुआ है। पूज्य श्री वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा थी। यहाँ पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गए दो पत्र दिए जाते हैं।

[२३-१]

श्री ब्र० जीवारामजी, इच्छाकार

आनन्दसे काल जावे यही करना। आपत्तियाँ तो पर्यायमे आवेंगी जावेंगी, सहना करना। अशान्ति न आवे यही कर सकते हैं।

इटावा
पौष शु० १ स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२३-२]

श्री ब्र० जीवारामजी, योग्य इच्छाकार

संसारकी गति विचित्र है, यह सब कहते हैं। अपनेको इससे पृथक् समझते हैं यही आश्चर्य है। जिस दिन अपनी दुर्वलताका वोध हो जावेगा यह कल्पना विलीन हो जावेगी।

पौष सु० १४, स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० नाथूरामजी

श्रीमान् ब्र० नाथूरामजीका जन्म वि० सं० १९६९ को मध्यप्रदेशके दरगुवाँ ग्राममें हुआ है। पिताका नाम श्री बालचन्द्रजी, माताका नाम श्री केशरबाई और जाति परवार है। प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका विशारद तृतीय खण्ड तक अध्ययन हुआ है। इनके घरमें साहुकारीका व्यापार होता था।

प्रारम्भसे ही इनका चित्त गृहकार्यमें बहुत ही कम लगता था, इसलिए पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका सम्पर्क मिलने पर इन्होंने उनके पास वि० सं० २००२ को सातवीं प्रतिमाके व्रत ले लिये थे। इनका ये उत्तम रीतिसे पालन करते हुए अपने गुरुकी वैयावृत्य सेवा-सुश्रूषामें ही निरन्तर लगे रहते हैं। मुख्य रूपसे यही इनका स्वाध्याय है, यही संयम है और यही तप है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके ऊपर बड़ा अनुग्रह है। प्रायः ये पूज्य श्री वर्णीजीके छायावत् साथ रहते हैं, इसलिए पत्राचारका प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता है। एक ही ऐसा पत्र मिला है जो वि० सं० २००९ को किसी कार्यवश इनके बाहर रहने पर इन्हें लिखा गया था। उसे यहाँ दिया जाता है।

[२४–१]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी नाथूरामजी, योग्य इच्छाकार

रुपया ५०) आया था। हमने उसी समय २५) तो शाहपुर-विद्यालयके तिलोयपण्णत्तिके लिए दे दिये। ५) छात्रोंको फलके लिये दे दिये। २०) का आदिपुराण लिया गया। मैंने अपने उपयोगमें नहीं लगाया। मैं रुपया रख नहीं सकता। आप आइन्दा हमारे अर्थ रुपया न भिजवाना। श्री बाईजीको मैं बहुत ही निर्मल मानता हूँ। उनसे मेरा इच्छाकार कहना। आइन्दा मेरे द्वारा रुपया बाँटनेको न भेजें और न मेरे लिये भेजें। हम तो ईसरी छोड़कर बहुत ही पछताए, पर अब पछतानेसे कोई लाभ नहीं। जो भवितव्य था हुआ। कल्याणका मार्ग सर्वत्र विद्यमान है, पात्र होना चाहिए। मेरा श्री जीसे इच्छाकार तथा श्रीयुत चम्पालालजीसे इच्छाकार कहना। तथा सर्व उदासीन भाईयोंसे इच्छाकार। अब हम सागरमें हैं; किन्तु चतुर्मास देहातमें करेंगे। शहरमें उपयोग नहीं लगता। यहाँ शास्त्रमें प्रायः जनता बहुत आती है। एक हजारके अन्दाज आती होगी।

सागर,
चैत्र सुदि ४ सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी

श्रीमान् ब्र० लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी सागर जिलान्तर्गत करापुरके रहनेवाले हैं। इनकी आयु लगभग ४७ वर्ष है। पिताका नाम श्री नन्दलाल जी था। जाति परवार है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है। गृहत्यागके बाद इन्होंने अपना धार्मिक ज्ञान भी बढ़ा लिया है।

विवाह होनेपर कुछ दिनमें ही पत्नी वियोग हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत रहने लगे और पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजका सम्पर्क मिलनेपर ये उनके पट्ट शिष्य होकर उन्हींके साथ रहने लगे। इन्होंने उनके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा वि० सं० १९८९ में ली थी।

ये स्वभावके निर्भीक, निर्लोभी, सेवाभावी और कर्तव्यपरायण हैं। यों तो ये श्री १०८ आ० सूर्यसागर महाराजकी सेवामें अनवरत लगे रहते थे पर उनके समाधिमरणके समय इन्होंने जिस निष्ठासे उनकी सेवा की है उसका दूसरा उदाहरण इस कालमें मिलना दुर्लभ है।

ये प्रायः यत्र तत्र भ्रमण करते हुए धर्मप्रचारमें लगे रहते हैं। इनकी भोजन व्यवस्था आडम्बर शून्य और मनोवृत्ति सेवापरायण है, इसलिये जहाँ भी ये जाते हैं वहाँकी जनता इन्हें छोड़ना नहीं चाहती। संक्षेपमें ऐसा सेवाभावी निरहंकारी त्यागी होना इस कालमें दुर्लभ है।

पूज्य वर्णी जी महाराजमें भी इनकी विशेष भक्ति है। फलस्वरूप पूज्य वर्णी जी द्वारा इन्हें लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२५-१]

श्रीयुत महाशय लक्ष्मीचन्द्रजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं मनुष्य वही संसारसे पार होगा जो किसी भी पदार्थमे राग-द्वेष नहीं करेगा। संसार बन्धनरूपमे है। आपने यह लिखा जो आपने महाराज को अपना गुरु माना तब उनकी आज्ञा मानो। आपने यह कैसे निश्चय किया कि मैं महाराजकी आज्ञा नहीं मानता। आप जानते हैं महापुरुषोंका ही कहना है जो कहो उसे करो, परन्तु कहना न्याययुक्त हो। मेरा न तो दिल्लीसे स्नेह है और न उज्जैनसे और न किसीसे, क्योकि गुरुदेवका ही कहना है जो दिगम्बर वही है जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हो। मेरी महाराजमे भक्ति है। भक्ति किसको कहते हैं—'गुणानुरागो हि भक्तिः।' गुरुका गुण वास्तव है राग-द्वेषनिवृत्ति। तब आप ही विचारो मेरी जब उनमे भक्ति है तब मेरा उद्देश्य निरन्तर रागादि निवृत्तिकी ओर ही तो रहेगा। तभी तो मैं सच्चा गुरुभक्त कहलाऊँगा। दिगम्बर गुरुओंका यही तो उपदेश है—यदि संसार बन्धनसे मोचनकी वाँछा है तब दिगम्बर हो जावो। दिगम्बर भक्तसे संसार मोचन नही होगा। शारीरिक व मानसिक निर्वलता इसमे बाधक हैं सो नहीं, कषायकी उद्वेगता इस पदकी बाधक है। गर्मीका प्रकोप उतना बाधक धर्मसाधनका नहीं जितना बाधक अन्तरङ्ग कषायका सद्भाव है। वास्तवमे प्रवृत्तिरूप व्रत कषायमे ही होता है और उसी व्रतमे ये गर्मी, सर्दी क्षुधा और तृषादिक परिषह हैं और उन्हींके उदयमे वेदना है और उनकी उद्वेगतासे विचलित भी नहीं होता और जहाँ उस संज्वलन

का मन्द उदय होजाता है तब वहाँ धर्मध्यानकी उत्पत्ति हो जाती है। वह उद्वेग क्षुधादिकोंका नहीं होता, क्योंकि सप्तम गुणस्थानमें असाताकी उदीरणा या तीव्रोदय नहीं रहता। वास्तव चारित्र तो प्रतिपक्षी कषायके अभावमे होता है। जितने अंश कषायके रहते हैं वे सर्व चारित्रके बाधक ही हैं। हमने जिसके उदयमें महाराजको अपना गुरु माना उसके उदयमे बराबर मानते रहेंगे इसमें सन्देह का स्थान नहीं। हम चाहते तो हैं—महाराजका ऐसा आशीर्वाद हो जो ऐसा अवसर हमे मिले जो इन उपद्रवोंसे हमारी रक्षा हो। मैं तो मानना और न मानना दोनों ही उपद्रवोकी जड़े हैं ऐसा मानता हूँ। परन्तु इसमे तारतम्य है। एक ऐसी भी अवस्था है जो इससे भी परे है उसका अनुभव हम जैसे तुच्छ जीवोंको नहीं, महाराज ही जानें। हम तो उनके वचनोंके आधारसे लिख गए। वस्तु क्या है वह जानें—

जेठ सुदि ४, सं० २००५ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२५–२]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी लक्ष्मीचन्द्र जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। खेद करनेकी बात नहीं। आपको समागम ऐसे निरक्षेप व्यक्तिका है जो अन्यत्र दुर्लभ है, अतः मेरी सम्मति मानो तब पं० जीसे दशाध्याय सूत्र प्रवेशिका पढ़ लो और स्वाध्यायमे उपयोग लगाओ। पश्चात् मध्यप्रान्तमें रहो—सागर, खुरई, दमोह, जबलपुर। स्वपर कल्याण करो। यहां पर आपके अनुकूल वातावरण नहीं। हम तो सर्व सहन कर लेते हैं। मध्यप्रान्त

बुन्देलखण्ड अब हमको प्रतीत हुआ। उत्तम प्रान्त है। द्रव्यकी त्रुटि है परन्तु कई अंशोंमें अत्युत्तम है। प० जीसे हमारी कल्याण पात्र हो यह भावना उनके प्रति रहती है। योग्य व्यक्ति है। यदि वे हों तब कहना कि सर्व चिन्ता छोड़ जैनागमका प्रकाश करना। इससे उत्तम शान्तिका मार्ग नहीं।

ईसरी बाजार, हजारीबाग
भाद्र वदि १, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० शीतलप्रसादजी

श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसाद जी का जन्म मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत शाहपुरमें अषाढ़ कृष्णा ७ वि० सं० १६४८ को हुआ था। पिताका नाम लाला मथुरादासजी था। जाति अग्रवाल है। प्राथमिक शिक्षा लेनेके बाद ये अपने पिताके साथ बहुत दिन तक कपडेका व्यापार करते रहे।

इस समय ये पूर्ण ब्रह्मचर्यके साथ दूसरी प्रतिमाके व्रत पालते हैं। इनके दीक्षा गुरु पूज्य वर्णी जी महाराज स्वयं हैं। ब्रह्मचर्य दीक्षा लेनेके बाद ये गृहकार्यसे पूर्ण विरत हो गये और धर्मध्यान पूर्वक अपना जीवन यापन करने लगे। इन्होंने स्वाध्याय द्वारा धार्मिक ज्ञान भी अच्छी तरह सम्पादित कर लिया है और उस प्रान्तकी स्वाध्याय मण्डलीके प्रमुख सदस्य है। वर्तमानमें ये हस्तिनापुर उत्तरप्रान्तीय गुरुकुलके अधिष्ठाता पदका कार्यभार सम्हालते हुए धर्म और समाजकी सेवा कर रहे है। ये स्वभावसे विनम्र और निष्पक्ष हैं।

पूज्य श्री वर्णीजीमें इनकी विशेष भक्ति है। यदा कदा जिज्ञासावश उन्हें पत्र भी लिखते रहते हैं। उत्तरस्वरूप जो पत्र पूज्य श्री वर्णीजीने इन्हें लिखे हैं उनमेंसे उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२६—१]

श्रीयुत महाशय पं० शीतलप्रसादजी साहब, योग्य इच्छाकार

आप लोकोंका समय निरन्तर आगमाभ्यासमें जाता है इससे उत्तम पर्यायका उपयोग क्या हो सकता है। हम तो निरन्तर अनुमोदनासे ही प्रसन्न रहते हैं। लाला मक्खनलाल जीसे इच्छाकार। वह तो विलक्षण जीव हैं। मनुष्यपर्य्यायकी सफलता ममता त्यागमें है।

आ० शु० चि०
फा० सु० ५, स० २०१० } गणेश वर्णी

[२६—२]

श्रीयुत महाशय शीतलप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। शान्तिका कारण न तो किराना है और न हस्तनागपुर है और न ईसरी है। शान्तिका कारण तो अन्तरङ्ग विकृतिका अभाव है जो आपकी दूर हुई वह क्यों दूर हुई आप जानो। मेरी तो यह धारणा है जो हम मोही जीव केवल निमित्तोंपर सर्व अपराधोंके कारणोंका आरोप करते है। यह महती त्रुटि है। मैं अपनी कथा लिखता हूँ। आपमें हो व न हो। अस्तु, गुरुकुल संस्था उत्तम है। यदि उस प्रान्तवाले चाहें तब १०० छात्रोंका प्रबन्ध होना कठिन नहीं। परन्तु दृष्टिपात हो तब न। १०० आदमी १०००) प्रतिव्यक्ति देवें। अनायास गुरुकुल चल सकता है। श्री त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शनविशुद्धि। श्रीमान् भगतजीसे इच्छाकार। जहाँ तक बने

समाजको सम्यग्ज्ञानी बनाना। चारित्र अनायास आ जावेगा। यथार्थ पदार्थको जाननेकी महती आवश्यकता है। वहाँ पर जो हकीमजी हैं, हमारा आशीर्वाद कहना। सर्व जीव रक्षाके पात्र हैं। मनुष्यकी मनुष्यता यही है जो अपनेके सदृश सर्वको देखे।

भाद्र वदि ३, सं० २०११ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२७–१]

श्रीमान् त्यागी परशुरामजी, इच्छाकार

आपको तो वही समागम है जिस समागमको अच्छे-अच्छे पुरुष चाहते हैं। यह आपकी सज्जनता है जो आप हमसे भी कल्याण किया चाहते हैं। आप तो हंस जैसे श्रोता हैं। हम तो अगत्या श्रीपार्श्वप्रभुके पादमूलमें ही आयु पूर्ण करेंगे, क्योंकि पोतके पक्षी हैं। कल्याणका मार्ग तो पास ही है, कहीं रहिये। निमित्तकी योग्यता भी पास ही है; क्योंकि संज्ञीपना और निरोगता, जैनधर्ममें प्रेम, उत्तम क्षेत्र आदि सर्व कारण मिल ही रहे हैं। धर्मकी वृद्धिके साधन, कल्याणमूर्ति बाईजी तथा कल्याणभवन आदि सबसे आप सम्पन्न हो। अब परिणामोंकी निर्मलता जो मुख्य धर्म साधनका कारण है सो आपकी ही है। यदि उसमें कुछ विषमता आती हो तब उसे दूर करनेकी चेष्टा करिये। विशेष क्या लिखूँ।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० हरिश्चन्द्रजी

श्रीमान् ब्र० हरिश्चन्द्रजी सहारनपुरके आस-पासके रहनेवाले हैं। प्रारम्भसे ही ये गृहकार्यसे विरत हो लोकसेवाके कार्यमें लगे रहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रतके साथ सत्यव्रतका ये उत्तम प्रकारसे पालन करते हैं। जीवनमें कितनी ही कठिनाई और आर्थिक हानि क्यों न उठाना पड़े पर ये भूलकर भी असत्य भाषण करना स्वीकार नहीं करते।

श्री हस्तिनापुर गुरुकुलकी ये प्रारम्भसे ही सेवा करते आ रहे हैं और वर्तमानमें उपअधिष्ठाताके पदको सम्भालते हुए उसीकी सेवा कर रहे हैं। बीचमें संस्कृत और धर्मशास्त्रकी शिक्षा लेनेके लिए ये बनारस विद्यालयमें भी रहे हैं। ये स्वभावसे निस्पृह हैं।

पूज्य श्री वर्णीजीमें इनकी अनन्य भक्ति है। पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२८—१]

श्रीयुत ब्र० लाला हरिश्चन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

.......अब आप सानन्द धर्मध्यान करें और जहाँ तक बने आजीविकाके योग्य द्रव्योपार्जन कर धर्मकी लेन पर आजावें। संसारकी दशा निरन्तर वही रहेगी। इसके चक्रसे निकलना बड़े महत्त्वका कार्य है।

ईसरी
२५-१२-१९३७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—२]

श्रीयुत ब्र० महाशय लाला हरिचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

........आपने जो चावल भेजे वह आगए तथा खरबूजा आदि आगए। मेरी समझमे नहीं आता, आप इतना क्यों करते हैं? भाई साहब जहाँ तक बने इस द्वन्द्वसे पृथक् होनेकी चेष्टा करो और आत्मकल्याणके मार्गमें अग्रेसर होओ; वहाँका पथिक वही हो सकता है जो त्याग मार्गके सम्मुख होगा। सर्वसे प्रथम निःशल्य होनेकी चेष्टा करो और विद्योपार्जनमे काल यापन करो। अनन्तर निवृत्तिमार्गका कषायकी तरतमता देखकर उपाय करो। लाला अर्हद्दासजीसे दर्शनविशुद्धिः।

ईसरी
३१-५-३८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

.......चिन्ता करनेसे कुछ साध्य नही, अब तो कर्तव्यपथ पर

आनेसे ही कल्याण है। हम हजारीवाग नहीं जावेंगे। संग दुःखकर है; अतः निसगमें ही सुख है। विरागता कहीं नहीं, अपने अन्तस्तलकी रागादि परणति मिटादो।

ईसरी } आ० शु० चि०
२६-३-३६ } गणेश वर्णी

[२८-४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

....जहाँ तक बने अब आप अपनी दृढ़ श्रद्धा रखिए और केवल श्रद्धाकी दृढ़ता मोक्षमार्ग नहीं। जबतक उसपर अमल नहीं करोगे, कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। यही सर्वत्र कार्यकी सिद्धि होनेकी प्रणाली है। अब केवल बातोंसे कार्य न होगा।

ईसरी } आ० शु० चि०
८-५-३६ } गणेश वर्णी

[२८-५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... हमारी तो यह सम्मति है, अब आप विशेष व्यय करनेके अर्थ व्यापारमें न फँसें। यदि उदयसे हो जावे करो परन्तु आकुलता कर धनकी उत्पत्ति कदापि धर्मकी जननी नहीं। जिनके पास अन्यायका द्रव्य है उनके द्रव्यसे उन्हें तो धर्मका लाभ दूर रहो; उनका द्रव्य जहाँ लगेगा वहाँ भी लाभ न होगा। वर्तमानमें जो आयतन हैं, उनसे जान सकते हो।

ईसरी } आ० शु० चि०
२०-५-३६ } गणेश वर्णी

[२८–६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... देखो, जहां तक बने ऐसी व्यवस्था बनाओ जो चिरन्तन विना किसी उपद्रवके धर्मसाधन होता रहे। आज कल गृहस्थ लोग वहुत कुछ धर्मसाधनके पिपासु रहते हैं, किन्तु ऐमे कारण कूट उनके हैं जो मनोनीत धर्म साधन नहीं कर सकते। आपको दैवने उन कारण कूटोसे स्वयमेव बचा दिया, केवल आजीविका की चिन्ता आपको है। सो यदि योग्य रीतिसे आप निर्वाह करेंगे तव तीन या चार वर्षमे स्वतन्त्र हो सकते हो, किन्तु यदि उस पथ पर अमल करो। वह आपसे होना अति कठिन है। जहां तक बने स्वाध्यायमें काल लगाना। श्री जिनेश्वरदास जी आदि मण्डली के साथ तत्त्वचर्चा करो। यह जीव कल्याण चाहता है, परन्तु केवल इस भावसे उसका लाभ होना कठिन है। कल्याणका मार्ग आभ्यन्तर कषायोकी कृशतामें है सो होना स्वाधीन है, पर उसे भी स्वर्ग-नरकादिकी प्राप्ति जैसे परसे होती है वैसा मान रक्खा है। हमारी समझमें ऐसा वह नहीं है, वह तो शुद्धभावके आश्रय है। शुद्धभावका उदय स्वमे होता है। उसमें निमित्त कारणोंकी मुख्यता नहीं। अतः एकान्तमे अच्छी तरहसे मनन करो और पराधीनताके बन्धनसे मुक्त होनेका उपाय करो। विशेष चर्चा समागमसे होती है; सो वहाँ प्रायः अन्यत्र से समागम अच्छा है।

हजारीबाग,
१६-६-३६

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[२८–७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

....उदयकी बलवत्ता यद्यपि आपके अध्ययनमें विघ्नकरी हो

गई; परन्तु आप इसे बाधक न समझें और स्वास्थ्य लाभकर स्वीय उद्देश्यकी पूर्ति करें। अध्ययन ही इस समय आपके कल्याण मार्गमें पाथेय होगा।

ईसरी
११-१०-३६ } आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[२८-८]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... ज्ञान धनसे उत्तम धन अन्य नही सो उसके विकाशमे सब चिन्ताओंका त्याग करो। आत्माकी निर्मलताका मुख्य कारण वही है। धनादिक पदार्थ वो उसके घातकके नोकर्म हैं। सर्वसे मुख्य लाभ वही है जो आत्माको निराकुलताका हेतु हो। श्री पं० निद्धामल्लजी साहब योग्य दर्शनविशुद्धिः।

ईसरी
२७-७-४० } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८-९]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... इतना प्रवल मोहको त्यागकर अब चित्तवृत्ति शान्त कर अध्ययन करो। अभी आपकी आयु विद्यार्जनकी है, त्यागके वास्ते तो पर्याय बहुत है। अब भी तो त्यागी हो, केवल हम लोगोंकी तरह हल्दी, नमक, मिर्च छोड़नेमें कुछ तत्त्व नहीं। तत्त्व तो ज्ञानार्जनकर राग-द्वेषकी कृशतामें है। ज्ञानार्जनकर स्वात्म-दृष्टिको निर्मल करना अपना ध्येय बनाओ। आजकलके

त्यागियोंकी प्रवृत्तिको देखकर व्यामोह न करना। उद्विग्नता विद्यार्जनमें महती क्षतिकारी है।

भादो वदि १, सं० १९९९ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—१०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... मनुष्य वही है, जो अपना हित करले। साता या असाता का उदय रति व अरतिके साथ ही अपना कार्य कर सकता है। अतः जहाँतक असाताको दूर करनेकी चेष्टा न कर मोहके कृश करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। कुत्तेकी तरह लाठीको नहीं चवाना चाहिए। जितने भी आत्माके साथ कर्मबन्ध हैं, मोहके सद्भावमें हैं। इसके विना आपसे आप चले जाते हैं, अतः मोहनीय कर्मके उत्पादक राग-द्वेष, मोह इन आत्मपरिणामोंको समूल नाशकर संसारका अन्त करना ही ज्ञानी जीवका कार्य है।

ईसरी
११—६—४१ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—११]

योग्य दर्शनविशुद्धि

.......आपने स्वाधीनतापूर्वक विद्याभ्यास करना प्रारम्भ किया अति उत्तम है। परन्तु इस प्रकार व्यवस्था करना जो शीघ्र ही इस कार्यसे छुटकारा पाजाओ। संसारमें शान्तिका उपाय तत्त्वज्ञान-

पूर्वक राग-द्वेष निवृत्ति है, अतः पहले तत्त्वज्ञान अर्जन करो, त्यागधर्मकी प्रशंसा सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही है।

अ० सु० ४, सं० १९९७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८-१२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

…… ……इस संसारमें यही होता है। जब तक संसार पर्यायका अन्त न हुआ तब तक यही होगा। संसारके अन्तके कारण जानते हैं, परन्तु जब तक उनका सद्भाव आत्मामें नहीं होता तब तक कार्यकी सिद्धि होना कठिन है।

गिरिडीह,
७-१०-४१ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८-१३]

योग्य, दर्शनविशुद्धि

……जगत् विकारमय है, इसका दूर करना परमार्थसे कठिन है। हमारा स्वास्थ्य अब यही कहता है, अपनी ओर जावो। इन पराश्रित कार्योंसे विरत होओ, पर मोहकी महिमासे पीड़ित हैं। केवल श्रद्धाके बलसे आत्मा जीवित है, अन्यथा जो होता है वही होगा।

मेरठ
२८-१२-४८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८-१४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

……मेरी तो श्रद्धा है, ज्ञानार्जनकी इच्छा ही साधक है। यह

आवश्यक नहीं जो षट्रसोंका त्यागकर अध्ययन किया जावे। करोगे तब प्रायः कुछ बाधा ही होगी।

सागर
जेठ वदि ६, स० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—१५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

वासना भी कोई वस्तु है। ससार ही इसी वासनाका बन रहा है। हम लोगोंने अनादि कालसे शरीरको निज समझा है और इसीके सम्बन्धसे जाति-कुलकी भी हमारी आत्मामे गौरवता ठसी हुई है। यद्यपि यह कोई गुरुत्वका परिचायक नहीं। गुरुताका सम्बन्ध आत्मगुणकी निर्मलतासे है। उस ओर हम लोगोंका लक्ष्य नहीं, लक्ष्य न होनेका मूल कारण अनादि कालसे परमे निजत्वकी कल्पना अन्तःकरणमे समा रही है। उसका पृथक् होना अति कठिन है। उसका उपाय बड़े-बड़े महर्षियोंने सम्यक् दिखाया है, परन्तु उससे हमारा आदर नहीं।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[२८--१६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

······ असाताके उदयमे वही होता है, अतः शान्तिसे जो बीत गया उसे जाने दो। अब जिससे शान्ति मिले वह उपाय करना मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है। लौकिक कार्योंमे सुख है नहीं, व्यर्थ चेष्टा करना है।

द्रव्यको पर समझो, उतना ही अर्जन करो जो तुम्हारे निजके धर्मसाधनमें साधक हो। हम स्वयं अतिथि बनें।

मेरी तो यह धारणा है जो न्यायानुकूल अर्जन करता है वह स्वयं अतिथि है, क्योंकि अतिथिसंविभागव्रत लोभ निरास और सघको दानसे उनकी ज्ञानार्जनमे थिरताका कारण है। हम जब स्वय ज्ञानार्जन करनेमे लग जावेंगे तब स्वयं अतिथि हो जावेंगे. अतः इस अभिप्रायको छोड़कर ही विद्याभ्यास करो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८–१७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी तो भावना मात्र ही आपके उत्कर्ष की है। मुझे तो अब आकिंचन धर्म ही शरण है। आशा है आप निराश न होंगे। मनुष्य केवल ज्ञान उपार्जन कर लेता है, यह क्या बड़ी बात है।

सागर
२६, ७, ५२

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

प्रशममूर्ति माता चन्दाबाई जी

श्रीमती ब्र०प्रशममूर्ति माता चन्दाबाईका जन्म आषाढ़ शुक्ला तृतीया वि० सं० १९४६ को वृन्दावनमें हुआ था। पिताका नाम बाबू नारायणदासजी और माताका नाम राधिकादेवी था। जाति अग्रवाल है। इनकी प्राथमिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई थी।

जन्मसे वैष्णव होने पर भी इनका विवाह आरानिवासी प्रसिद्ध रईस और जैन धर्मानुयायी बाबू धर्मकुमारजीके साथ ग्यारह वर्षकी उम्रमें सम्पन्न हुआ था। किन्तु एक वर्षके बाद ही इन्हे पति वियोगके दुःसह दुःखका सामना करना पडा।

इतना होने पर भी इन्होने अपनेको सम्हाला और अपने गुरुजनोंका सहयोग मिलनेपर अपने जीवनको बदल डाला। ये पहले संस्कृत और धर्मशास्त्रके अध्ययनमें जुट गईं। उसके बाद इन्होंने एक कन्या पाठशालाकी स्थापना की। आगे चलकर इसी कन्या पाठशालाने जैन बालाविश्रामका बृहद्रूप धारण किया। श्री अ० भा० दि० जैन महिलापरिषद्की स्थापना और महिलादर्श मासिक पत्रका सञ्चालन भी इन्होंने ही किया है। इनकी सेवाएँ बहुत हैं। यदि इस युगमें इन्हें नारी जागरणका अग्रदूत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

वर्तमानमें ये ब्र० प्रतिमाके व्रत पालती हुई धर्म और समाजकी सेवा कर रही हैं। इनके दीक्षा गुरु श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज हैं। ऐसी लोकोत्तर महिलारत्न वर्तमानमें हमारे बीच मौजूद हैं इसे समाजका भाग्य ही कहना चाहिए।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा है। पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहां दिये जाते हैं।

[१—१]

श्री प्रशममूर्त्ति तत्वज्ञाननिधि ब्र० पं० चन्दाबाईजी

योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य (स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुसाम्) अच्छा होगा। लौकिक स्वास्थ्य तो पञ्चम कालमे धनिक समाजका प्राय: विशेष सुविधाजनक नहीं रहता। इस समयकी न जाने कैसी हवा है जो मोक्षमार्गकी आंशिक प्राप्ति भी प्राय: जीवोंको दुर्लभसी हो रही है। त्याग करने पर भी तात्त्विक शान्तिका आस्वाद नहीं आता, अत: यही अनुमान होता है जो आभ्यन्तर त्याग नही। मैं अन्य प्राणियोंकी कथा नही लिख रहा हूँ, स्वकीय परिणामोंका परिचय आपको करा रहा हूँ। जैनधर्म तो वह वस्तु है जो उसका आंशिक भाव यदि आत्मामे विकाश हो जावे तब आत्मा अनन्त संसारका उच्छेद कर जिनेश्वरके लघुनन्दन व्यपदेशका पात्र हो जावे। अत: निरन्तर यही भावना रहती है कि हे प्रभो ! आपके दिव्य ज्ञानमे यही आया हो जो हमारी श्रद्धा आपके आगमके अनुकूल हो, यही हमें ससारसे पार करनेको नौका है।

वही व्यक्ति मोक्षमार्गका अधिकारी है जो श्रद्धाके अनुकूल ज्ञान और चारित्रका धारी हो। कभी २ चित्तमे उद्वेग आ जाता है कि अन्यत्र जाऊँ, अन्तमे यही समाधान कर लेता हूँ कि अब पारसप्रभुका शरण छोड़कर कहाँ जाऊँ। जहाँ जावोगे परिणामोंकी सुधारणा तो स्वय ही करना पड़ेगी। यह जीव आजतक निमित्त कारणोंकी प्रधानतासे ही आत्मतत्त्वके स्वादसे

वंचित रहा। अतः अपनी ओर दृष्टि देकर ही श्रेयोमार्गकी ओर जानेकी चेष्टा करना ही मनुष्य कर्त्तव्य पथ है। श्री निर्मलकुमारकी मातासे इच्छाकार।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—२]

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपका स्वाध्याय सानन्द होता होगा। हम भी यथा योग्य स्वाध्याय करते हैं, परन्तु स्वाध्याय करनेका जो लाभ है उसके अभावमे कुछ शान्तिका लाभ नहीं। व्यापार करनेका प्रयोजन आय है, आयके अभावमें कुछ व्यापारका प्रयोजन सिद्ध नही होता। बाईजी! रामागमको दोष देना तो अज्ञानता है। क्या करें, हमारा अतरंग अभी उस तत्त्व तक नही पहुँचा जहाँसे शान्तिका उदय होता है। केवल पाठ के अर्थमे ही बुद्धिका उपयोग रह जाता है। ज्ञानका फल विरति है, वह अभी बहुत दूर है। समयसारका स्वाध्याय तो करता हूँ, परन्तु अभी उसका स्वाद नहीं आता, परन्तु श्रद्धा तो है। विशेष क्या लिखूँ? श्री सिद्धान्तका भी स्वाध्याय किया, विवेचन शैली बहुत ही उत्तम है। आपको क्या लिखूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति प्रायः अलौकिक है। जहाँ तक बने अब उसे यातायातकी हवासे रक्षित रखिये। श्री चिरञ्जीव निर्मलबाबूकी माँ सानन्द होंगी? उनसे मेरा धर्मप्रेम कहना। अब शेष जीवनमें जो उदासीनता है उसे ही वृद्धिरूप करनेमे उपयोगकी निर्मलता करें यही कल्याणका मार्ग है। यह बाह्य समागम तो पुण्यका

फल है और निर्मलता संसार बंधनको छेदन करनेमें तीक्ष्ण असिधारा है। वह जितनी निर्मल रहेगी उतनी ही शीघ्रतासे इसका निपात करेगी। हमने आपके समस्त सराग जातिके अर्थ भ्रमणका विचार किया था। कोईने बात न पूछी और न कोई साधन जानेका मिला, अतः आपकी सम्मति ही सर्वोपरि मानकर यहीं रहना ही निश्चित रक्खा है। शेष यहाँके सर्व त्यागी आपको इच्छाकार कहते हैं। श्री आत्मानन्दजी चला गया। श्री सूरजमल जीका कार्य्य जैसा था वैसा ही है। "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे" इसीमे सन्तोष है। मैं तो निर्द्वन्द्व हूँ, कुछ इसमें चेष्टा नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-३]

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी साहब, योग्य इच्छाकार

पर्वराज सानन्द पूर्ण हुआ, दशधा धर्मको यथाशक्ति सुना, सुनाया, मनन किया। क्या आनन्द आया इसका अनुभव जिसको हुआ हो जाने। इसका पूर्ण आनन्द तो दिगम्बर दीक्षाके स्वामी श्री मुनिराज जाने। आंशिक स्वाद तो व्रतीके भी आता है और इसकी जड़ अविरत अवस्थासे ही प्रारम्भ हो जाती है जो उत्तरोत्तर वृद्धि होती हुई अनन्त सुखात्मक फलका पात्र इस जीवको बना देती है। परमार्थ पथमें जिन जीवोंने यात्रा कर दी है उनकी दृष्टिमे ही यह तत्त्व आता है, क्योंकि इस पवित्र दशधा धर्म्मका सम्बन्ध इन्हीं पवित्र आत्माओंसे है। व्यवहाररत तो उसकी गन्धको तरसते हैं। आडम्बर और है.

वस्तु और है। नकलमें पारमार्थिक वस्तुकी आभा भी नहीं आती। हीराकी चमक कांचमे नहीं। अतः पारमार्थिक धर्म्मका व्यवहारसे लाभ होना परम दुर्लभ है। इसके त्यागसे ही उसका लाभ होगा। व्यवहार करना और वात है और व्यवहारसे धर्म्म मानना और वात है। व्यवहारकी उत्पत्ति मन, वचन, काय और कषायसे होती है और धर्मकी उत्पत्तिका मूल कारण केवल आत्मपरिणति है। जहाँ विभाव परिणति है वहाँ उसमें धर्म मानना कहाँ तक सगत है? आपकी परिणति अति शान्त है। यही कल्याणका मार्ग है। वावू निर्मलकुमारकी माँ सानन्द होंगी। उनसे मेरा इच्छाकार कहना और वावूजीसे भी मेरी दर्शनविशुद्धि, किसी प्रकारका विकल्प न करें।

जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कबहूँ नहि होसी काहे होत अधीरा रे॥

विशेष क्या लिखूं?

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दावाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका धर्म साधन अच्छे प्रकारसे होता होगा। अतरंगके परिणामोंके ऊपर दृष्टिपात करनेसे आत्माकी विभाव परिणति का पता चलता है। आत्मा परपदार्थोंकी लिप्सासे निरन्तर दुःखी रहता है। आना जाना कुछ नहीं, केवल कल्पनाओंके जाल मे फँसा हुआ अपनी सुधमे बेसुध हो रहा है। जाल भी अपनी

ही कर्त्तव्यताका ही दोष है। एक जिनागम ही शरण है। यही आगम पंचपरमेष्ठीका स्मरण कराके आत्माकी विभावसे रक्षा करनेवाला है। श्री चिरजीव निर्मलबाबूसे मेरा आशीर्वाद। उनकी निराकुलता जैन जनताका कल्याण करनेवाली है। इनकी माँ साहबको इच्छाकार कहना। मेरा विचार श्री राजगृहीकी वन्दनाका है और कार्तिक सुदी ३ को यहाँसे चलनेका था परन्तु यहाँ पर विहार उड़ीसा प्रान्तकी खंडेलवाल सभाका कार्तिक सुदी ९।११ तक अधिवेशन है, इससे अगहनमे विचार है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—५]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया समाचार जाना। अब शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वामी समंतभद्राचार्य्यने तो ऐसा लिखा है:—

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां।
स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा॥
तृषोऽनुषंगान्न च तापशान्ति-
रिति रेवमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः॥

जब तक आभ्यन्तर हीनता नहीं गई तभी तक यह वाह्य निमित्तोंकी मुख्यता है और आभ्यन्तर हीनताकी न्यून्यतामें आत्मा ही समर्थ बलवान् कारण है। वही परम कर्तव्य इस पर्यायसे होना श्रेयस्कर है। लौकिक विभव तो प्रायः अनेक बार प्राप्त किये परन्तु जिस विभव द्वारा आत्मा इस चतुर्गतिके फन्देसे

पृथक् होकर सानन्द दशाका भोक्ता होता है वही नहीं पाया। इस पर्यायमें महती योग्यता उसकी है, अतः योग्य रीतिसे निराकुलता पूर्वक उसको प्राप्त करनेमें सावधान रहना ही तो हमें उचित है। मेरा श्री निर्मलकुमारकी मांसे इच्छाकार कहना और कहना कि अब समय चूकनेका नहीं। यह श्रद्धान बड़ी कठिनतासे पाया है। बुआर्जा आदिसे धर्मस्नेह कहना। स्थिर प्रकृतिका उदय तो उनके है। यह निरोगिता भी कोई पुण्योदयसे मिली है। उन्हें बाह्य ज्ञान न हो परन्तु अन्तःनिर्मलता है। मैंने अगहन सुदी १५ तक ईसरीसे ४ मीलसे बाहर न जाना यह नियम कर लिया है, क्योंकि आपके शुभागमनके बाद कुछ चंचलता बाहर जानेकी हो गई थी। चंचलताका अन्तरंग कारण कषाय है, उसका बाह्य उपाय यही समझमें आया है। श्रीद्रोपदीजी को कहिए जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाका स्वाध्याय करें।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[१-६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

श्री निर्मलबाबूकी माँका समाचार भगतजी द्वारा जानकर चित्तमें क्षोभ हुआ परन्तु इस वाक्यको पढ़कर सन्तोष हुआः—

> जं जस्स जम्हि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि।
> णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा॥
> तं तस्स तम्हि काले तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि।
> को सक्कइ चालयिदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा॥

जो हो कुछ चिन्ताकी बात नहीं। इस समय उन्हें तात्त्विक और मार्मिक सिद्धान्त श्रवण कराके स्वात्मोत्थ निराकुल आनन्दामृतका आस्वादन कराके अनन्तानुपम सिद्ध भगवानका ही स्मरण करानेकी चेष्टा करानी ही श्रेयस्करी है। इस गोष्ठीको छोड़कर लौकिक वार्तोंकी चर्चाका अभाव हो अच्छा है। इस संसारमे सुख नही, यह तो एक सामान्य वाक्य प्रत्येककी जिह्वा पर रहता है ठीक है, परन्तु ससार पर्यायके अभाव करनेके बाद तो सुख है। सुख कहीं नही गया. केवल विभाव परिणति हटानेकी दृढ़ आवश्यकता है। इस अवसर पर आप ही उनकी वैयावृत्तिमें मुख्य गणिनी हैं। वह स्वयं साध्वी है। ऐसा शत्रुको पराजय करें जो फिरसे उदय न हो। यह पर्याय सामान्य नहीं और जैसा उनका विवेक है वह भी सामान्य नही। अतः सर्व विकल्पोंको छोड़ एक यही विकल्प मुख्य होना कल्याणकारी है जो असातोदयके मूल कारणको निपात करनेकी चेष्टा सतत रहनी चाहिये। असातोदय रोग मेटनेके लिए वैद्य तथा औषधादिकी आवश्यकता है फिर भी इस उपचारमे नियमित कारणता नहीं। अतरग निर्मलतामें वह सामर्थ्य है जो उस रोगके मूल कारणको मेट देता है। इसमें वैद्यादिक उपचारकी आवश्यकता नहीं केवल अपने पौरुपको सम्हालनेकी आवश्यकता है। श्री वादिराज महाराजने अपने परिणामोंके बलसे ही तो कुष्ट रोगकी सत्ता निर्मूल की। सेठ धनञ्जयने औषधके विना पुत्रका विषापहरण किया। कहाँ तक लिखे, हम लोग भी यदि उस परिणामको सम्हालें तो यह बिजलीका आताप क्या वस्तु है? अनादि संसार आतपको शमन कर सकते हैं। मेरे पत्रका भाव उन्हे सुना देना।

[१—७]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। श्री निर्मलबाबूकी माँकी विशुद्ध परणति है। असाताके उदयमें यही होता है। और महर्षियो को भी यह असातोदय अपना कार्य करता है परन्तु उनके मोहोदय की कृशता है, अतः वह अघाती प्रवृत्ति कुछ कार्य करनेमे समर्थ नहीं ह ती। यही बात अशतः श्री निर्मलबाबूकी माँमें भी है, अतः वे सप्रसन्न इस उदयको निजरारूपमे परिणत कर रही हैं। उन्हें इस समय मेरी लघु सम्मतिसे तात्त्विक चर्चाका ही आस्वाद अधिक लाभप्रद होगा। संसार असार है कोई किसी का नहीं यह तो साधारण जीवोंके लिए उपदेश है, किन्तु जिनकी बुद्धि निर्मल है और भावज्ञानी हैं उन्हें तो प्रवचनसारका चारित्र अधिकार श्रवण कराके—

"आतमके अहित विषय कषाय।
इनमे मेरी परणति न जाय॥"

यही शरण है ऐसी चेष्टा करना ही श्रेयस्करी है। अनादि कालके अद्यावधि संसारमे रहनेका मूल कारण यही विषय कषाय तो है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद विषय कषायका स्वामित्व नहीं रहता, अतः अविरत होत हुए भी अनन्त ससारका पात्र सम्यक्त्वी नहीं होता। यदि उनकी आयु शेष है तब तो नियमसे निर्मल भावो द्वारा असाताकी निर्जराकर कुछ दिन बाद हम लोगोको भी उनके साथ तात्त्विक चर्चाका अवसर आवेगा। आपका प्रबल पुण्योदय है जो एक धार्मिक जीवकी वैयावृत्त करनेका अनायास अवसर मिल रहा है। श्रीयुत भगत

जीसे मेरी सानुनय इच्छाकार कहना। वह एक भद्र महाशय है। उनका समागम अति उत्तम है। श्री निर्मल बाबूकी माँको मेरी ओरसे यही स्मरण कराना—अरहंत परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा। व्याधिका सम्बन्ध शरीरसे है। जो शरीरको अपना मानते हैं उन्हें व्याधि है, जो भेदज्ञानी है उन्हें यह उपाधि नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका बाह्याभ्यतर स्वास्थ्य अच्छा होगा। श्रीयुत निर्मल बाबूकी माँका भी स्वास्थ्य अच्छा होगा। अनेक यत्न करने पर भी मनकी चंचलताका निग्रह नहीं होता। आभ्यन्तर कषायका जाना कितना विषम है। बाह्य कारणोंके अभाव होने पर भी उसका अभाव होना अति दुष्कर है। कहनेकी चतुरताका कुछ वश नहीं। श्रद्धाके साथ साथ चारित्र गुणकी उद्भूति हो, शान्तिका स्वाद तभी आ सकता है। मन्द कषायके साथ चारित्र का होना कोई नियम नहीं। शेष आपके स्वास्थ्यसे हमें आनन्द है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—९]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार,

इस आत्माके अन्तरंगमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएं उदय

होती है और वे प्रायः बहुभाग तो संसारका कारण ही होती हैं वही कहा है—

> संकल्पकल्पतरुसंश्रयणात्त्वदीयं,
> चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन् ।
> तत्रार्थस्तव चकास्ति न किञ्चिनापि,
> पक्षेपरं भवसि कल्मपसंश्रयस्य ॥

यह ठीक है, परन्तु जो संसारके स्वरूपको अवगत कर आंशिक मोक्षमार्गमे प्रवेश कर चुके हैं उनके इन अनुचित भावोका उदय नहीं होना ही आंशिक मोक्षमार्गका अनुमापक है। अव्रतीकी अपेक्षा व्रतीके परिणामोमे निर्मलता होना स्वाभाविक है। आपकी प्रवृत्ति देखकर हम तो प्रायः शान्तिका ही अनुभव करते हैं। साधु समागम भी तो बाह्य निमित्त मोक्षमार्गमे है। मै तो साधु आत्मा उसीको मानता हूँ जिसके अभिप्रायमे शुभाशुभ प्रवृत्तिमे श्रद्धासे समता आगई है। प्रवृत्तिमे सम्यग्ज्ञानीके शुभकी ओर ही अधिक चेष्टा रहती है, परन्तु लक्ष्यमे शुद्धोपयोग है। चि० निर्मलबाबूकी माँको अब एकत्व भावनाकी ओर ही दृष्टि रखनी श्रेयस्करी है। वह अन्तरंगसे विवेकशीला है। कदापि स्वरूपानुभूतिसे रिक्त न होती होंगी ? सम्यग्ज्ञानीकी दृष्टि बाह्य पदार्थमे जाती है परन्तु रत नही होती। औदयिक भावोका होना दुर्निवार है परन्तु जबतक उनके होते अन्तरङ्गकी स्निग्धताकी सहायता न मिले तबतक यह निर्विष सर्पके समान स्वकार्यमे क्षम नहीं हो सकते। धन्य है उन जीवोंको जिन्हे अपनी आत्म शक्ति पर विश्वास हो गया है। यह विश्वास ही तो मोक्ष महलकी नींव है, इसीके आधार पर यह महल बनता है। इन्हीं पवित्र आत्माओंके औदयिक भाव अकिञ्चित्कर हो जाते हैं। तब जिनके देशव्रत हो गया उनके भित्ति बनना कार्य आरम्भ हो गया।

इसके पास इतनी सामग्री नहीं जो महल बना सके। इससे निरंतर इसी भावनामें रत रहता है—"कब अवसर सर्व त्यागका आवे जो निज शक्तिका पूर्ण विकाश कर महलकी पूर्ति करूँ ?"

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[१-१०]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आजकल यहांपर सरदी बहुत पड़ती है। शारीरिक शक्ति अब इतनी दुर्बल हो गई है जो प्राय: अल्प बाधाओंको सहनेमें असमर्थ है। इसका मूल कारण अन्तरङ्ग बलकी निर्बलता है। अन्तरङ्गकी बलवत्ताके समक्ष यह बाह्य विरुद्ध कारण आत्माके अहितमें अकिञ्चित्कर हैं, परन्तु हम ऐसे मोही हो गये हैं जो उस ओर दृष्टिपात नहीं करते। शीत निवारणके अर्थ उष्ण पदार्थका सेवन करते हैं परन्तु जिस शरीरके साथ शीत और उष्ण पदार्थका सम्पर्क होता है उसे यदि पर समझ उससे ममत्व हटा लें तब मेरी बुद्धिमें यह आता है वह जीव बर्फके समुद्रमें भी अवगाहन करके शीत स्पर्शजन्य वेदनाका अनुभव नहीं कर सकता। यह असङ्गत नहीं। घोर उपसर्गमें आत्मलाभ प्राप्तिवाले सहस्रश: महापुरुषोंके आख्यान हैं। श्री निर्मलबाबूकी माँजीका स्वास्थ्य अच्छा होगा, क्योंकि बाह्य निमित्त अच्छे हैं। यह अन्तरङ्ग सामग्रीके अनुमापक हैं। यद्यपि ज्ञानी जीव इनमें कुछ भी उत्कर्ष नहीं मानता, क्योंकि उसकी दृष्टि निरन्तर केवल पदार्थ पर ही जाती है। केवल पदार्थके साथ जहां परकी संमिश्रणताकी प्रबलता है वहीं तो नाना यातनाएँ हैं अतः आप निरन्तर उन्हें

केवल आत्माकी ओर ही ले जानेका प्रयास करें। जिस जीवने यह किया वही तो समाधिका पात्र है। पात्र क्या तन्मय है। समाधिमें और होता ही क्या है। शरीरसे आत्माको भिन्न भावनेकी ही एक अन्तिम क्रिया है। जिन्होंने शरीर सम्बन्ध कालमें वियोग होनेके पहले ही इस भावनाको दृढ़तम बना लिया है उनको तो अहर्निश समाधि है। अन्तरङ्ग मोहकी वासना यदि पृथक् हो गई तब बाह्यसे यदि क्रियामें असातोदय निमित्तजन्य विकृति हो जावे तब फलमें बाधा नहीं और सातोदयमें अनुकूल भी क्रिया हो जावे और मोह वासना न गई हो तब फलमें बाधा ही है। अबके वर्षा बाद मेरा स्वास्थ्य भी कुछ विशेष सुविधाजनक नहीं फिर भी अच्छा ही है, इससे सन्तोष है। सन्तोष करना ही चरम उपाय है। वह पहिले नहीं होता। किसीके हाथसे उत्तम पुष्प ऐसे खड्डेमें गिरा जो मिलना कठिन हो गया। तब क्या कहता है 'कृष्ण हेतु' किन्तु यही बात पहिले हो तब क्या कहना है। अस्तु—

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—११]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

संसारकी दशा अति भयङ्कर है, यह यूरोपीय युद्धसे प्रत्यक्ष होगा। फिर भी स्नेहकी बलवत्ता है जो प्राणी आत्महितमें नहीं लगता। वही जीव सुखी है जो संसारसे उदासीन है, क्योंकि इसमें सिवाय विपत्तिके कोई सार नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१२]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। श्री अनूपमाला देवीको इस समय आपसे भद्र जीव ही शान्ति कर सकते हैं। इस वर्ष यहां अत्यन्त गर्मी पड़ रही है। मैं पैदलके कारण नहीं जा सका। मेरी समझमें तो विकल्पोंका कोई प्रायश्चित नहीं, असंख्यात लोक प्रमाण कषाय है, अतः जहांतक बने अभिप्रायसे उनका पश्चात्ताप करना ही प्रायश्चित है। रस छोड़ना, अन्न छोड़ना तो दुर्वलावस्था मे स्वास्थ्यका बाधक होनेसे प्रत्युत विकल्पोंकी वृद्धि ही का साधक होगा। विकल्पोंका अभाव तो कषायोंके अभावमें होता है। कषायों के अभावके प्रति तत्त्वज्ञान कारण है, तत्त्वज्ञानका साधक शास्त्र व साधु समागम है। वस्तुतः आप ही आप सर्व कुछ समर्थ है, किंतु हमारी ही शक्तिको हमारी ही आभ्यतर दुर्वलताने अकर्मण्य बना रक्खा है। मनकी दुर्वलता ज्ञानकी उत्पत्तिमे बाधक है किन्तु कषाय व विकल्पोंका साधक नहीं। अतः मनकी कमजोरीसे आत्माका घात नहीं। अत उन्हें कहिये इस श्रद्धानको छोड़ो जो हमारा दिल कमजोर है। इससे विकल्प होते हैं। अन्तरङ्गसे यही भावना भावो जो हम अचिन्त्य वैभवके पुञ्ज हैं। सोद्यम इन शत्रुओंका निपात करेंगे। कायरतासे शत्रुका बल वृद्धिगत होता है और अपनी शक्तिका ह्रास होता है। अतः जहाँ तक बने कायरता छोड़ो और अपने स्वरूपका ज्ञाता द्रष्टा ही अनुभव करो। वही बलवान और निर्बल सर्वको शरण है। समवसरणकी विभूतिवाले ही परम धाम जाते हैं और व्याघ्री द्वारा विदीर्ण हुए भी परमधामके पात्र होते हैं। सिंहसे भी बलवान सुधरते हैं और नकुल बन्दर भी उसीके पात्र होते हैं। सातामें भी कल्याण होता

है और असातामें भी कल्याण होता है। देवोके भी सम्यग्दर्शन होता है और नारकियोंके भी सम्यग्दर्शन होता है. अतः दुर्वलता सवलताके विकल्पको त्यागकर केवल स्वरूपकी ओर दृष्टि देनेका कार्य ही अपना ध्येय होना चाहिए। वन्धका कारण कषायवासना है, विकल्प नहीं।

यहाँ अभी आनेका समय नहीं, वाह्य साधनोंकी त्रुटि है। हम पोतके पक्षीकी तरह अनन्यशरण हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—१३]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दावाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वा[illegible] अच्छा होगा। यद्यपि आभ्यन्तर स्वास्थ्य अच्छा है, तव यह भी अच्छा ही है परन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्वन्धसे यह स्वास्थ्य भी कथञ्चित् उसमें उपयोगी है। आपके धर्मसाधनमें जो उपयोगी ज्ञान है वही मुख्य है। विशेष चि० निर्मलवावूकी माँसे इच्छाकार कहना और कहना कि पर्यायकी सफलता इसीमें है जो अव भविष्यमें इस पर्यायका वन्ध न हो और वह अपने हाथकी वात है। पुरुषार्थसे मुक्तिलाभ होता है। यह तो कोई दुष्कर कार्य नही। मुझे ५ दिनसे ज्वर हो जाता है। अव कुछ अच्छा है। असाताके उदयमें यही होता है, परन्तु जिन चरणाम्बुजकी श्रद्धासे कुछ दुःख नही।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द वहाँपर होंगी। आपके निमित्तसे यहाँ पर शान्ति का वैभव उचित रूपसे था। आप जहाँ तक स्वास्थ्य लाभ न हो शारीरिक परिश्रम न करें। मानसिक व्यापारकी प्रगतिका रोकना तो प्रायः कठिन है फिर भी उसके सदुपयोग करनेका प्रयास करना महान् आत्माओंका कार्य्य है। मनकी चंचलतामें मुख्य कारण कषायोंकी तीव्रता और स्थिरतामें कारण कषायोंकी कृशता है। कषायोंके कृश करनेका निमित्त चरणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट यथार्थ आचरणका पालन करना है। चरणानुयोग ही आत्माकी अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे रक्षा करनेमें रामबाणका कार्य करता है। द्रव्यानुयोग द्वारा की गई निर्मलताकी स्थिरता भी इस अनुयोगके बिना होना असम्भव है। तथा यही अनुयोग करणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट कारणोंका भी परम्परा क्य[illegible] जनक है? अतः जिनकी चरणानुयोग द्वारा निर्मल प्रवृत्ति है, वही आत्माएँ स्व पर कल्याण कर सकती हैं। चि० निर्मल बाबूकी जननी भी सानन्द होंगी। उनसे मेरी इच्छाकार कहना। तथा बुआजी व उनकी सुपुत्री द्रोपदीजीसे भी यथायोग्य कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१५]

श्री प्रशममूर्त्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। श्रीयुत चि० निर्मलकुमार बाबूजीकी माँका स्वास्थ्य अब अच्छा होगा। असातोदयमें

प्राणियोंका नाना प्रकारके अनिष्ट सम्बन्ध होते हैं और मोहोदय की बलवत्तासे वे भोगने पड़ते हैं, किन्तु जो ज्ञानी जीव हैं वे मोहके क्षयोपशमसे उन्हें जानते हैं, भोगते नहीं। अतएव वही बाह्य सामग्री उन्हें कर्मबन्धमें निमित्त नहीं पड़ती, प्रत्युत मूर्छाके अभावसे निर्जरा होती है। यह ज्ञान वैराग्यकी प्रभुता है। जैसे श्री रामचन्द्रजी महाराजके जब मोहकी मन्दता न थी तब एक सीताके कारण रावणके वंशके विध्वंशमें कारण हुए और मोहकी कृशतामें सीतेन्द्र द्वारा अभूतपूर्व उपसर्गको सहन कर केवलज्ञान के पात्र हुए। अतः चि० निर्मल बाबूजीकी माँके मोहकी मन्दता होनेसे यह व्याधि रूप उपाधि प्रायः शान्तिका ही निमित्त होगी। मेरी तो उनके प्रति ऐसी धारणा है। अतः मेरी ओरसे उन्हें यह कह देना—यह यावत् पर्याय सम्बन्धी चेतन अचेतन आपके परिकर हैं उसे कर्मकृत उपाधि जान स्वात्मरत रहना। यही अनंत सुखका कारण होगा। क्योंकि वस्तुतः कौन किसका है और हम किसके हैं यह सर्व स्वात्मिक ठाठ है, केवल कल्पना ही का नाम संसार है. क्योंकि इस कल्पनाका इतना विशाल क्षेत्र है जो अद्वैतवादकी तरह संसारको ब्रह्म मान रक्खा है और इसी प्रभावसे नैयायिकोंकी तरह स्वात्मामें तादात्म्यसे सम्बन्धित जो ज्ञान उसको भी भिन्न समझ रक्खे हैं। इन नाना प्रकारके कल्पना जालसे कभी तो हम पर पदार्थके सम्बन्धसे सुखी और कभी दुखी होते हैं और इसीके कारण किसी पदार्थका संग्रह और किसीका वियोग करते २ आयुकी पूर्णता कर देते हैं। स्वात्म-कल्याणका अवसर ही नहीं आता। जब कुछ मोह मंद होता है तब अपनेको परसे भिन्न जाननेकी चेष्टा करते हैं और उन महात्माओंके स्मरणमें स्वसमयको निरन्तर लगानेका प्रयत्न करते हैं और ऐसा करते २ एक दिन हम लोग भी वे ही महात्मा हो

जाते हैं। क्योंकि लोकमें देखा, दीपकसे दीपक जोया जाता है। वड़े महर्षियोंकी उक्ति है पहले तो यह जीव मोहके मंद उदयमें 'दासोऽहम्' रूपसे उपासना करता है। पश्चात् जब कुछ अभ्यासकी प्रबलतासे मोह कृश हो जाता है, तब 'सोऽहं सोऽहं' रूपसे उपासना करने लग जाता है। अन्तमें जब उपासना करते हुए शुद्ध ध्यानकी ओर लक्ष्य देता है तब यह सब उपद्रवोंसे पार हो स्वयं परमात्मा हो जाता है, अतः जिन्हें आत्मकल्याण करनेकी अभिलाषा होवे वे पहले शुद्धात्माकी उपासना कर अपनेको पात्र बनावें। पात्रताके लाभमें मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभ नहीं। श्रेणी चढ़ने के पहले इतनी निर्मलता नहीं जो शुभोपयोगकी गौणता हो जावे। जो मनुष्य नीचली अवस्थामें शुभोपयोगको गौण कर देते हैं वे शुद्धोपयोगके पात्र नहीं। शुभोपयोगके त्यागसे शुद्धोपयोग नहीं होता। वह तो अप्रमत्तादि गुणस्थानोंमें परिणामोंकी निर्मलतासे स्वयमेव हो जाता है। प्रयास तो कथनमात्र है।

सम्यग्ज्ञानी जीव शुभोपयोग होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासनासे अहर्निश पूरितान्तःकरण रहता है। शुभोपयोगकी कथा छोड़ो उसको अशुभोपयोगके निमित्तोंके होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासना है, क्योंकि शुभाशुभ कार्य करनेका भाव न होने पर भी चरित्रमोहके उदयमें उनका होना दुर्निवार है, अतः उसकी निरन्तर उन दोनों भावोंके त्यागमें ही चेष्टा रहती है, किन्तु शुद्धोपयोगका उदय न होनेसे उसके शुभोपयोग होता है, करता नहीं। हाँ अशुभोपयोगकी अपेक्षा उसको प्रायः शुभोपयोगमें अधिकांश प्रवृत्ति रहती है। इसमें भी कुछ तत्त्व है। अशुभोपयोगमें कषायोंकी तीव्रता है और शुभोपयोगमें मन्दता है, अतः शुभोपयोगमें अशुभोपयोगसे आकुलता मन्द है और आकुलताकी कृशता ही तो सुखके भोगनेमें आंशिक सहायक है।

आगममें शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगकी समानाधिकारता श्री १०८ कुन्दकुन्द स्वामीने दिखाई है, अतः सम्यग्दृष्टिके इसीसे सिद्ध होता है जो अशुभोपयोगकी प्रचुरता नहीं। वाह्य क्रियासे अन्तरङ्गकी अनुमिति प्रायः सर्वत्र नहीं मिलती, अतः सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्रियाकी समानता देख अन्तरङ्ग परिणामोंकी तुल्यता समान नहीं। श्रीयुत महाशय भगतजीसे हमारा इच्छाकार कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१६]

श्रीयुत प्रशमूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जैन बालाश्रम खुल गया यह सुखद समाचार जानकर परम हर्ष हुआ। श्री अनूपादेवीको मेरी समझमें मूर्च्छाका कारण शारीरिक कृशता है, मानसिक कृशता नहीं। जो आत्मा मानसिक निर्मलताकी सावधानी रखनेमें प्रयत्नशील रहेगा वही इस अनादि संसारके अन्तको जावेगा। उस मानसिक बलमें इतनी शक्ति है जो अनन्त जन्मार्जित कलंकोंकी कालिमाको पृथक् कर देता है। इस ससारमें मानव-जन्मकी महर्षियोंने बहुत ही महिमा गायी है परन्तु उस महिमाका धनी वही है जो अपनी परिणतिसे कलुषताको पृथक् कर दे। वह कलुषता ही आत्माको अज्ञान चेतनाका पात्र बनाती है। कलुषता का मूल कारण यह जीव स्वयं बनता है। हम अज्ञानसे परको मान उसके दूर करनेका प्रयास करते हैं और ऐसा करनेसे कभी भी

उसके जालसे मुक्त होनेका अवसर नही आता। वही श्री अमृतचन्द्र सूरिने लिखा है –

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते,
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरांधबुद्धयः।

यद्यपि अध्यवसान भावोंकी उत्पत्तिमे पर वस्तु भी निमित्त है, पर वस्तु ही निमित्त है इसका निरास स्वामीने किया है, फिर भी बन्धका कारण अध्यवसान भाव ही है और वह जीवका उस अवस्थामें अनन्य परिणाम है।

रागो दोसो मोहो जीवस्सेव अणण्णपरिणामा।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी।

अतः बन्धका मूल कारण आप ही है। जब ऐसी वस्तु गति है तब इन निमित्तोंमें हर्ष विषाद करना ज्ञानी जीवोंके सर्वथा नहीं। सर्वथा नहीं इसका यह भाव है जो श्रद्धा तो ऐसी ही है परन्तु चारित्रमोहसे जो रागादिक होते हैं उनका स्वामित्व नहीं, अतः उसकी कला वही जाने। स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु जिसको स्वास्थ्य कहते हैं उसका अभी श्रीगणेश भी नहीं।

श्री अनूरादेवीसे कहना पर्यायकी कलासे घबराना नहीं—

मानुष विचारे की कहा बात।
दिनकरकी तीन दशा होत एक दिनमें॥

पर्यायकी तो यही गति है, अतः अपनी परिणति पर ही परामर्श कर अजरामर पदकी अभिलाषा ही इस समय लाभप्रदा है। कुटुम्बादि सर्व पर है इनसे न राग और न द्वेष यही भावना श्रेयोमार्गकी गली है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–१७]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

यहाँ पर इस वर्ष कुछ गर्मीका प्रकोप है। मेरा विचार हजारीबाग जानेका है। श्रीयुत चिरजीवी निर्म्मलबाबूकी माँजी का स्वास्थ्य अच्छा होगा। इस समय उनके परिणामोंकी स्थिरताका मूल कारण आप है, क्योंकि आपके उपदेशका उनकी आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। ससारमें वे ही मनुष्य जन्मको सफल बनानेकी योग्यताके पात्र हैं जो इसकी असारतामें सार वस्तुको पृथक् करनेमें प्रयत्नशील रहते हैं। श्री नेमिचन्द्र स्वामीका कहना है—

> मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअत्थेसु ।
> थिरमिच्छह जइ चित्त विचित्तझाणप्पसिद्धीए ।
> मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं पि जेण होइ थिरो ।
> अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥

इन दो गाथाओंमें सम्पूर्ण कल्याणका बीज है। जो आत्मा इनके अर्थपर दृष्टि देकर चर्य्यामें लावेगा वह नियमसे ससार समुद्रसे पार होगा, क्योंकि ससारका कारण मूल राग द्वेष ही तो है। इस पर जिसने विजय प्राप्त कर ली उसके लिये शेष क्या रह गया। अतः श्री माँजी से कहना निरन्तर इसीपर दृष्टि दो और यही चिन्तवन करो। यही श्री १००८ भगवान् वीर प्रभु का अन्तिम उपदेश है। समाधिके अर्थ इसके अतिरिक्त सामग्री नहीं। काय कषाय कृश भी इसी परम मंत्रसे अनायास हो जाते हैं। इस समय इन आत्मभिन्न पर पदार्थोंमें न तो रागकी आवश्यकता है और न द्वेषकी, मध्यस्थ भावना ही की चेष्टा

उपयोगिनी है। जो भी कुटुम्बवर्ग है उसकी तत्त्वज्ञानामृत द्वारा संसारातापसे रक्षा करना आपके सौम्य परिणामका फल होना चाहिए। धन्य हैं उन ज्ञानियोंको जिनके द्वारा स्वपर हित होता है। जिसने यह अपूर्व मानुष कल्पवृक्ष द्वारा स्वपर शान्तिका लाभ न लिया उसका जन्म अर्कतूलके सदृश किस कामका।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके विचार प्रायः बहुत ही उत्तम हैं। बालाश्रमके विषयमें अभी थोड़े दिन और ठहर जाईये और यदि अशान्तिकी विशेष सम्भावना हो तब श्रावण तक छुट्टी कर दीजिये। श्री पार्श्वप्रभुके प्रसादसे प्रायः आप लोग इन सर्व आपत्तियोंसे मुक्त रहेंगे यह मेरी दृढ़ श्रद्धा है। यद्यपि परिग्रह दुःखकर है परन्तु गृहस्थावस्था में उसके बिना निर्वाह भी तो नहीं। श्री निर्मलबाबूजीकी मां का स्वास्थ्य मेरी समझमें शारीरिक बलकी त्रुटिसे यथार्थ मनके कार्योंमें साधक नहीं होता। आप तो विशेष अनुभवशीला हैं, वर्त्तमानमें बहुतसे जीव ऊपरी व्रतोंपर मुख्यता देते हैं और उनके हेतु आभ्यन्तर शुद्धिका ध्यान नहीं रखते। फल यह होता है जो परिणामोंमें सहनशक्ति नहीं रहती। अतः जहाँ तक बने उनको कुछ ऐसे पदार्थोंका सेवन कराया जावे जो मनोबलके साधक हों। आभ्यन्तर तो अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्माका उपचार किया जावे और बाह्यमें जो अनुकूल और इन्हें रुचिकर हों।

संसारमे शान्तिका एक रूपसे अभाव ही ऐसा नही, संसारमे ही शान्ति है किन्तु उसके बाधक कारणोंको हेय समझकर उन्हे त्यागना चाहिए। केवल कथासे कुछ नहीं।

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्मि चिरकालपडिवद्धो।
जइ ण वि कुणइ च्छेदं ण सो णरो पावइ विमोक्खं॥

बन्धनकी कथासे बन्धका ज्ञान होगा, बन्धनमुक्ति सर्वथा असम्भव है। भोजनकी कथासे क्या क्षुधा निवृत्ति हो सकती है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्नकी उपयोगिता इन रागादिक शत्रुओंके साथ जो अनादिका सम्बन्ध है उनके छोड़नेमे ही सफल है। इस जीवके अनादिकालसे शरीरका सम्बन्ध है और अतीन्द्रिय ज्ञानके अभावमें ज्ञानका साधक यह शरीर ही बन रहा है। अतः हम निरन्तर उसीकी शुश्रूषामे अपना सर्वस्व लगा देते हैं और अन्तमे वही शरीर हमारे अकल्याणका कारण बन जाता है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है जो शरीर और मनोबल कम होने पर भी यदि वासनाका बल विकृत नहीं हुआ है तब कुछ भी आत्माकी हानि नहीं है। देखिये विग्रहगतिमे मनोबलका अभाव रहने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ४१ पाप प्रकृतियोका बन्ध नही होता, अतः हमारी मुख्यता अन्तरङ्ग वासनाकी तरफ ही विशेष रूपसे सतर्क रहना अच्छा है। जहॉ तक बने श्री चि० निर्मलबाबूकी मां अधिक न बोलें जौर सरलसे सरल पुराणको स्वाध्यायमे लावे। पार्श्वपुराण और पद्मपुराण तथा जो रत्नकरण्डमे जो दशधा धर्मका स्वरूप है उसे ही मनन करें। मेरी बुद्धिमे उनका अन्तरंग क्षयोपशम तो ठीक है किन्तु द्रव्येन्द्रियकी दुर्बलतासे वह उपयोग रूप नही होता। स्वप्नके भयसे जागना यह विकल्पो का साधक ही है, क्योंकि जागनेसे स्वास्थ्यकी हानि ही होती है और स्वास्थ्यके ठीक न होनेसे अनेक प्रकारकी

नई २ कल्पनाएँ होने लगती है। आप तो स्वयं सर्व विषयक बोधशालिनी हैं. उनको समझा सकती हैं। विशेष क्या लिखूँ ! जागनेसे कषायकी शान्ति नहीं होगी। इस वर्ष यहाँ पर गर्मीका प्रकोप कम है। आप किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता न कीजिये। मुझे विश्वास है जिनके धर्मकी श्रद्धा है उनके सर्व उपद्रव अनायास शान्त हो जावेंगे। प्रथम तो अभी उपद्रवकी सम्भावना नहीं और हो भी तब भी आपके पुण्यसे आपके आश्रमकी रक्षा ही होगी। भावी विघ्न हरणके अर्थ बाहुबलि स्वामीका पूजन नियमसे होना चाहिये। श्रीयुत चिरंजीव निर्मलबाबू व चक्रेश्वर कुमारको श्री शान्तिनाथ स्वामीका पूजन नियमसे करना चाहिये। अनायास सर्व विघ्न शान्त होंगे। श्री अनूपादेवीका भी स्वास्थ्य इसीसे शान्त होगा। वे भी एक पाठ विषापहारका नियमसे किया करें। यदि आश्रमकी छात्रा रही भी आवें तब उनके द्वारा निरन्तर सहस्रनामका पाठ कमसे कम ७ बार तो अवश्य कराइये और प्रतिदिन महामन्त्रकी तीन माला २ बारमें फेरें तथा निरन्तर अरहन्तका ही स्मरण करें, कुछ भी आपत्ति न आवेगी।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—१६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति साहित्यसूरि श्री चन्दाबाई जी,

योग्य इच्छाकार

आपका धर्मध्यान सानन्द होता होगा, क्योंकि आपको इन दिनों एक निर्मल भव्यमूर्ति श्री निर्मल बाबूकी माताकी सुश्रूषा करने

से वैयावृत्तका अनायास निमित्त मिल गया है। धर्मात्मा जीव वही हैं जो कष्ट कालमें धीरतासे विचलित नहीं होते। यों तो 'वस्त्राभावे ब्रह्मचारी' बहुतसे मिलेंगे, परन्तु आपत्ति कालमें शान्तिसे समयका निर्वाह करनेवाले विरले ही होते है। वही जीव जगतकी वायुसे अपनी रक्षा कर सकते हैं जिन्हे सत्य आत्मज्ञान का परिचय है। वास्तव वात तो यही है। अधिक पर पदार्थोंकी संगतिसे किसी ने सुख नहीं पाया। इसको त्यागनेसे ही सुखके पात्र बने। अब उनका शारीरिक रोग शान्त होगा। मेरा तो दृढ़ विश्वास है, पहले भी शान्त था, क्योंकि जिसे अन्तरङ्ग शान्ति है उसे वाह्य वेदना कष्टकरी नहीं होती। मेरा उनसे धर्मस्नेह पूर्वक इच्छाकार कहना और कहना जितनी शान्ति है उसकी रक्षा पूर्वक वृद्धि ही इस वेदनाका मुख्य प्रतीकार है। सर्व त्यागी मण्डल आपकी शान्तिवृद्धिका इच्छुक है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० अनूपमाला देवी

श्रीमती ब्र० अनूपमाला जी देवी आरा निवासी प्रसिद्ध रईस स्व० बाबू देवकुमारजीकी पत्नी हैं। श्रीमान् बाबू निर्मल-कुमार जी और बाबू चक्रेश्वरकुमार जी इनके पुत्ररत्न हैं। इनमेंसे श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजी आज हमारे बीच नहीं हैं। इनकी शिक्षा प्राइवेट रूपसे हिन्दी तक सीमित है फिर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होंने धर्मशास्त्रकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है।

ये प्रारम्भसे ही धर्म कार्योंमें सावधान रहीं हैं और अपने पतिके प्रत्येक धार्मिक कार्यमें योगदान देती रही हैं। बनारसका स्याद्वाद विद्यालय भवन और आराका जैन सिद्धान्त भवन इन्हीं दम्पति युगलकी पुनीत सेवाका फल है। इन्होंने और भी अनेक लोकत्तर कार्य किये हैं।

इन्होंने फाल्गुन सुदि ९ वि० सं० १९९७ को श्री १०५ क्षु० जिनमती अम्माके सानिध्यमें ब्रह्मचर्य प्रतिमाका व्रत स्वीकार किया था और उसका उत्तम रीतिसे पालन करती हुई ये श्री जिन मन्दिर जीमें धर्मध्यानपूर्वक जीवनयापन कर रही हैं। वृद्धावस्था होने पर भी ये आत्मकार्यमें पूर्ण सावधान हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा है। पत्रा-चारके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहां दिये जाते हैं।

[२-१]

श्री शान्तिरसपानकर्त्री अनूपमाला देवी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, वृत्त जाने। स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा है यह भी भीतरकी शुद्धिका ही माहात्म्य है। समाधिमरण तो जब समय आवेगा अनायास हो जावेगा, उसकी चिन्ता न करो। केवल वर्तमान परिणामोकी निर्मलतापर दृष्टि रक्खो, क्योंकि सम्यग्ज्ञानी जीवके जो औदयिक भोग हैं उसमे उसके वियोग बुद्धि है और आगामीकी अभिलाषा नहीं। अतीतका प्रतिक्रमण है। ऐसी जिसके सावधानता है उसे भय किस बातका ! जब आपका परिणाम वर्त्तमानमें उत्तम है तब उत्तरकालमे उसका फल उत्कृष्ट ही होगा। आप यह बात अंतरंगसे अच्छी तरह हृदयमे धारण कर लो कि पञ्चम गुणस्थानवालेके वीतरागी मुनिकी शान्तिका आस्वादी नहीं आ सकता। ध्यान भी वहीं तक होगा जितनी कषायक कृशता है। परिग्रहके सम्बन्धसे पञ्चम गुणस्थानमे रौद्र ध्यान तककी सम्भावना है परन्तु वह अधोगतिका कारण नहीं। सर्वथा मूर्च्छाका त्याग अणुव्रतवालोके नहीं हो सकता। अतः व्यर्थकी चिन्ता न करो और सानन्द सर्व पदार्थोंसे ममत्वको छोड़नेकी चेष्टा करो। अब जहाँ तक बने आत्माका परिग्रह आत्मा ही है, इसका निरन्तर रसास्वाद लो। बुद्धिमान् मनुष्य परको अपना परिग्रह नहीं मानता। तब जो आपके भाव होते हैं वह भी तो औदयिक हैं। उन्हें अनात्मीय जान उनसे अपनेको भिन्न समझो। उनमे जो ज्ञायक भाव है उसे आत्मीय जान, उसीमे रत हो, उसीमे सन्तोष करो, उसीसे तृप्ति होगी। और इस समय सुगम ग्रन्थोका जो सरल रीतिसे समझमे आ जावे श्रवण करो। परमात्मप्रकाश बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। समाधि

शतक पूज्यपाद स्वामीका अद्भुत ग्रंथ है। उसका भी स्वाध्याय श्रवण करो। और कायकी कृशताको गौणकर कषायकी कृशता पर ध्यान देना। बाह्य त्यागकी वहाँ तक मर्यादा है जो आत्म-परिणामोंमें निर्मलताका साधक हो।

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[२—२]

श्री शान्तिमूर्ति अनूपादेवीजी, इच्छाकार

आपने आजन्मसे धर्मध्यानमें अपनी आयुको बिताया। जब विभावोंको अवसर था उस कालमें अपने स्वरूपकी साव-धानतासे रक्षा की। अब तो कोई निमित्त कारण ही उन विभावों-के उत्पन्न होनेमें नहीं रहे. अब तो शान्तिसे ही स्वरूपकी उन्मुखतामें ही अपनी वृत्ति रखना। यही तो अवसर शत्रुके पराजय करनेका है। उसके सहायक मन, वचन और काय तो दुर्बल हो ही गये हैं। अब तो केवल अपने ज्ञाता दृष्टाकी स्मृतिकर उसे ऐसा पछाड़ो कि फिर उठनेका साहस न करे। आपको तो चन्द्रिका की ज्योत्स्ना भाग्यसे मिल गई है जो शत्रुको छिपनेका भी अवसर नहीं मिल सकता। एक बात हमारी मानना, जो गुड़ देनेसे मरे उसे विष न देना। अतः अब कायकी कृशताके लिये उद्यम न करना। स्वयमेव भाग्योदयसे हो रही है अब तो यही भावना भावो—

इतो न किञ्चित् परतो न किञ्चित्
यतो यतो यामि ततो न किञ्चित्।

विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्
स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित् ॥

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो
न गांगमम्भो न च हारयष्टयः ।
यथा मुने तेऽनघवाक्यरश्मयः
शमाम्बुगर्भा शिशिरा विपश्चितां ॥

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२-३]

श्री शान्तिमूर्ति अनूपादेवी, योग्य इच्छाकार
श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जानें। आपके दिल और दिमाग कमजोर हैं सो इससे आपकी जो चरम अभिलाषा है उसमें तो यह योग बाधक नहीं, क्योंकि ज्ञानकी पूर्णताका विकाश तो भाव मनके अभावमें ही होता है और परम यथाख्यात-चारित्रकी प्राप्ति काय योगके ही अभावमें होती है। मन जितना बलिष्ठ होगा उतना ही चञ्चल होगा, तथा इन्द्रियोंमें जितनी प्रबलता होगी उतनी ही विषयोन्मुख होनेमें साधक होगी। अतः इनकी यदि निर्बलता हो गई, हो जाने दो। अब रही बात भावोंकी शुद्धताकी सो भावोंको अशुद्धताका कारण मिथ्यात्व और कषाय है। उस पर विचार करिये। मिथ्यात्व तो आपकी सत्ता मे है ही नहीं। अब केवल कषाय ही बाधक कारण रह गया। अस्तु, कषायके होनेमें बाह्य नोकर्म विषयादिक हैं सो उनके साधक कारण इन्द्रियादिक हैं,

वह आपके पुण्योदयसे कृश ही हो गये हैं। अब तो केवल 'सिद्धेभ्यो नमः' की ही भावना कल्याणकारिणी है। कल्याणके अर्थ ही इन साधनोंकी आवश्यकता है। आत्मा यदि देखा जावे तब स्वभावसे अशान्त नहीं, कर्म कलंकके समागमसे अशान्त सदृश हो रहा है। कर्म कलकके अभावमें स्वयमेव शान्त हो जाता है। जैसे श्री पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री शीतलमूर्ति सीताजीके विरहमें कितने व्याकुल रहे जो वृक्षोंसे पूछते हैं—तुमने सीता देखी है। वही पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री लक्ष्मणके मृत शरीरको ६ मास लेकर सामान्य मनुष्योंकी तरह भ्रमण करते रहे और जब कर्म कलंक उपशम हुआ सब उपद्रवों-से सुरक्षित हो स्वाभाविक आत्मोत्थ अनुपम चिदानन्दमय हो कर मुक्तिरमाके वल्लभ हुए। यही बात ज्ञानसूर्योदय नाटकमें आयी है—

> कलत्रचिन्ताकुलमानसो यो जवान लङ्केशमवाप्तयुद्ध. ।
> स किं पुनः स्वास्थ्यमवाप्य लोके समग्रधीनों विरराम रामः ॥

अतः सम्पूर्ण विकल्पोंको छोड़ निर्बलावस्थामें एक यही विकल्प करना अच्छा है—अरहत परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा। अथवा यह भावना श्रेयस्करी है। आपका मन निर्बल हैं और मन ही आत्माको नाना प्रकारकी चचलतामें कारण है। निर्बल शत्रुका जीतना कोई कठिन नहीं. अतः ज्ञानासिकर ऐसा निपात करिए जो फिर शिर न उठा सके। इसके वश होते ही और शेष शत्रु सहज ही में पलायमान हो जावेंगे।

यही परमात्मप्रकाशमें योगीन्द्रदेवने कहा है—

> "पंचहं णायकु वसि करहु जेण होंति वसि अण्ण।
> मूल विणट्ठइ तरुवरह अवसइं सुक्कहिं पण्ण॥"

आपकी इस समय जो चंचलता है वह इस विषयकी है कि हमारा अन्तिम समय अच्छा रहे सो निष्कारण है, क्योंकि आपने उस मार्गमें प्रयाण कर दिया। अब उतावली करनेसे क्या लाभ ? अतः श्री धनञ्जयके इस श्लोकको विचारिये कैसा गम्भीर भाव है—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः॥

अतः स्वकीय कल्याणका मार्ग अपनेमे जान सानन्द काल यापन करिए और यह पाठ निरन्तर चिन्तना करिये—

सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं निर्विकल्पोऽहं उदासीनोऽहं निजनिरञ्जनशुद्धात्मसम्यग्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसजातवीतरागसहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरिता विज्ञोऽहम्। रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपञ्चेन्द्रियविषयव्यापारमनोवचन—कायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूत—भोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्यात्वनिदानशलत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहितशून्योऽहम् जगत्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयनयेन तथा सर्वेऽपि जीवा इति निरन्तरभावना कर्तव्या।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० माता पतासीबाईजी

श्रीमती ब्र० माता पतासीबाईजीका जन्म भाद्रपद शुक्ला १० वि० सं० १९५१ को मारोठमें हुआ है। पिताका नाम श्री छगनमलजी छावड़ा और माताका नाम श्री माँगीबाईजी तथा जाति खण्डेलवाल है. पिताके घर आपको हिन्दीकी सामान्य शिक्षा मिल सकी थी। उसके बाद व्रती जीवनमें आपने श्री पण्डिता भूरीबाईजी इन्दौरके सहवासमें रहकर धर्मशास्त्रका ज्ञान खूब बढ़ाया है और स्वाध्याय द्वारा वह और भी अधिक मात्र लिया है। वक्तृत्वकलामें आप बड़ी निपुण हैं।

विवाह होनेके बाद १६ वर्षकी उम्र ही इनको वैधव्य जैसे अभिशापका सामना करना पड़ा। किन्तु ये घबड़ाई नहीं और अपने जीवनको धार्मिक क्षेत्रमें मोड़ दिया। इन्होंने वि० सं० १९८६में जैनबिद्रीमें श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके पास द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिए थे। उनका ये बराबर निर्दोष रीति से पालन करती आ रही हैं।

इन्होंने अब तक गया, सीकर आदि स्थानों पर २५ महिला पाठशालाएँ स्थापित कराई हैं और विद्यादानमें लगभग १२०००) खर्च किया है। इनका वर्तमानमें मुख्य निवास गया है। ये स्वभावसे बड़ी भद्र, मितभाषिणी और दानशीला हैं। बिहार प्रान्तमें नारी जागरणका पूरा श्रेय इनको है। ऐसी आदरणीय तपस्विनी महिला-रत्न वर्तमानमें अपने बीच विद्यमान है इसका समाजको गर्व है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा है और इनका अधिकतर समय उनके सानिध्यमें व्यतीत होता है। यहाँ कुछ ऐसे पत्र दिये जाते हैं जो पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी महाराजने इन्हें लिखे हैं।

[३–१]

प्रशममूर्ति श्री पतासीबाई जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप सानन्द स्वाध्याय कीजिये। आने जानेमे स्वाध्याय नियमको विशेष क्षति पहुँचती है। पैदल यात्रा उस समयकी थी जब संघ चलता था। अब एकाकी आदमीकी यात्रा तो केवल कष्टकरी है। निमित्त-कारण उत्तम मिलना चाहिये। आप जानती हैं केवल नन्हेंके साथमे कहां तक परिणामोकी निर्मलता रहती। बाबू-जीके साथ भी जाते तब भी विशेप लाभ न था। हम तो पैदल जाते और वह सवारीमे जाते तब मार्गमे बोलनेको या तो वनके वृक्ष थे या नन्हे और फिर मार्गमें ठीक ठहरने का सुभीता नहीं, रसोई बनानेको सुभीता नहीं, जहां जाओ प्रासुक पानीकी दिक्कत। अतः इन सब बाधक कारणोंका अनुभव कर यहीं रहना ही उचित समझा और यह नियम किया है कि प्रतिदिन इस यात्राकी विघ्नशान्तिके अर्थ पूर्ण समयसार संस्कृत टीका सहित बांचना। यदि किसी दिन आलस आजावे तब एक रस छोड़कर भोजन करना। बीमारीमें नियम नहीं। बाबूजीको आप समझा देना जो मेरा विकल्प न करें। हम तो यहांपर उन्हींके निमित्त आये, अतः उनका उपकार नहीं भूल सकते। यह बात वे जानते हैं। यदि वे न होते तब दो वर्षमें यहां आना मुश्किल था। उन्हींका साहस था जो लाए। अब आप भी शीतकालमें दो मास शान्तिसे गयामे रहिये और वहांके मनुष्य और स्त्री समाजका कल्याण करनेमे निमित्त कारण बनिये। कल्याणका मार्ग सर्वमे है। उद्भूत होनेका निमित्त मिलना चाहिये। देखिये देवोंमे

मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक शक्ति है तथा उस पर्यायमें पीतादि ही लेश्या है, परन्तु फिर भी कर्मभूमि तथा मनुष्य पर्यायके अभावमें मोक्षमार्गकी व्यक्तता नहीं। सम्यक्त्वमात्रकी ही योग्यता है। यहां के निमित्त इतने उत्तम है जो अनायास इस पर्यायसे साक्षात् मोक्षमार्गका लाभ यह जीव ले सकता है। अतः आपका भी वहां कुछ दिन जनताकी ओर दृष्टि देनी चाहिये। हमारी वृत्ति तो पराधीन है। प्रथम तो हम परिणामोसे चपल हैं तथा बातमें पराधीन हैं। आजकल ऐसे जीव नहीं जो किसीकी स्थिरता करें, दोष देखनेवाले ही हैं। यह सब कलिका प्रभाव है। हमारा तो यहा तक विचार आता है कि क्षेत्रन्यास कर लेवें, परन्तु अभी एक बार चरम प्रभुकी भूमि स्पर्श करनेका भाव है और कोई शल्य नहीं। काशीसे बाह्य क्षेत्रकी तो शल्य नहीं, क्यो कि उस व्रतकी योग्यता नहीं। इस प्रान्तमे आनेका कारण श्री कन्हैयालालजी वा श्री लल्लू बाबू थे। परन्तु अब वे तटस्थ हैं और यह तटस्थता यथार्थ अच्छी वस्तु है। मेरी तो यहां तक धारणा है जो स्वात्म-कल्याणमें तटस्थता ही मूल कारण है। परन्तु सर्वत्र तटस्थता यथार्थ होनी चाहिये। त्यागका अर्थ ही तटस्थ है। जहां त्यागमे कषाय है वह तो अशान्तिका मार्ग है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—२]

श्रीयु पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

वही जीव संसारमें सुखी हो सकता है जिसके पवित्र हृदयमें कषायकी वासना न रहे। जिसका व्यवहार आभ्यन्तरकी

निर्मलताके अर्थ होता है। जहां पर बाह्य व्यवहार और उनके कार ोपर ही लक्ष्य है उनसे क्लेशके सिवाय कुछ आत्मलाभ नही। अन्तःसार बिना जो भाव होगा वह थोथा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३--२]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शान्तिका लाभ उसी आत्माको होगा जो अपने उत्कर्ष गुण को व्यर्थके अभिमानमे न आकर रक्षा करेगा। आजकल लोक (अज्ञानी) प्रशसामे फूले नहीं समाते। यह धर्मका बाह्य स्वरूप इसी अर्थ पालते हैं। आभ्यन्तर कलुषताके अभावमे बाह्य सदा-चारताका कोई मूल्य नहीं। ऐसे मनुष्योंको उसकी गन्ध नहीं। गृहस्थके उपासक त्यागी धर्मके मर्मको नहीं पा सकते, क्योंकि गृहस्थ तो आतुर है। जहां उन्हें कुछ उनके अनुकूल वचन मिले उसी के अनुयायी हो जाते हैं और उसकी ऊपरी वैयावृत्त कर अपना भला समझते हैं। अथवा यों कहिए इन लोगोंको अपने पक्षमें कर अपनी मानादि प्रवृत्तियोंकी रक्षा करते हैं। सत्य-स्वरूपमे उनके स्वेच्छाचारिताका घात है। हम तो एक कोणमें हैं, अतः पार्श्वप्रभुकी चरणसेवा ही इससे इष्ट की है। यहां पर उन प्रलोभनोंकी त्रुटि नहीं। यही कारण है जो आज तक शान्तिकी गध नहीं आई और ऐसे आडम्बरोंमें शान्ति काहे की? घर छोड़ा, दुनियाको घर बना लिया, धिक् इस परिणतिको। इसका अर्थ लल्लूसे पूछना वह चिट्ठीका अर्थ ठीक कहेगा। उनसे भी

दर्शनविशुद्धि: । वह अब हमसे दूर है । श्री सूरजमलजीका हम बहुत उपकार मानते हैं जिन्होंने यह धर्मायतन बना दिया । श्री विलासरायजीसे कहना संसारकी दशा देखकर भी आप अपने समयका सदुपयोग नहीं करते ।

श्री पतासीबाई, यदि आत्मशान्तिकी इच्छा है । तब यथार्थ रूपसे स्वात्मभावनाको करना और कायरताको आश्रय न देना । केवल बाह्य त्यागमे अपनी स्वात्मपरिणतिको लगा न देना ।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । पत्रोंसे न शान्ति मिलती है, न अशान्ति मिलती है और न स्थानोंमे शान्ति है और न अशान्ति है । यह हमारी मोहकी बलवती कल्पना है जो अपनेमें हुई चीजको परमे आरोप करते हैं ।

मेरी तो यहाँ तक धारणा है जो परके सम्बन्धसे जो भी कार्य होगा वह शुद्ध नहीं हो सकता । शुद्धपरणति केवल आत्मामें होती है । शुद्धता पर्याय हीके निमित्तसे नहीं होती, अत. वह केवल एक ही द्रव्यकी पर्याय है । मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योगसे चेतन भी है और अचेतन भी है । परन्तु जो पर्याय कर्मके अभावसे उत्पन्न होती है वह आत्मस्वरूप ही है और उसीका नाम शान्ति है । संसारके अन्दर यदि बिना मूल्यके पदार्थ मिलता है तो उसका नाम शान्ति है । जिसे हम कष्टसाध्य समझते हैं वह इतनी सुगम वस्तु है जो वहाँ कष्टका काम

ही नहीं। अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयत्न ही उसकी प्रथम सोपान है। अभिप्राय निर्मल बनानेके लिए कष्टादिककी आवश्यकता नहीं है। प्रत्युत कष्टोंके कारणोंके अभावमे ही उस महत्तत्त्वकी जड़ है, अतः यह स्वपरके उपकारोके विकल्पको छोड़ो और सहज रीतिसे जीवन व्यतीत करो। अपने आप उपद्रवोको बनाना और फिर उनको दूर करनेके लिये आकुलता ज्ञानी जीव नहीं करता। शान्तिका मूल कारण कही नहीं और सर्वत्र है। सावधान जीवको सर्वत्र सुलभ है। जहाँ-जहाँ वीतराग जाते हैं वही भूमि तीर्थ हो जाती है। भूमिसे धर्म नहीं, धर्मात्मा पुरुषोके हृदयमे धर्म है। अतः सुखके कारण धर्मको, जिस समय रागादिक अनात्मधर्मोंकी उपेक्षा होगी, आप ही मे देखोगे। ·· ·· ··· ······ जहाँ तक बने स्वाध्यायका तत्त्व शान्ति ही मे देखना। हमने वैशाख सुदि १ से १५ दिन तक मौन लिया है।

ईसरी, (हजारीबाग) आ० शु० चि०
वैसाख वदि १४. स० १९९७ गणेशप्रसाद वर्णी

[३—५]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

संसारमे वही जीव शान्तिलाभका पात्र हो सकता है जिसकी मूर्च्छा परपदार्थोंसे हट गयी है। हमारा जीवन इसलिये है कि उसे सफल बनावे। केवल परपदार्थोंकी प्रशंसासे प्रसन्न रहकर कालक्षेपण करना जीवनका दुरुपयोग है। प्राय मोही जीव जहाँ अन्य आदमियोंने प्रशंसा की फूल जाता है। यही संसारका कारण जघन्य भाव है। जिसको प्रशंसामें आनन्द

है उसे निन्दामें विषाद है। जिसे हर्ष-विषाद दोनों है वह पामर है, संसारी जीव है। जिसकी प्रकृति इससे परे है वही मुक्तिका पात्र है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—६]

इच्छाकार

आपका पत्र आया, शरीरकी निरोगताके अर्थ जो उपाय बताये, समादरणीय हैं। प्रायः जितने मनुष्योंसे समागम हुआ सभीने शरीरकी दुर्बलता पर पश्चाताप प्रकट किया, उचित ही है। किन्तु जिस रोगसे मेरी आत्मा अत्यन्त दुर्बल आकुलित रहती है, एक समय भी स्वस्वभावमें स्थिरताको नहीं पाती तथा यदि ऐसी पद्धतिका अनुसरण करती रही तब आगामी भी इसी दुर्दशाका पात्र रहेगी। इसके अर्थ किसीने भी मेरेको कुछ न कहा और न इस दुर्दशासे मुक्त होनेका उपाय बताया, अतः इसका यही अर्थ है कि न मैंने इस विषयमें उनको दिग्दर्शन कराया, न उन्होंने मेरेको इसके बदलेमें इसका कुछ उपाय बतलाया। यह तो परस्परका व्यवहार है। शरीरकी निरोगता थोड़ी देरको कल्पना करो हो ही गई तब क्या आनन्द आया, प्रत्युत परद्रव्यमें रत होनेका अवसर आया। अभी रोगावस्थामें आत्मद्रव्यकी अनुचित प्रवृत्ति पर पश्चाताप तो होता है, अतः नीरोगापेक्षया मैं अपनी रोगावस्थाको अच्छा समझता हूँ। यद्यपि एकान्त ऐसा नियम नहीं परन्तु पहले वीतराग होनेमें जितना सहकारी बाह्य-वस्तुका

वियोग हुआ उतना संयोग नहीं हुआ। प्रथमानुयोगमे प्रायः ऐसा ही देखनेमें आता है, अतः हमने तो निश्चय कर लिया शरीर की स्वास्थ्यता हमारे अधीन कार्य नहीं। क्यों इतना प्रयास किया जावे जो यद्वा-तद्वा प्रयोगोकी चेष्टा करनी पड़े। उचित उपाय अपनी आसक्तिके अनुकूल करनेमे कौन चूकता है। यदि उपाय करनेमे भी विफलता हो तब संतोष ही करना चाहिये। न करो तो कर ही क्या सकते हैं? अनादि कालसे हम आहारादि संज्ञाओसे पीड़ित हैं और इस पीड़ाका जो प्रतिकार करते हैं वह आबाल गोपाल विदित है। यद्यपि वह प्रतिकार मृगतृष्णाके तुल्य है परन्तु क्या करें। जो उपाय उस दुःखसे निवृत्तिका है वह तो अनुभवगम्य नहीं, क्योंकि अज्ञानी हैं। जो इस उपाय के जाननेवाले है उनकी उपासनासे दूर भागते हैं, अतः निरन्तर दुःखसे सतप्त रहते हैं। अतः जो उपाय अनादि कालसे अपनी सत्ताका एकाधिपत्य जमाये हुए आत्मामें रम रहा है उसीका आश्रय करते हैं। मेरी सम्मति तो यह है कि इस कथामे अब समयका दुरुपयोग न कर आत्माकी शक्तिको उपयोगमें लाकर अग्निसदृश कर्मेन्धनको दग्ध कर स्वात्मदिव्यज्ञान द्वारा स्वपदका लाभ लेना चाहिए। अब इस अनादि काल निहित मोहको निधन करना ही अपना कर्त्तव्य है। सत्य पुरुषार्थ तो वह है जो फिर इन देहस्थ रोगाकी यातना न हो। कर्तव्य पथमे आना ही मनुष्य पर्यायकी प्राप्तिका फल है। स्वाध्याय करके ज्ञानका लाभ तो बहुत मनुष्योके हो जाता है किन्तु ज्ञानपथ पर यथाशक्ति प्रवृत्ति करना किसी ही भाग्यशाली आत्माके होता है। आत्महित त्रियोग और कषायोकी प्रवृत्तिसे परे है। योग आत्माका घातक नहीं, घातक तो कषाय है। लोकमें चञ्चल बालककी निन्दा नहीं होती, किन्तु जो प्रमादी और क्रूर होता

है वह निन्दनीय है। एवं मोक्षमार्गमें योगों द्वारा जो आत्म-प्रदेश प्रकम्पन है वह बाधक नहीं, कषायका फल भी चारित्रका बाधक है। अतः इसी कषायको जितना भी पुरुषार्थसे निवारण कर सको करो। व्यर्थ प्रमादमें आयुको न जाने दो; क्योंकि इस समय जो सामग्री उपलब्ध है उसका मिलना सामान्य पुण्यका फल नहीं। प्राप्त ज्ञानका उपयोग न कर विशिष्टकी आकांक्षा करना यानी पानीमें रोटीका प्रतिबिम्ब देख जैसे कूकर उसके लिए मुखकी रोटी त्यागकर प्रतिबिम्बकी रोटीकी चेष्टा कर पश्चाताप करता है तत्तुल्य है। विशेष फिर।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

अ० सु० १० स० १९९८ }

[३—७]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

इस कालमें स्वाध्यायसे कल्याणमार्गकी प्राप्ति सुलभ है। दूसरे तपके लिये शारीरिक स्थिरताकी महती आवश्यकता है। अनशनादि तप जैसे सुखद होना चाहिये उस रूपसे प्रायः उनका होना कुछ शरीरकी हीनतासे कुछ मनोदुर्बलतासे प्रायः असुलभ है। अन्तरङ्ग तपमें सर्व प्रथम मनोबलकी बड़ी आवश्यकता है। मनोबल उसीका प्रशंसनीय है जो प्रपञ्च और बाह्य पदार्थोंके संसर्गसे अपनी आत्माको रक्षित रख सकेगा। आज कलके लोगोंकी यह स्वाभाविक परणति हो गयी है कि स्वप्रशंसाके भिक्षुक और परनिन्दाके वक्ता बन गये हैं। कल्याण-मार्गमें विभावभावोंका आदर नहीं। अतः इन सब विषयोंमें तटस्थ रह

अपना हित करना। व्यर्थकी सामग्री संग्रह करना भी ए
जे विभावभावके पोषणमे नोकर्म है। कोई भी कार्य हो उसके
फलका परामश कर आरम्भ करना ही परिपाकमे दुःखावह नहीं
होता। शान्तिमार्गकी कथा सुनकर एकदम बाह्य सामग्रीको त्याग
देना क्या शान्तिमे कारण है? शान्तिका कारण अशान्तिके
आभ्यन्तर बीजको नाश करनेसे होगा। यह बाह्य तो उसमे यदि
वह भाव हो तो कर्म्म हो जाता है सो भी उदासीनरूपसे। जितने
भी अचेतन पदार्थ रागादिकमे निमित्त पड़ते हैं तटस्थरूपसे
वास्तवमे तो हम ही उन्हें निमित्त बनाते है। उनकी सर्वथा ऐसी
शक्ति नहीं जो हठात् रागादिक उत्पन्न करा देवे। मेरी तो चेतन-
अचेतन कारणोंमे एकसी धारणा है। विशेष क्या लिखूँ,
क्योंकि हमारा लिखना मोहज भाव है। इसकी सामर्थ्य कितनी
है यह लिखना तो ऋषियों द्वारा ही साध्य है। जिसके अन्तर्गत
वीतरागताका रस टपकता है। मूर्च्छावालोंकी लेखनी कहाँ तक
असली बातको प्रत्यय करा सकती है। सुवर्णमे जड़ा हुआ कांच
हीराकी आभा नहीं ला सकता। आवश्यकता की लिखी सो
आवश्यकता तो इस बातकी है जो आवश्वकताकी जननी के
गर्भमें न जाना पड़े।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—८]

श्रीयुत प्रशमगुणसम्पन्न पतासीबाई जी, योग्य इच्छाकार

सानन्दसे धर्म-साधन होता होगा। यहाँ पर सर्व-त्यागी
सानन्द धमसाधन कर रहे है। बड़े दिवसोंमे बहुतसे भाइ

आ० । .... कल्याणके अर्थ जो मनुष्य उद्यम करता है वह अति निःशंक हो जाता है । निःशंक रहना ही तो मोक्ष पथिकका पहला अंग है । पर्यायकी पराधीनता उसकी बाधक नहीं । वैसे तो प्रायः मोहके सद्भावमें सभी पराधीन हैं। स्वाधीनता तो पूर्णरूपसे मोहके अभावमें ही होगी।......... खतौलीवाले सर्व आपको वन्दना कहते हैं। श्रीलल्लूमलजी तो ऐसे भूल गये जो क्या कहें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-६]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके पास खेमचन्दजी गये। हमको पता नहीं, किस वास्ते गए और न हमने उनसे कुछ कहा। संसारमें मनुष्योंके भाव अपने अनुकूल होते हैं। चाहे उसमें अन्यका उपकार हो, चाहे अपकार हो, कोई नहीं देखता। संसार मे मायाचारकी प्रचुरता बहुत है। रहे, अपनेको नहीं करना चाहिये। यही आत्म कल्याणकी कुञ्जी है।

हमारा विचार अब प्रायः द्रोणगिरि जानेका हो गया सो यदि इस लम्बे समागममें कषायवश कुछ अपराध हुआ हो उसे हमारा जान आप लोग प्रसन्न रहना। श्री लल्लु बाबूसे कह देना अनात्मीय भावका पोषण करना विषधरसे भी भयानक होता है।

नोट—शायद अब हमारा क्षेत्र-स्पर्शन बहुत कालमें हो।

मघ वदि ६, सं० १६६८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–१०]

ीयुत महाशान्तिमूर्ति पतासीवाईजी व कृष्णाबाईजी,
योग्य इच्छाकार

आपका समागम महावीर स्वामीकी यात्राके अर्थ हुआ अच्छा ही हुआ। प्रायः मनुष्य लौकिक कामनाके हेतु ही विशेष रूपसे यात्रा करते हैं। आप ससार निवृत्तिकी कामनाका आशय हृदयमे धारण कर यात्रा करियेगा। मैं तो उस दिनको आपको धन्य समझूँगा जो आपकी प्रवृत्ति अब अन्यसे छूटेगी। आत्मीय गुणका विकाश उसी आत्मासे होगा जो परपदार्थसे स्नेह छोड़ेगा। आत्मकल्याणका अर्थी, शुद्धोपयोगके साधक जो पदार्थ हैं, उनसे भी स्नेह छोड़ देता है। अन्यकी कथा ही क्या है। मनुष्यजन्ममे ही आत्मज्ञान होता है सो नही, चारो गति ही भेदज्ञानमे कारण हैं। परन्तु संयमका पात्र यही मनुष्य जन्म है, अतः इनका लाभ तभी है जब इन परपदार्थोंसे ममताभाव छोड़ा जावे। ममताके त्याग विना समता नहीं और समताके बिना तामसभावका अभाव नहीं। जब तक आत्मामें कलुषताका कारण यह भाव है तब तक शान्तिका उदय नहीं। शान्तिका मूल कारण निरीहवृत्ति है। भ्रमणमे नाना कष्टोका सामना करना पड़ता है। तथा उस समय धीरताकी कृशता होती है और चञ्चलता वृद्धिको प्राप्त करती है और चञ्चलभावसे ससार वृद्धि का ही आस्रव होता है, अतः ऐसे समयमें जहाँ नाना प्रकारकी असुविधाएँ है, संयमी मनुष्योंको यात्राके अनुकूल नहीं। आत्म-हितका कारण शुद्ध भाव है और कदाचित् विशुद्धभाव भी निमित्त कहा है। परन्तु संक्लेश भाव तो सर्वथा ही अयोग्य है। शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगका समानाधिकरण हो सकता है।

किन्तु अशुभोपयोगके साथ तो उस भावका रहना असम्भव है। युक्तिका उपयोग वहीं तक करना जहां तक मूलतत्त्वमें बाधा न आवे। बहुतसे मनुष्य व्यवहारकी मुख्यताकर मूलवस्तुका उच्छेद करते हैं यह अनुचित है। इसीतरह निश्चयकी मुख्यता कर जो बाह्यप्रवृत्तिका निषेध करते हैं वे भी पतित हैं। तत्त्वप्राप्ति तो समभावसे ही होती है। सो जहाँ तक बने अविरोधपूर्वक धर्म-साधन करना श्रेयोमार्ग है। ...... हम दीपावली बाद कोडरमा जावेंगे और फिर गया जावेंगे। वही मनुष्य उत्तम है जो अल्प सम्बन्ध रखता है।

ईसरी,
कार्तिक वदि ५, स० २००० }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—११]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। आपने लिखा सो ठीक है। मूर्च्छा ही बन्धका कारण है। परन्तु यह समझमें नहीं आता कि वस्तुका सग्रह रहे और मूर्च्छा न हो। असम्भव है। स्वामी कुन्दकुन्दका कहना है कि जीवके घात होने पर बन्ध हो व न हो, नियम नहीं। परन्तु परिग्रहके सद्भावमें नियमसे बन्ध है। अस्तु हम उस वस्तुको अभी तो परिग्रह समझते हैं। परन्तु जिस दिन उससे मूर्च्छा घटेगी एक सेकडमें पृथक् कर देवेंगे, फिर विलम्बका काम नहीं। जहाँ तक भीतरसे मूर्च्छा घटना चाहिये और वही हितकर है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–१२]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वास्थ्य अच्छा उसीका रहेगा जो पराई चिन्तासे मुक्त होगा। वही संसारबंधनसे मुक्त होनेका पात्र है। यह मनुष्यजन्म इसीसे उत्तम है जो संयमका आश्रय है। अन्य पर्यायमे यह बात नहीं। हमने अपनी परणतिको इतना कलुषित कर रखा है जो पर्यायकी उत्तमतासे कार्य लेनेके पात्र नही रहे। केवल इधर-उधरकी प्रशंसामे ही आत्मीय गुणका अनुभव करनेमें अक्षम हैं। आप जहां तक बने यातायातके विकल्प छोड़ यातायातके पात्र न बनो। अपनी दिव्यदृष्टिको प्राप्तकर पञ्चम गतिके भोक्ता होनेकी चेष्टा करो। हम दो मास यहीं पूर्ण करेंगे। मोहमे वही होता है जो हमको हुआ।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–१३]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

मैं चैत्र वदि २ को यहाँसे ईसरीके वास्ते प्रयाण करूँगा। प्राय: चैत्र वदि १० को वहाँ पहुँच जाऊँगा। यातायात अच्छा है यदि अंतरंगवृत्ति यतितुल्य हो, अन्यथा मार्गक्लेश ही है। इसीसे त्यागकी महिमा है जो अन्तरङ्ग परग्रहणकी लालसा न हो। हिंसा, लिप्सा दोनो ही संसारकी जननी हैं, क्योंकि दोनो भावोंमे कषायरूपी विष मिला हुआ है। देनेवाला अपना अहंकार

पुष्ट करता है। लेनेवाला दैन्यवृत्तिका पात्र होता है। जिनके यह भाव नहीं उनकी सर्व क्रिया निर्जराका कारण है। मेरा भी छपरावालीसे धर्मस्नेह कहना। शारदा बालिकाने २) फलोंको भेजे थे, मैंने एक त्यागीको जो वहाँ आ रहा है, भद्र है। इनके द्वारा समाचार जाने। कल्याण वही आत्मा कर सकता है जो मूर्च्छाके जालमें न आवे। आज यहाँ पर सोहनलाल जी व नेमिसागर आए हैं। लाला किरोड़ीलाल जी भी सासनीवाले आये हैं। श्री सुमेरचन्द्र जी भी आये हैं। कल भोंरीलाल जी भी आवेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-१४]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, पढ़ कर प्रसन्नता हुई। जो कुछ आपने लिखा, अक्षरशः सत्य है। ऐसा ही इस अवस्थामें उचित है। परन्तु हमारा स्वास्थ्य मलेरियाके द्वारा समाधिमरणके योग्य हो गया। ११ माससे उसकी हमारे ऊपर इतनी अनुकम्पा है जो निरन्तर परमात्माका स्मरण कराता रहता है। यही भावना हो गयी कि जब तक आत्महितके मार्गका लाभ नहीं हुआ तब तक मलेरिया नहीं, अन्य रहेगा, इससे यही अच्छा है। जो भेदज्ञानमें सहकारी और विरागभावनामें इष्ट योगके तुल्य साधनका काम देता है। इस सर्व लाभकी रक्षा अर्थ हमारा यहाँसे द्रोणगिरि जाना अच्छा है। एक स्थान पर रहनेसे ममताका सद्भाव हो जाता है तथा चित्तमें सुखियापन आ जाता है जो कि आत्माके अहितमें साधक है। भ्रमण

करनेसे स्थानमोह नही होता तथा विशेष व्यक्तियोंके अधीन नहीं होने पड़ता। परिग्रहकी मूर्च्छा नही होती। यहाँ तो हम एक अच्छे परिग्रही बन गए। ऐसा सप्ताह नहीं जाता जो बहुपरिग्रही न बनना पड़े। प्रथम तो मर्यादासे अतिरिक्त वस्तुओंका संग्रह करना पड़ता है। उसके रखनेमे आत्मघात और त्यागमे अपयशभागी बनना पड़ता है। शान्तिका मार्ग तो मूर्च्छा त्यागमे ही है। परन्तु न तो हमारा इतना भाव है और न शारीरिक सामर्थ्य है जो इसे कर सकें। तथा करना भी चाहे तो जो हमारे अन्तरंगहितैषी हैं वह हमे इस योग्य नही मानते, अतः निषेध कर देते हैं इत्यादि विषम परिस्थिति हमारे समक्ष है। परन्तु सबसे महान् सहायक इस समय आत्मविषयक श्रद्धा है और वही इन आपत्तियोंसे पार करेगी। श्रद्धा ही तो मुक्तिमहलकी प्रथम सोपान है। उसकी आज्ञा है यदि इस परिग्रहसे छूटना चाहते हो तो संकोच छोड़ो, निर्द्वन्द्व बनो। परके प्रभावमे आकर अपना अहित मत करो। जो गुण अन्यत्र खोजते हो वे तुम्हारे नहीं। आत्माका उनसे कोई उपकार नहीं। उपकार तो निजशक्तिसे होगा। उसका विकाश करो। परकी पराधीनता छोड़ो। नाना विकल्पोसे दुःखी मत होओ। यह जाल है, इसमें मत फँसो। जो तुम्हें अनन्त संसारमे पटकेगा। इस जालमे फँसानेवाला कौन है, जरा अन्तर्दृष्टिसे परामर्श करो। जाल ही जालमे फँसाता है ऐसी भ्रान्ति छोड़ो। बहेलिया फँसाता है यह भी भ्रान्ति छोड़ो। दाना फँसाता है यह भी भ्रम त्यागो। जिह्वेन्द्रिय फँसाती है यह भी अज्ञानता छोड़ो। केवल चुगनेकी अभिलाषा ही फँसानेमे बीजभूत है। इसके न होने पर सर्व व्यर्थ है। एवं इस दुःखमय ससारमे फँसानेका कारण न तो यह बाह्य सामग्री है, न मन-वचन-कायका व्यापार है, न द्रव्य

कर्मसमूह है। केवल स्वीय आत्मासे उत्पन्न रागादि परणति ही सेनापतिका कार्य करती है। अतः इसीका निपात करो। अनायास संसारसे मुक्त होनेका मार्ग पाजाओगे। जो लिखा रिक्शामें बैठनेकी अपेक्षा डोलीमें क्या दोष? सो आप निश्चिन्त रहिये। हम कदापि वह कार्य न करेंगे जिससे आत्माको सुमार्गसे च्युत होना पड़े। यदि किसीने कह दिया, इस पर हमारा क्या वश है। हम १२ मास जो प्रतिज्ञा की है उसका निर्वाह करेंगे। प्रतिज्ञा कर धर्मका लाभ नहीं होता। लाभ तो आत्मपरिणामोंको निर्मल रखनेसे होगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-१५]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

श्री सोहनलालजीके पास आपका पत्र आया, समाचार जाने। हमारी तो यह सम्मति है जो आप गया छोड़कर कहीं न जावें। जहाँ जाओ वही हाल घर-घर मटिया चूले। मेरी तो निजी सम्मति आपको यही है जो कल्याणका मार्ग आत्माके अन्तस्तलमें है, वाह्यमें नहीं। किन्तु हम लोगोकी ऐसी प्रवृत्ति हो गयी है जो इतस्ततः भ्रमण कर और परस्पर मिश्र चर्चाकर अपने समयका दुरुपयोग करनेमें ही उत्तम आयुका पर्यावसान कर देते हैं। एक मुहूर्त भी आत्मीयशान्तिके पात्र नहीं होते। आपकी इच्छा हो सो करो किन्तु आपके यहाँ जो स्त्री समाज है वह आपके अनुकूल है, उसे त्यागकर अपरिचित स्थानमें जाकर कौनसा विशेष लाभ है। हम तो अब भाद्र मास पूर्ण

होते ही आश्विन मासमे ईसरी जावेंगे। पश्चात् एक स्थान पर रहनेका आजन्म निर्णय कर प्रतिज्ञा कर लेवेंगे जो कहीं न जाना। सर्वोत्तम तो गुणावा व राजगिरि हैं। विशेष क्या लिखें। आपको एक धर्मात्मा जान अपने नियमके अपवाद रूप पत्र दिया है।

श्रावण शुक्ल ४, सं० २००० } आ० शु० चि०
गणेशवर्णी

[३–१६]

श्रीयुतभव्यमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। कल्याणके अर्थ सर्वत्र ही सामग्री है। यातायातकी कल्पना हमारी मोहपरिणति कराती है। मेरा यह विचार है जो इस यातायातके चक्करमे रहता है वह यातायात ही का पात्र होता है। स्थिर भावसे ही स्थिर गति मिलती है। पानी विलोननेसे मक्खनकी उपलब्धि नहीं होती। इसी तरह कषायोंके विकल्पोंसे कषायाग्निकी शान्ति नहीं होती। उपेक्षामृतसे ही कषायाग्निका आतप शमन होता है। संसर्गसे लाभ व हानि होने योग्य पदार्थ ही में हानि होती है। मुंगठीको कितने ही गर्म जलका संसर्ग मिले पाक अवस्था उसकी न होगी। गृहस्थोके संसर्गसे उसीकी आत्मा पतित होगी जो लोभी और मोही होगा। विशेष क्या लिखे। आपकी जो इच्छा हो सो करें। उसका निवारण करनेवाला अन्य नहीं। अभी हम माघान्त यहीं पर हैं। फागुनमे अन्यत्र जानेका विकल्प करेंगे।

लल्लूभाईसे दर्शनविशुद्धि। सानन्द होंगे। विशेष क्या लिखें। वह तो वही हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-१७]

श्रीयुत विदुषी विवेकमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार;

पत्र आया, समाचार जाने। मैं अभी कुण्डलपुरसे कटनी जा रहा हूं। सागर जाना सागरवालोंकी धूमधामसे दूर हो गया। यद्यपि मेरा स्वास्थ्य वहांकी अपेक्षा अन्यत्र अच्छा नहीं रहता फिर भी अनिच्छा पूर्वक सागरवालोंके विचारोंसे सागरसे दूर ही रहना अच्छा समझता हूँ। कल्याणका मार्ग शान्तिमें है और शान्तिका मूल कारण परमें ममत्व भावका त्याग है। जहाँ पर सम्बन्ध हुआ, ममताकी प्रचुरता हो जाती है। यद्यपि इसके उपादान कारण हम स्वयं हैं। फिर भी मोहकी वानसे परमें दूषण देनेमें बाज नहीं आते। आप गयावालोंसे दर्शनविशुद्धि कहना और आप कुछ दिन रहकर वहाँकी समाजका हित करना। आपमें उन लोगोंकी बहुत भक्ति है। समय पाकर विशेष पत्र लिखूँगा।

फाल्गुन वदि ४ सं० २००१ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-१८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप शान्तिके स्थानमें पहुँच गईं यह बड़े सौभाग्यका उदय

है। परन्तु जब बना रहे, अन्यथा हमारीसी दशा होगी। लौकिक मनुष्योंका समागम श्रेयोमार्गमें साधक नहीं। यद्यपि परमार्थ से न साधक है और न बाधक है फिर भी उपचारसे बाधककी तरफ विशेषता रखता है। वहाँ पर इन समागमोंकी विरलता है, क्योंकि विलक्षण स्थान है।

चैत्र बदि ५, स० २००१ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[३—१६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मेरा स्वास्थ्य प्रायः अब पके पानकी तरह है, इसकी चिन्ता नहीं। आप जहाँ तक बने, आकुलतासे बचना। पर पदार्थोंका सम्बन्ध ही इसका मुख्य कारण है। आत्मीय गुणोके विकाशमें यही उपाधि है। जिनने इन पर पदार्थोंकी आशा छोड़ दी उनने सर्व कुछ किया। ज्ञानार्जनका फल रागादिनिवृत्ति है। संसारमें सर्व वस्तु सुलभ है, केवल आत्माका बोध दुर्लभ है। गल्पवादसे उसका लाभ नहीं। उसका लाभ तो आत्माकी भिन्नता जाननेमें है। परन्तु उस ओर हमारा लक्ष्य नहीं। ससारको खुश करनेमें हमारे दुर्लभ समय और ज्ञानका दुरुपयोग होता है। यहां पर नेमिचन्द पाटनी आये थे। सज्जन व्यक्ति हैं। आपकी स्मृति करते थे। और कहते थे जो बाई जी मारोठ रह जावें तो अच्छा है। हमारा विचार भी ईसरी आनेका है। परसाल आवेंगे, क्योंकि गर्मी पड़ने लगी है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—२०]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका चित्त शान्त है यह बड़े भाग्यकी बात है। यहाँ पर श्री नेमिचन्दजी आए थे, योग्य हैं। आपका समागम थोड़े दिनोंको चाहते हैं। आपके निमित्तसे वहाँकी जनताको बहुत ही लाभ होगा। यदि आपके पवित्र विचारोंमे कुछ दिन वहाँका जाना निश्चित हो जावे तब अच्छा है। गया भी आपका ही है। कुछ दिन वहाँवालोंको शान्ति मार्ग पर स्थिर कर मारोठ जानेके विचार करिए। मैं यहांसे जबलपुर जाऊँगा। आश्रमवासियोंसे मेरा इच्छाकार।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[३—२१]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य

.......हमारा स्वास्थ्य अच्छा है। संसारमें शान्ति नहीं। शान्तिका कारण मूर्च्छाका अभाव है। वह सम्यग्ज्ञान होने पर अनायास हो जाता है, विकल्पोंसे नहीं होता। चरणानुयोग तो विधि और निषेधकी प्ररूपणा करनेवाला है। हिंसादि पञ्च पापसे निवृत्त हो अहिंसादि पञ्च व्रतोंका पालन करो। अन्तरङ्गसे जहाँ मूर्च्छा जाती है वहाँ न विधि है न निषेध है। यही कल्याण का सत्य मार्ग है। धन्य है उस आत्माको जो इसका पात्र हो गया यह कहना भी मोही जीवोंकी प्रक्रिया है। पूज्य-पूजक,

गुरु-शिष्य यह सर्व व्यवहार मोहमे होते हैं। निश्चय व्यवहार आदि जितने कार्य हैं सभी मोहके द्वारा विकल्पजन्य होते हैं। मोहके अभावमे आत्माको जो शान्ति मिलती है वह वचनातीत है। अर्थात् सब दुःखोसे निवृत्ति हो जाती है। यहाँ तो हम लोग अभी उस शान्तिमन्दिरके दरवाजेके सम्मुख हुए हैं। यदि ठीक सीधी चाल चलेंगे उस मन्दिरमे पहुँच जावेंगे और जो मानादि कषायके आश्रय हो जावेंगे तब सर्व करा-कराया यों ही जावेगा। अतः कोई भी कार्य करो उसमें कर्तृत्वका अभिमान न हो। होना था हो गया। व्यर्थ ही क्यो परके कर्त्ता बनते हो।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[३-२२]

श्री प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। जहाँ आपका निवास है वहाँकी समाजका कल्याण होना उचित ही है। मेरा आत्मविश्वास है, निष्कपट भावसे ज आत्मा चाहेगा होगा। यह तो पाठशाला है, मोक्ष प्राप्ति सुलभ है। मेरा स्त्रीसमाजसे यह सदेश कहना जो जैसी रुपया देनेमे उदारता दिखाई है वैसी ही उदारता चारित्र ग्रहण करनेमें दिखाओ।

१ सिनेमा देखना त्यागो।
२ ऐसा वस्त्र पहनो जो शरीरकी रक्षा करे।
३ व्यर्थ बात मत करो।
४ चटपटा भोजन मत करो।
५ अनुपसेव्य पर सदा ध्यान दो।

६ उतना वस्त्रोंका संग्रह करो जो उपयोगमें आवें। व्यर्थ सन्दूक मत भरो।

७ अभक्ष्य भोजनका त्याग करो।

वार वदि ३, सं० २००२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-२३]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

मेरे पास कोई पत्र नहीं आया। मैं आपके पत्रका उत्तर न दू यह असम्भव है। ससारमें सभी स्वार्थी हैं। आपके द्वारा हमारा उपकार है; क्योंकि आपकी प्रवृत्ति निवृत्तिसे मिश्रत है। गया समाजका ही उपकार नहीं हुआ। उस प्रान्तकी आपसे शोभा है। यद्यपि निश्चयसे कोई किसीका उपकारी नहीं, परन्तु निमित्त अपेक्षा यह सर्व व्यवहार है। तत्त्वदृष्टिवाले भी परोपकार करते हैं, परन्तु कर्तृत्वका अभिमान नहीं करते।

जबतक ससारमें राग है उसका कार्य होगा। अन्तरङ्गके वह नहीं चाहता, परन्तु बलात्कार करना पड़ता है। मेरा तो यह विश्वास है, सोलह-कारण भावना को भी सम्यग्दृष्टि उपादेय नहीं मानता। बन्धके कारणोंमे सम्यग्दृष्टि उपादेयता माने असम्भव है। आपने लिखा, हमारी शक्ति नहीं, सो ठीक नहीं। यह सर्व कार्य तो मोहके उदयमें होत हैं, उनमे कर्तृत्व-बुद्धि न करना उचित ही है। गया की स्त्रीसमाज तो आपके उपदेशसे द्रवीभूत हो गई है। यदि वह सुमार्ग पर चले तब इसमे क्या आश्चर्य। परन्तु हमारी तो यह सम्मति है, आप उन्हे सुना देना। यद्यपि

आपने उसे सर्व कुछ दिया है। यह मेरी सम्मति नवीन नहीं फिर भी सुना देना—अष्टमी, चतुर्दशी, सोलह कारण और अष्टान्हिका पर्वमें ब्रह्मचर्यसे रहें और जब गर्भमे बालक आवे तबसे लेकर जबतक बालक जन्मसे १२ मास का न हो जाय, ब्रह्मचर्यसे रहें। मनुष्योंको भी यह पत्र पढ़ा देना। इसके बिना मनुष्य स्त्रीधर्म-साधनके पात्र नहीं।

जबलपुर
माघ वदि ८, सं० २०० } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—२४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हम क्या आपको सचेत करेंगे, आप स्वयं सचेत हैं। सबसे प्रसन्नता तो हमको यह है जो आप किसी संस्थाके चक्रमे न आयीं। मेरी तो यह सम्मति है जो हीरापुर जैसा गॉव उस प्रान्तमें नहीं है। यदि विशेष सहायता करनी हो तब ५०) मासिक पण्डितको, १०) मासिक ऊपरी खर्चको इस तरह ६०) मासिकमे पाठशाला अच्छी चलेगी और विशेष सहायता हो तब जैसा आप लिखें सो करें। रुपया वृन्दावन सिंघईके नाम भेज देना या सागर सिंघई कुन्दनलालके नाम भेज देना। यहॉ पर सर सेठ इन्दौरसे आए थे, उनने २५०००) मुझे भेंट स्वरूप दिया और कहा—आपकी जो इच्छा हो सो करें। मैंने सागरसमाजसे कहा—२५०००) यदि तुम दो तब यह २५०००) तुम ले सकते हो। उन्होंने देना स्वीकार किया। इस तरह ५००००) विद्यालयको हो गया। यह

इस प्रान्तका बड़ा विद्यालय था। ६५०००) पहले था अब १,१५०००) हो गया। एक गॉव भी ४००००) का है। अब एक विद्यालय बनारस ही स्थायी होनेको रह गया।......... यदि विहार प्रान्त चाहे तब बनारसको स्थिर कर सकता है। मुझे सेठ जीने बहुत आग्रह इन्दौर आनेका किया है और बहुत कुछ। उत्तम बात कही। वह बहुत प्रसन्न होकर गए।

आषाढ सुदि ४, सं०२००४ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-२५]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। बाईजी! आप जानती हैं जो मैं किस प्रकृतिका हूँ। अबतक मैंने अपने मन पर अधिकार नहीं कर पाया। इसीका फल है जो आज तक बाह्यमें कोई आपत्ति न होने पर भी शान्ति-मार्गसे दूर हूँ। शान्तिकी कथा करना और बात है, शान्तिका आस्वाद होना और बात है। शिखरजीमे शान्तिके निमित्त अन्य स्थानोंकी अपेक्षा पुष्कल हैं, परन्तु भाग्यहीनको सर्वत्र ही दुर्लभ हैं। मैं इतना दुर्बल हूँ जो एक अबोध बालक मुझे बहका लेता है। मोक्षमार्गका लाभ उसी आत्माको होता है जो इन कषायोंकी दुर्बलतासे परे रहता है। कषायोंकी शक्तिसे निखिल जगत खिन्न हो रहा है। तत्त्वदृष्टिसे परामर्श किया जावे तब यह अज्ञानता जीवकी है। कषाय क्या है? अपनी ही अकर्मण्यता है। जिस समय यह बोध हो जावे कि इसके उत्पादक हम ही तो हैं कल्याणपथ सुगम हो जावे। बहुतसे मनुष्य इन कषायोंको कर्मोदयका ही कार्य मान निरुद्यमी हो जावे हैं। कर्मोदय तो

पुद्गलमे हुआ अर्थात् पुद्गलकी पर्याय है। उसका निमित्त पाकर आत्मा स्वयं रागादि रूप परिणमनको प्राप्त हो जाता है। यह अपराध आत्मा ही का तो है। श्रद्धासे मलिनता जावे, तब तो यह सगति बैठे। अतः जो कल्याणके लिप्सु हैं उन्हे अपनेमे जो भाव होवें उनका विचार करना उपयोगी है। विचार ही नही, इन कषायोके होने पर भी इनमे आसक्त न होना यह कोई कठिन बात नही, परन्तु साहस होना चाहिए। स्वाध्याय करना तप है परन्तु जो उसपर यथाशक्ति अमल किया जावे। स्वाध्याय कोई अनुयोगका किया जावे। यदि अन्तरङ्गकी स्वच्छताके अभिप्रायसे किया जावे तब तो तप है अन्यथा पण्डित तो बहुत हो जाते हैं। पूर्वधर भी शुक्लध्यानका पात्र होता है और अष्टप्रवचनमात्रका जाननेवाला भी उसका पात्र होता है। विशेष क्या लिखें, मेरी तो यह श्रद्धा है जो जिसने तत्त्वज्ञानके द्वारा रागादि निवृत्तिको लक्ष्य रखा वह वन्द्य है और केवल लोक-रञ्जनाका भाव रखा, उसने कुछ भी लाभ तत्त्वज्ञानका न पाया। परोपदेशमे सर्व कुशल हैं। यदि आप स्वयं यथार्थ धर्मका अनुसरण करें तब किसीसे कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रहे जो आप धर्मका आचरण करे, क्योंकि निर्मल आत्माका ऐसा प्रभाव होता है जो उपदेशके बिना ही मनुष्य उनके पथका अनुसरण करते हैं। आज जो संसारमे विशेष भ्रष्टाचार हो रहा है उसका मूल कारण जो प्रवर्तक हैं उनके सदाचार विषयक विचार अतिनिकृष्ट हैं। ....।

श्रावण सुदि ५, स० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–२६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मैं अकिञ्चित्कर हूँ। यदि बुद्धिशाली होता तब ईसरी न छोड़ता। ४० वर्ष इस प्रान्तमें रहा फिर भी मोहकी महिमा देखो! उत्तम स्थानको छोड़कर जहाँ पर विशेषकर मोहके कारण हैं वहीं आनकर फँस गया। यद्यपि अन्तरङ्ग कारणकी बलवत्ता में यह बाह्य कारण अकिञ्चित्कर हैं फिर भी मोही जीवोंके निमित्त कारणोंकी मुख्यतासे ही उपदेश देनेकी पद्धति है। चरणानुयोगका उपदेश बाह्य कारणोंकी अपेक्षासे ही दिया जाता है। अन्यकी कथा छोड़िए–तीर्थंकर भगवानने दीक्षा लेनेके बाद मौन ही रखा. अतः हम लोगों को अन्तरङ्ग परिणामोंकी विशुद्धताकी रक्षाके लिए निमित्त कारण अनुकूल ही बनाना चाहिए। तात्विकदृष्टिसे आत्मामें ही वह शक्ति है जो शुभ, अशुभ, शुद्धरूप स्वयं परिणमता है। कोई द्रव्यका अंशमात्र भी कोई द्रव्यमें नहीं जाता यह अटल नियम है और इस नियमका कोई कालमें अपवाद नहीं। ऐसा होने पर भी मोही जीवको शुद्धोपयोगके अनुकूल कारणोंकी आवश्यकता रहती है। अस्तु, इस चर्चाको छोड़ो। आप तो विदुषी हैं तथा त्यागका भी आपके आश्रय हैं। जहाँ तक हो परकी उपेक्षा ही रखना अच्छा है। जो जितनी उपेक्षा करेगा, उतना ही अधिक संसारका उपकार उससे होगा। जिसके पूर्ण उपेक्षा होगी उसकी अनक्षरी वाणीसे ही सर्वका कल्याण होगा। अन्यकी कथा दूर रहे, पशुओं का भी कल्याण उसके देखनेसे हो जाता है। अतः हमें इन बाह्य पदार्थोंकी उपेक्षा करनी चाहिए। सुखका

उदय भी उपेक्षामें होता है। सम्यग्दृष्टिके जो सुख है सो अनन्तानुबन्धी कषायके उपशमादि का है। जो वह बाह्य व्यवहार करता है उसका सुख नहीं है। देशव्रतीके जो शान्ति है वह अणुव्रतकी नहीं कषायके अभावकी है। एवं महाव्रती व यथाख्यातचरित्र-वालोंके जो शान्ति है वह कषायोंके अभावकी है। तथा जो कुछ प्रवृत्ति है वह तो स्वरूपकी बाधक ही है। अन्य प्रवृत्ति को छोड़ो। योगमात्रकी प्रवृत्ति भी परम यथाख्यातचारित्रको नहीं होने देती।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—२७]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

जानना और बात है, तदनुकूल हो जाना और बात है। यह तो निर्विवाद है; क्योंकि ज्ञान गुण भिन्न है और चारित्र गुण भिन्न है। फिर भी यह निश्चय है, जिसका ज्ञान सम्यक् है उसके चारित्र मोहनीयकी प्रबलतासे वर्तमानमे चारित्र न भी हो परन्तु हो जावेगा यह निश्चय है। सामान्य मनुष्योंकी बात छोड़ दीजिए, महान् पुरुष भी चारित्र-मोहकी प्रबलतामें स्वात्माको रागद्वेषसे नही बचा सकते। अस्तु, इससे सन्तोष कर लेना उचित नहीं। यथाशक्ति रागादिकको दूर करनेकी चेष्टा करना चाहिये। किन्तु जिस पदमें हो, उसीके अनुकूल रागादिक दूर कर सकता है। देशव्रतवाला मुनियोंके सदृश न तो रागादिक ही दूर कर सकता है और न उनके सदृश दया ही पाल सकता

सकता है। 'शक्तितस्त्यागतपसी' अतः मोक्षमार्गमें जिसने पद रक्खा है उसे यही उचित है जो बुद्धिपूर्वक कार्य करे। आकुलतासे समीचीन मार्गमें बाधा ही आती है। चेष्टा अपने कल्याणकी करना श्रेष्ठ है। प्राणीवर्गका भी उससे कल्याण हो जावे यह बात अन्य है। परन्तु हमारा लक्ष्य निजकी ओर रहना चाहिये। हमारा तो अभिप्राय श्री पार्श्वप्रभुके पादमूलमें समाधिका है। होगा क्या, श्री वीर जानें। बड़े ही पुण्यका उदय उन जीवोंका है जो श्री पार्श्व-प्रभुके निर्वाणक्षेत्रमें आत्मकल्याणके मार्गमें लगे हैं। क्षेत्र भी कारण है। ऐसे भी हैं जो क्षेत्रमें निवास करके भी कषायोंकी प्रचुरतामें आत्महितसे वञ्चित रहते हैं। परमार्थ तो यह है जो कोई द्रव्यको द्रव्य नहीं परिणमा सकता है। मोही जीव नाना कल्पना कर लेते हैं। जो मोहमें न हो, थोड़ा है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो मोहके द्वारा ही संसारमार्ग चल रहा है और इसकी ही महिमासे निवृत्तिमार्गमें प्रवृत्तिका उपदेश हो रहा है। यदि गणधरदेवके धर्मानुराग न होता तो इन द्वादशांगकी रचना कौन करता? यदि भगवद्गुणानुरागरूप भक्ति न होती तब यह पञ्चस्तोत्रादि जो स्तवन देखनेमें आते हैं इनका अस्तित्व न होता। यद्यपि सम्यग्ज्ञानी जीवके श्री भगवानके गुणोंमें अनुराग है, परन्तु उस अनुरागमें राग नहीं। इसीसे उस रागमें उसकी उपादेय बुद्धि नहीं। भगवद्गुणोंको वह उपादेय मानता है, परन्तु भक्तिको बन्धका ही मार्ग मानता है। अतः परोपकारकी वृत्ति भी एक राग है। यह भी त्याज्य है। सम्यग्ज्ञानी जीवके भी अनुकम्पा आदि होती है; परन्तु उन्हें त्यागना ही चाहता है। अतः पदके अनुकूल परोपकार करना ही योग्य है। परन्तु उसमें उपादेयता न होनी चाहिये। हमारा स्त्री समाजसे धर्मप्रेम कहना। परन्तु कल्याणका मार्ग तो स्त्रीसमाजका उसीके अधीन है। उचित तो

यह है जो आत्मा न तो स्त्री है और न पुरुष है और न नपुसक है। अतः पर्यायबुद्धिसे जो स्त्री समाजमे निर्बलता आ गयी है उसे दूर करो और वाह्य लज्जाकी अपेक्षा अन्तरङ्ग गुणोकी लज्जा रक्खो। हमारी प्रवृत्ति मुख ढॅकनेकी हो गयी है। हम बाह्य पदार्थोंसे ग्लानि व हर्ष करते हैं। सो मेरी समझमें आत्मामे जो पाप-परिणामोंकी उत्पत्ति हो उससे ग्लानि करो और जो उत्तम गुणोंका विकाश हो उसका हर्ष करो। केवल शरीरके सस्कारमे समय न गमाओ। कुछ आत्मसंस्कारमे काल लगाओ। अब मैं भाद्रपद मास तक पत्र न दूंगा।

आ० शु० चि०
भाद्र वदि १, सं० २००४ } **गणेश वर्णी**

[३-२८]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

शान्ति पूवक गया पहुँचनेका समाचार देना। यद्यपि संसारमे शान्तिका लेश नहीं, क्योकि जहाॅ निरन्तर पर पदार्थोंसे रागादि पूर्वक सम्बन्ध हो रहा है वहाॅ शान्ति नहीं। जिनके परिग्रहकी विपुलता है उनको सन्तोषके अभावमे सुख नही। जिनके है नहीं उन्हें निरन्तर प्राप्तिकी अकांक्षा सता रही है जिनके होकर अन्त हो जाता है वह उसके जानेके कारणों या कारणभूत भूलोंको स्मरण करते करते व्याकुल रहते हैं। अतः सिद्धान्त तो यह कहता है जो मूर्च्छा त्यागो। दान देना मूर्च्छा त्यागका कारण है। परन्तु अज्ञानी जीव देकर अधिक भागमें मूर्च्छा उत्पन्न कर लेते हैं। यदि इसमे सन्देह हो तब अपनी आत्मासे पूछो, क्या सत्य मार्ग है। पर द्रव्यके त्यागकालमे वीतरागता आनी चाहिए। सो वह

तो होती नहीं। या तो हर्ष होता है या मान होता है। ये दोनों भाव क्या मूर्च्छा नहीं हैं। इस विषयकी मीमांसा अंतरङ्गसे जो करेगा वही इसके मर्मको समझेगा। दानका देना परिग्रह का कर्तव्य है। परन्तु उपादेय मानना क्या आश्रवतत्त्वमें रुचि नहीं। यहाँ पर रुचि अभिलापारूप पड़ती है। अभिलाषा अनात्मधर्म है। सम्यग्ज्ञानीके कदापि नहीं होना चाहिए। इसका यह अर्थ है, अभिप्राय पूर्वक नहीं होना चाहिए। साधारणतया होना और बात है और अभिप्राय पूर्वक होना और बात है। विशेष तत्त्व प्रायः बहुज्ञानी ही निरूपण कर सकते हैं। सो तो प्रायः इस कालमें अल्प हैं। जो हैं उनका समागम मिलना दुर्लभ है। श्रीमान् लोग बहुत अंशोंसे चाहे तो इसकी पूर्ति कर सकते हैं। परन्तु उनका लक्ष्य वे जानें। विशेष क्या लिखें। इस समय तो जलमें कमलवत् निर्लेप रहनेका प्रयत्न ही सराहनीय है। अब तो गयामें पिण्डदानसे ही पिण्ड छूटेगा, क्योंकि वहाँ पर लालची पण्डोंके चक्रसे बचना प्रबल आत्माका ही काम है। यह बात लल्लूसे पूछना। बाबू गोविन्दलाल तो स्वयं इसके फेरमें हैं। हम १५ दिनको गिरेटी जावेंगे। कु० सु० २ मंगलको जावेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–२६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

शान्तिका लाभ उसी आत्माको होगा जो अपने उत्कर्ष गुणको व्यर्थके अभिमानमें न आकर रक्षा करेगा। आज कल

लोग (अज्ञानी) प्रशंसामे फूले नहीं समाते। वह धर्मका वाह्य स्वरूप इसी अर्थमें पालते हैं। आभ्यन्तर कलुषताके अभावमें वाह्य सदाचारताका कोई मूल्य नही। ऐसे मनुष्योंको उसकी गन्ध नही। गृहस्थके उपासक त्यागी धर्मके मर्मको नहीं पा सकते, क्योंकि गृहस्थ तो आतुर हैं। जहाँ उन्हे कुछ उनके अनुकूल वचन मिले उसीके अनुयायी हो जाते हैं और उसकी ऊपरी वैयावृत्ति कर अपना भला समझते हैं। अथवा यो कहिए, इन लोगोको अपने पक्षमे कर अपनी मानादि प्रवृत्तियोंकी रक्षा करते हैं। सत्य स्वरूपमे उनके स्वेच्छाचारिताका घात है। हम तो एक कोणमे हैं। अतः पार्श्व-प्रभुकी चरण-सेवा ही इससे इष्ट की है। यहाँ पर उन प्रलोभनोकी त्रुटि नहीं। यही कारण है जो आज तक शान्तिकी गन्ध नही आयी और ऐसे आडम्वरोंमे शान्ति काहे की। घर छोड़ा, दुनियाको घर वना लिया। धिक् इस परिणति को। ......

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३०]

प्रशममूर्ति श्री पतासीवाई जी, योग्य इच्छाकार

धमसाधनका फल शान्ति है। यदि उसमे वाधा आवे तव व्यवहार धर्म एक तरहकी विडम्वना है। एक वात निरन्तर स्मरण रखना—किसी जीवको अपनानेकी चेष्टा न करना। स्वकीय आत्मा अनन्त कालसे हमारी विरोधनी हो रही है। उसे ही मना लो—संसारसे वेड़ा पार है। अथवा यों कहो जो हमारी प्रवृत्ति आत्माके स्वभावके प्रतिकूल हो रही है।

आत्माका स्वभाव तो ज्ञाता द्रष्टा है। हम इसे हर्ष-विषादसे दूषित बना रहे हैं। इसे शुद्ध करनेकी चेष्टा करो। यदि हम आपके साथ चिकनी-चुपडी बातें करें अथवा व्यर्थ प्रशंसा करें, यह सर्व ठगनेके मार्ग हैं अतः किसीके जालमें न आवो। क्या कोई करेगा ? अपना कल्याण और अकल्याण आप ही से होगा। इसमें अणुमात्र भी अन्यथा नहीं। स्थानकी विशेषता अथवा समागमकी विशेषता ही मानकर निरन्तर चित्त-वृत्तिमें विकल्प करना कुछ कार्यकारी नहीं। जहाँ सूरजका उदय वही पूर्व। यही कारण है जो सर्व क्षेत्रोंसे मेरु उत्तर पड़ता है, अतः शान्तताका मूल कारण जान कर्मोंका पिण्डदान गया ही मे करना अच्छा है। हमारी कही सो पोतके पक्षी हैं, कहाँ जावें ?

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[३–३१]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द स्वाध्याय पूर्वक समयकी दुर्लभताको उपयोगमें लाना। संसारमें वही जीव शान्ति ले सकता है जो मूर्च्छाके कारण पर पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़ता है। मेरी तो यह धारणा है जो अशुभ परिणामको छोड़कर शुभ परिणामोंको चाहता है वह पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़कर तत्त्वको नहीं समझता। उसकी आत्मामें वास्तविक सुखका अंश नहीं आया। अतः जहाँ तक बने, तत्त्वपूर्वक ही क्रिया करना लाभदायक है। श्री लल्लूमल

जीसे दर्शनविशुद्धि । आप तो अब आपको लक्ष्यमे न रखकर कार्य करनेमे प्रवृत्ति करनेका पूर्वरूप करने लगे हो, यह क्या योग्य है। उदयकी बलवत्ता ज्ञानीका घात नहीं कर सकती।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-३२]

श्रीयुत शान्तिमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। बड़ी प्रसन्नताकी बात है जो आपने व्रतोको ग्रहण किया। आप तो पहले से ही निर्दोप व्रतोका पालन कर रही हैं। सप्तमी प्रतिमा आपको कोई कठिन नहीं है। चरणानुयोगकी विधि सर्व शास्त्रोंमे लिखी है तथा आपको भी विदित है। हमारा तो इस विपयमें विशेष ज्ञान नही। हमारा अभिप्राय तो अन्तरंगसे यह रहता है जो रागादिककी निवृत्ति ही शान्तिका कारण है। व्रत धारण करनेका भी यही अभिप्राय है। आज तक हमारी आत्मा इसीसे वञ्चित रही जो हमने बाह्य व्रतोकी रक्षा तो की परन्तु अन्तरङ्ग निर्मलता पर लक्ष्य नहीं दिया। लोकलिप्साने सब ओरसे हमे बन्धनमे डाल दिया। जिन जीवोको आत्मकल्याण करनेकी इच्छा है वे इस झूठी वाहवाहीको त्यागे और शरीर एव आत्मा दोनोंके आभूषण सदाचारकी सुरक्षाके लिये अन्तरङ्ग निर्मलताको बनाये रखनेका सदा ध्यान रखें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३२]

श्रीयुत स्वमार्गरता पतासीवाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आत्मा सभी अचिन्त्य सामर्थ्यके पात्र हैं और उसका सर्वदा सद्भाव है। परन्तु इतना अन्तर है जो संसारमें उस सामर्थ्यका उपयोग संसारी पर्यायोंके सम्पादन करनेमें ही होता है और जो संसारसे भयभीत हो जाते हैं वे अपनी उस सामर्थ्यको इस तरफसे पृथक् कर केवल स्वरूपोपलब्धिमें व्याप्त कर देते हैं। अतः संसार दुःखोंके जालसे विनिर्मुक्त होकर स्वात्मोत्थ वचनागोचर अनुपम स्वाधीन सुखके पात्र होते हैं। हम निरन्तर निष्प्रयोजन विकल्पो द्वारा अपनी आत्माको कायर बनानेमें प्रयत्नशील रहते हैं और सतत परके द्वारा अपने दुःखोंको उन्मूलन करना चाहते हैं। अपना सर्वस्व जो कुछ कर्मोदयसे हुआ है, परकी सुश्रूषामें लगा देते हैं। तत्त्वदृष्टिसे विचारो, सर्व से श्रेष्ठ आत्मा केवली है। उनकी उपासनासे हम चाहें कि वह हमारा हित कर देवेंगे तब तो असम्भव ही है, क्योंकि वह तो वीतराग हैं, तटस्थ हैं। उनके द्वारा न किसीका श्रेय है और न अश्रेय ही है।

रहे संसारी जीव सो यह स्वयं संसारी हैं। इनके द्वारा हित की अकांक्षा अन्धेसे मार्गप्राप्तिके तुल्य है। अतः सर्व विकल्पों की आकुलताको छोड़ एक स्वयंसिद्ध जो अपनी शक्ति है उसका विकाश करो। अनायास ही सर्व आपत्तियोंसे छूट जानेका अवसर आ जावेगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३४]

श्रीयुत महाशय त्यागी वर्ग व श्रीकृष्णाबाईजी तथा
श्री पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। बात अच्छी है, कल्याणकारक है। किन्तु मैं क्या संसारमात्र उसी कथनकी प्रशंसा करता है। जो हो, हमारा विचार जो है वह कार्यमें परिणत होने पर ही अच्छा है। परन्तु होना असम्भव है। जो वत्स हाथीका भार नहीं ले सकता। हाँ, यह अवश्य है, पर्यायानुकूल जो बने वह करना ही अच्छा है। हम चैत्र वदि २ तक यहां रहेंगे और पश्चात् बनारस जाऊँगा। वहांसे फिर सागर जानेका विचार करूँगा। क्षेत्र ईसरी उत्तम है, परन्तु हमारे दैवने हमको अनुकूलता नहीं दी। जलवायु एक वर्षसे हमारे स्वास्थ्यके विरुद्ध ही रहा। अतः लाचार हमें ईसरी-त्याग करना पड़ा। अन्य कारण नहीं। कोई कुछ कल्पना करे इसका हर्ष-विषाद हमें नहीं। अपने ही परिणामों की निर्मलताके करनेमें ही समय नहीं मिलता, वह परकी क्या समालोचना करेगा। मुझे निरन्तर अपने मलिन भावोंकी ग्लानि रहती है। परन्तु वशकी बात नहीं। अस्तु, समय पाकर पत्र लिखूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३५]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र बाबू जीके पास आया, समाचार जाने। मेरी कुछ ऐसी प्रवृत्ति है जो वस्तुको देखकर भय लगता है

और इतनी निर्मलता और शक्ति नहीं कि निष्परिग्रह रह सकूँ। धर्म तो वास्तवमें निर्ग्रन्थसे ही होता है और निर्ग्रन्थ वही कहलाता है जो अन्तरङ्गसे भावपूर्वक हो। वैसे तो बहुतसे जीव परिग्रह विहीन हैं परन्तु आभ्यन्तर परिग्रहके त्यागे विना इस वाह्य परिग्रहके छोड़नेकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। अब लक्ष्य आभ्यन्तरकी ओर रखना ही श्रेयोमार्ग है। धर्मके साधन सर्वत्र हैं। परन्तु आभ्यन्तरके परिणामोंकी निर्मलता आभ्यन्तर ही में है, अतः उसके अर्थ व्याकुलताकी कोई आवश्यकता नहीं। स्थानका ही महत्त्व मानना कुछ उपयोगी नहीं। सूर्यमें प्रकाशकत्व गुण है। उसके द्वारा जगत देखता है, परन्तु नेत्र विहीनको उसका कोई उपयोग नहीं। यदि नेत्रवाला उद्योग करे तब अपना कार्य कर सकता है। सभी घूघू नहीं होते। अतः आनन्दसे स्वाध्याय करिए और वह स्वाध्याय लाभदायक है जिसमें अपनी प्रवृत्ति रहे। स्वाध्यायको तपमें ग्रहण किया, अतः स्वाध्याय केवल ज्ञान ही का उत्पादक नहीं, किन्तु चारित्रका भी अंग है। विशेष क्या लिखें, सभी आत्मामें सर्व गुण हैं। परन्तु हमारे ही अपराधसे उनके विकाश विपरीत होकर दुःखके कारण बन रहे हैं। बीजमें फल देनेकी शक्ति है। परन्तु यदि उसे बोया न जावे तब सन्तति ही उसकी न रहे। इसी तरह रागद्वेषमें संसार फल देनेकी सामर्थ्य है। यदि उनमें रागादिक न किये जावें तब उनमें फिर यह संसार फल जननेकी सामर्थ्य नहीं रहती।

आज पद्मपुराणमें भरतजीका चरित्र पढ़कर कुछ उदासीनता आई और उस कालमें यही मनमें आई जो अब चाँदीके वर्तन नहीं रखना सो एक कटोराको छोड़ शेष वर्तन भेजता हूँ और इस प्रवृत्तिसे आप खेद न करना। मैं तो आपको उपकारी समझता हूँ। एक यह अवश्य कहूँगा जब कभी अपना दानपत्र लिखो,

उसमें यह अवश्य लिखना, जो कुछ आय हो, मेरे बाद विद्या-दानमें जावे। आधा छात्रोंमें और आधा स्त्रीसमाजके पढ़नेमें ही उसका उपयोग हो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३--३६]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पर्यायकी सफलता अन्तरङ्ग यथार्थ आचरणसे है। बहिरङ्ग वहीं तक उपयोगिनी है जो आत्मनिर्मलतामें साधक है। सन्त समागमकी महिमा यही है जो जिज्ञासुको साधुचारित्री बना देवे। पर पदार्थके समागमसे कभी भी सुख न हुआ न होगा। यदि ऐसा होता तब इसे छोड़नेका कौन प्रयास करता? अन्तमें आपकी शरण ही संसारके दुःखका अभाव करेगी। निरन्तर अपने पुरुषार्थको सम्हालो। वही तो काम आवेगा। विचार कर देखा रोगीको वैद्य औषधि देता है परन्तु औषधि पचानेकी शक्ति रोगीमें ही है। अतः अपने रोगको दूर करनेवाला स्वयं आप ही है। इससे सब विकल्पोंको छोड़, केवल जो आत्मगुण प्राप्त है, उसकी रक्षा पूर्वक वृद्धि करना। वृद्धिके उपादान आप ही हैं। अतः उसे ही सफल बनानेका प्रयास करना। मेरी तो यहाँ तक श्रद्धा है जो इस कालमें भी जीव संसारबन्धनकी जड़को शिथिल कर सकता है और इसके अर्थ उसे किसीकी भी आवश्यकता नहीं; केवल अपने पौरुषकी ओर ध्यान देना है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[३–३७]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

... वही जीव ससारमे सुखी हो सकता है जिसके पवित्र हृदय मे कषायकी वासना न रहे, जिसका व्यवहार आभ्यन्तरकी निर्मलताके अर्थ होता है। जहाँ पर वाह्य व्यवहार और उनके कारणों पर ही लक्ष्य है, वहाँ पर क्लेशके सिवाय कुछ आत्मलाभ नहीं। अतः सार विना जो मान होगा वह थोथा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र मैंने एक दिया था पहुँचा होगा। मैं तो जिस दिनसे श्री परमपावन गिरिराजसे इस ससारसागरकी ओर प्रस्थान किया, निर्मलभावोकी होली हो गई। भाग्यकी प्रवलता के सामने अच्छे-अच्छे मनुष्योंके मन कम्पायमान हो जाते हैं। जिस प्रवल-वायुके सामने वड़े-वड़े गजराजोंके पैर उखड़ जाते हैं वहाँ शशकगण्की क्या गणना है। हम लोग अल्पशक्तिवाले हैं। प्रत्येक मनुष्यके वहकायेमे आ जाते हैं। ससारवन्धनका उच्छेदन करना दुर्वल प्रकृतिवालेसे नहीं होता। अनादिसे जिन्हे आत्मीय समझ रहे हैं, उन्हे अनात्मीय समझना सरल प्रकृतिवालेसे नहीं हो सकता। सरल प्रकृतिसे सम्बन्ध मूढ़बुद्धिका है। जो मूढवुद्धि हैं वे अनायास मोहित हो जाते हैं। शरीर पर पुद्गलका पिण्ड है। इसके साथ चेतनका अनादि

कालसे सम्बन्ध है, उसे निज मान लेता है और अहर्निश उसकी पोषण सामग्रीको एकत्रित करता रहता है। शरीरमे निजत्व होने से ही ये मेरे पिता हैं, ये माता हैं तथा अन्य कल्पनाएँ होती हैं। जब स्त्री-पुत्रादिका संयोग और वियोग होता है तब इसे हर्ष और विषाद होता है। इसका कारण केवल निजत्व-बुद्धि है। जब हमारे स्त्री-पुत्रादिका संयोग होता है तब हर्ष होता है और यदि अन्यके होता है तब नहीं होता। तथा हमारे स्त्री पुत्रादिका वियोग होता है उस समय हम दुःखी होते हैं। अन्यके स्त्री-पुत्रादि-वियोगमे दुःखी नहीं होते। इसका मूल कारण यही है जो हमारा निजमे ममताभाव है। उनमें 'यह हमारे हैं' यह बुद्धि होती है, सुखादिमे कारण हैं। पुत्रादिसे मेरा तात्पर्य है, जब हमे सत्समागमका लाभ होता है तब उनमे वही निजत्वकी कल्पना कर लौकिक सुख-दुःख तक ही अपना लक्ष्य बना लेते हैं। अन्य यावान् पदार्थ हैं वे सभी चाहे लौकिक हैं, चाहे लौकिकातीत हैं उनमे जो निजत्व बुद्धि है, विषका बीज वही है। अतः जहाँ तक प्रयास हो, भेदज्ञान द्वारा यथार्थ दृष्टिकी ओर लक्ष्य देना ही जीवकी प्रवृत्ति होनी चाहिए। आपका लक्ष्य आपमे ही है, अन्यत्र नहीं। यहाँ पर श्री चम्पालालजी, मोतीलालजी, नोनूलालजी आदि आए है। पूर्ण विचार वहाँ आनेका कर लिया है, परन्तु लोगोंका आग्रह बहुत ही बाधक है। वास्तवमे न तो कोई बाधक है और न साधक है। हम स्वयं इतने दुर्बल हैं जो परको दोष देते हैं। अभी तक तो पूर्ण विचार है, परन्तु दिवसोका विलम्ब है। बाबू रामस्वरूपजी बहुत ही आग्रह करते है। उनका कहना है, फाल्गुनमे हमारे सिद्धचक्रका उत्सव कराके चले जावो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—३६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मैं चतुर्मास मुरारमें ही करूँगा। उदयकी बलवत्ता है। अन्तरङ्गकी भावना निरन्तर श्री पार्श्व-प्रभुके पादमूलमें समाधिमरणकी है; क्योंकि निर्मल परिणाम श्री सम्मेदाचलके पादतलमें अनायास रहते हैं। वे अन्यत्र प्रयास करने पर भी नहीं होते। परन्तु किया क्या जावे? मैं बलात्कार मोहके चक्रमें आ गया। संसारमें सबसे बड़ा व्यामोह कर्तृत्व बुद्धिका है। इससे मुक्त होना सामान्य मनुष्योंका परम दुर्लभ है। अज्ञानावस्थामें या तो परका कर्ता बनता है या परको अपनासा मान लेता है। जितनी भी चरणानुयोग द्वारा व्रतक्रिया कही गई हैं, यह जीव उनका कर्ता बनता है। कर्ता बनना ही श्रद्धामें कलङ्क है। कलङ्क क्या ऐसे अभिप्रायमें श्रद्धान ही नहीं होता। जितनी शुभोपयोगसे क्रिया होती है, औदयिकी है। यह उसे आत्माकी स्वभावपरिणति मानता है और उसी क्रियाको मोक्षका कारण समझ रहा है। इसीसे इसका जो श्रद्धान है वह मिथ्या है। श्रद्धानके मिथ्या होनेसे इसके जितने प्रयास हैं वे सर्व संसारके वर्द्धक हैं। ये सर्व व्यापार सम्यग्दृष्टिके भी होते हैं। परन्तु वह इन्हें कर्मकृत मान, उनमें मग्न नहीं होता। अतः वे सर्व व्यापार होते हुये भी, अनन्त संसारके बन्धनसे विमुक्त रहते हैं। वे सर्व व्यापार अल्प बन्धके कारण होकर कालान्तरमें अपने उदयके कालमें वह फल देनेमें समर्थ नहीं होते जैसा फल मिथ्यादृष्टिको देनेमें समर्थ होते हैं। परन्तु खेद इस बातका है जो यह आत्मा आगमसे जानकर भी अन्तरङ्गकी ग्रन्थि भेद नहीं करता। बाह्य पदार्थोंको

अपना कर मिथ्यादृष्टि परिणामोंके द्वारा अनन्त संसारका पात्र बन रहा है। एक स्थूल बातको लीजिए—किसीने १०००) का दान किया। वह कहता है, अमुक सस्थाको मैने एक हजारका दान किया। रुपये भी गये और कर्त्ता भी बना तथा श्रद्धा भी गई; क्योंकि जिसको कहता है मैंने दान किया, पहिले तो उस पर वस्तुमे अपनी कल्पना किया, यही मिथ्या-श्रद्धा हुई। दान दिया ये कर्तृत्व बुद्धि हुई। इसमे लाभ क्या हुआ अनन्तसंसार ही तो हुआ और जो स्वभावकी परिणति है उसका स्पर्श भी नही करता। शुभ और अशुभ परिणामसे रहित जो भाव है वही भाव निर्विकल्प है। वही मोक्षका मार्ग है। न वहां योगके द्वारा चञ्चलता है और न कषायकी कलुषता है। अतः जिन्हे आत्म-कल्याण करना है वे इन उपद्रवोसे अपनी परिणतिको रक्षित रक्खें। यह लक्ष्य रखना हमे उचित है।

श्रावण सुदि १०, स० २००५ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—४०]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीवाईजी, योग्य इच्छाकार

आपने जो व्रत किया सो प्रशस्त कार्य ही किया। ससारमे जो जीव परपरिणतिको त्यागना चाहते है, यही पद्धति है। परके सम्बन्धसे ही तो यह जीव अनादिसे नाना प्रकारके दुःखोंका पात्र हो रहा है। अतः परका सम्पर्क छोड़ना ही कल्याणका पथ है। बात बहुत करनेमे आती है; परन्तु उपयोगकी चेष्टा शतांश की नही। गिरिराजके सानिध्यमें जो रहकर आत्महित करते है वे ही प्रशसनीय हैं। व्रतादि करनेका ही यह तात्पर्य

है जो परसे सम्पर्क छूटे। मैं तो यह मानता हूँ जो ज्ञानी जीवकी जो भी क्रिया है, निवृत्तिकी मुख्यतासे है। सम्यग्दर्शनके वाद कर्तृत्वभाव नहीं रहता। अर्थात् आत्माकी जो कर्तृत्व बुद्धि है वह नहीं रहती। चाहे शुभ क्रिया हो, चाहे अशुभ क्रिया हो, श्रद्धाके होनेपर अभिप्रायकी निर्मलता हो जाती है। इसके अनन्तर जो भी चेष्टा योगोकी कषाय द्वारा होती है, आगामी अनन्त संसारके बन्धका कारण नहीं होती। विशेष क्या लिखें—परपदार्थको देखो जानो। उसमें राग-द्वेष न करो।

माघ वदि ४, सं० २००५ }   आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-४१]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। शान्तिसे विचार किया। बाईजी! मैं न तो इन विकल्पोंमें पड़ता हूँ और न पड़नेकी चेष्टा करता हूँ। किन्तु अवसर आने पर कुछ वाक्य निकल जाते हैं। लोग उसमें मनमाना अभिप्राय निकालते हैं। अस्तु, मैं यह नहीं चाहता जो मेरे निमित्तसे किसीको क्षोभ हो। मैं क्या लिखूँ—७५ वर्ष आयुके व्यतीत हो गये। केवल पर चिन्तामें काल गया। यह किसीका दोष नहीं, आत्मीय-परिणतिकी कलुषता ही इसका मुख्य हेतु है। ईसरीमें शान्तिसे काल जाता था किन्तु मोहोदयकी बलवत्ताने उस स्थानसे ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जो जहाँ पर निमित्तकारण विशेष रूपसे मोहमें सहायक पड़ते हैं। इसमें भी मेरी दुर्बलता है। यद्यपि यह निश्चय है, कोई बलात्कारसे कुछ भी नहीं कर सकता।

यहाँ यह निश्चय कर लिया था जो सीधा गिरिराज जाना। परन्तु श्री कृष्णाबाई आगरासे चार बार आयीं और श्री महावीर जीके लिये आग्रह कर रही हैं। ८ दिनसे दो बाई पड़ी है। अतः एक बार वहाँ जाना पड़ेगा। वहाँसे निश्चय गिरिराजका है। अब शारीरिकशक्ति प्रतिदिन गिर रही है। यद्यपि आत्मकल्याण ही का उपादान है, परन्तु फिर भी बाह्य द्रव्यादिकी योग्यता अपेक्षित है। निमित्त कारणका सर्वथा लोप नहीं हो सकता। स्त्रीसमाजसे मेरी दर्शनविशुद्धिः। बाईजीका समागम पाकर यदि प्रवृत्तिको निर्मल न बनाया, तब कब बनाओगी? सर्व पुरुष वर्गसे दर्शनविशुद्धि। यहाँ आनेसे लाभ नहीं। मैं श्री महावीरजी जाऊँगा। वहाँसे ठीक मार्ग होगा। एक प्रसन्नताकी बात यह हुई जो श्री साहू शान्तिप्रसादजीने एक लाख रुपया स्याद्वाद विद्यालयको और १० लाख भारतीय ज्ञानपीठको दिया है। अब श्री चम्पालालजीसे कहना—बनारसकी उतनी चिन्ता न करना। वैसे जितनी करो, उतनी अच्छी है। सबसे बड़ी चिन्ता यही है कि वास्तविक सयमी बनो। वहाँ पर यदि श्री चाँदमलजी ब्रह्मचारी हों, इच्छाकार तथा श्री ब्रह्मचारी छोटेलाल जीको इच्छाकार।

आषाढ़ सुदि ७, स० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–४२]

श्रीयुत विदुषी शान्तिमूर्ति धर्मपरायणा, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपका परिणाम सदा निर्मल रहा। उसका फल सर्वदा उत्तम होगा। परिणामकी निर्मलता

संसारके बन्धनोंका उच्छेदन कर देती है। लौकिक कार्य तो कोई वस्तु नहीं। श्री शिखरजीका निवास तो अल्प भव्यों को मिलता है। क्षेत्र भी एक बाह्य-कारण है। यद्यपि आत्मकल्याणका अङ्कुर आत्मा ही से उदित होता है फिर भी बाह्य कारणकी अपेक्षासे ही होता है। कार्यकी उत्पत्ति उपादान-निमित्त सापेक्ष है। गया भी शिखरजीका एक अंग है। अतः वहाँ आनेसे आपके परिणामोंकी विशदताका ह्रास नहीं हो सकता। प्रत्युत आपके निमित्तको पाकर समाजका परिणाम निर्मलताकी ओर ही जाता है। हमारा अभिप्राय तो कुछ और है और होता कुछ अन्य ही है। किससे कहे ? अपने किये कर्मका फल हम ही भोगते हैं। किसीको दोष नहीं। परन्तु श्रद्धा जो थी वही है। हमारा समाजसे यह संदेश कहना जो बन्धुगण ! मनुष्य-जन्मका सार यही है जो आपको जानो। इससे अधिक कुछ नहीं। यही ज्ञान संसार समुद्रसे पार करेगा।

आषाढ़ वदि १४, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–४३]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाई जी, योग्य इच्छाकार

आपका पर्व शान्तिसे होता होगा। शान्तिधर्म अन्यत्र नहीं; परन्तु हम मोही जीव प्रायः निमित्त कारणसे उसे अन्वेषण करते हैं यह हमारी अनादि कालकी परिणति हो गई है। आपकी सामर्थ्यसे सर्वथा वञ्चित रहते हैं। आत्मामें अनन्त सामर्थ्य है ऐसा कहते हैं; परन्तु उसका उपयोग करते नहीं। जो आत्मा अनन्त संसारको कर्त्ता हो वह क्या उसका विध्वंस नहीं कर

सकता। परन्तु हम प्रथम पक्षको तो मानते हैं, किन्तु द्वितीय पक्ष के माननेमे सर्वथा नपुसक बन जाते हैं। संसार कोई भिन्न तो पदार्थ है नहीं। आत्मा ही संसारी सिद्ध उभय पर्यायका कर्त्ता होता है। अतः कहनेका तात्पर्य यह है जो शक्तिका उपयोग संसार सृजनमे हो रहा है उसे संसारध्वंसमे लगाना उचित है। आपके निमित्तसे वहाँकी जैनजनता संसार बन्धनके छेदनेमे उद्यमशील है। इतनी सूचना मेरी दे देना जो इन पर्वदिनोंमें शील व्रत पाले। एक मास ही तो मध्यमें है। भाद्र मास तो धर्मपर्व है ही। २८ दिनकी बात है।

चरणानुयोगका आचरण अध्यात्मका साधक है। हम लोग चरणानुयोगको केवल भोजनादि तक ही सीमित मानते है। सो नहीं, इसका सम्बन्ध साक्षात् आत्मासे है। मेरा तो दृढतम श्रद्धान है जो प्रथमानुयोग भी अध्यात्मरसके स्वाद करानेमे किसी अनुयोगसे पीछे नहीं। चाहे वनमे एक विहारी होकर आत्म-कल्याण करो, चाहे गृहस्थीमे रहकर भी मोक्षमार्ग साधो—तर-तम ही पावोगे। विशेष अन्तर नहीं, मार्गके सन्मुख दोनो हैं। केवल चालमे अन्तर है, अन्य कुछ भी अन्तर नहीं। यद्यपि हमारा इतना शुभोदय प्रबल नहीं जो गिरिराजके पादमूलमे आत्मशुद्धि करते। यह सुयोग नहीं। आप ही भद्र जीवोंको है फिर भी हमारी श्रद्धामे कोई अन्तर नही। मेरा वहाँकी जनतासे धर्मप्रेम कहना। श्री चम्पालालजी आदि सर्वसे धर्मस्नेह कहना।

आषाढ सुदि १०, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

—०:—

ब्र० पण्डिता कृष्णाबाई जी

श्रीमती ब्र० पण्डिता कृष्णाबाईजीका जन्म फाल्गुन वदि १२ वि० सं० १६५७ को पिता रामेश्वरलालजी गर्गके घर माता सीतादेवीके कूखसे फतेपुरमें हुआ था। जाति अग्रवाल है। साधारण शिक्षाके बाद इनका विवाह रामगढ़निवासी सेठ रामनिवासजी गोयल कलकत्तावालोंके साथ हुआ था। किन्तु इनके जीवनमें वैधव्ययोग होनेके कारण वि० सं० १६६९ में इन्हें वैधव्य जीवनका सामना करना पड़ा। इन्हें अपने गार्हस्थिक जीवनमें सन्तानकी प्राप्ति भी नहीं हुई, इसलिए इनका चित्त धीरे-धीरे धर्मके सन्मुख होने लगा।

अपने इस जीवनको सफल बनानेके लिए इन्होंने धर्माराधन और अध्ययन ये दोनों कार्य एक साथ प्रारम्भ किये। माता पिता से उत्तराधिकारमें इन्हें यद्यपि वैष्णव धर्म मिला था फिर भी इनकी रुचि जैनधर्मकी ओर गई। फलस्वरूप इन्होंने पूज्य श्री वर्णीजीके पास द्वितीय प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर लिए और कालान्तरमें श्री १०८ आचार्य वीरसागर महाराजके पास सप्तम प्रतिमाके व्रत धारण किये। धर्मशास्त्रमें इन्होंने बनारसमें शास्त्रीय तक शिक्षा प्राप्त की है।

ये बड़ी उद्योगशील हैं। इन्होंने श्री महावीरजी क्षेत्र पर एक महिलाश्रमकी स्थापना तो की ही है। साथ ही उसके अन्तर्गत एक विशाल जिन मन्दिर भी बनवाया है। ये महिलाओंमें जागृति उत्पन्न करनेके लिए एक महिला पत्र भी निकालती हैं। मन्दिर-निर्माण, वेदीप्रतिष्ठा और औषधालय आदि अनेक उपयोगी कार्योंमें इन्होंने विपुल धनराशि खर्च की है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा है। फलस्वरूप उनके द्वारा इन्हें लिखे गये कुछ पत्र यहां दिये जाते हैं।

[४–१]

श्रीयुत कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

संसारमे शान्तिका सरल मार्ग है तथा स्वाधीन है तथा इसके अन्दर यावती संसारकी आपत्तियां है स्वयमेव उदय नहीं होती। इसका फल उसी समय मिलता है, अतः सर्व विकल्पोको छोड़ इसीके अर्थ अपना जीवन लगा दो। माता पिता भाई बन्धु सर्व अपने २ परिणामोके अनुकूल परिणमते है। अन्य दानादिककी भी कोई चिन्ता न करो, धन वस्तु ही पराई है। पर वस्तुसे कभी लाभ हुआ है क्या ? जो धनसे पुण्य मानते हैं वे वस्तु ही नहीं जानते हैं। पुण्यका कारण आभ्यन्तर मन्द कषाय है, न कि धन। अभी आपके पिताने स्वात्मधर्मकी प्राप्तिका जो मार्ग ग्रहण किया है उसके रङ्गमे यह स्वाधीन शुद्धोपयोगका मार्ग अपना रङ्ग नहीं जमा सकता। शान्तिका मार्ग निवृत्तिमे है। जिनेन्द्रदेवका तो यह उपदेश है, यदि कल्याण अभीष्ट है तब हममे राग छोड़ दो। जहां गीतामे श्रीकृष्ण भगवान्‌का यह उपदेश है निष्काम कार्य करो वहां पर जिनेन्द्रका यह उपदेश है सम्यग्ज्ञानी होनेके बाद कर्तृत्व भाव ही नहीं रहता है। अज्ञानावस्थामे आत्मा कर्ता बनता है विशेष क्या लिखें, यदि कभी दानकी इच्छा हो और अनुकूल धन दो तब ज्ञानदानको छोड़कर किसीके दम्भमे न आना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[४—२]

श्री कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आत्मा वही दुःखसे छूटनेका पात्र है जो पर पदार्थसे सम्बन्ध छोड़ेगा। आप लोगोंकी सहन शक्ति जब शारीरिक इतनी है जो ५ डिगरी ज्वरमें सामायिक करनेका साहस रहता है तब पर पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़नेमें क्या कठिनता है? हम कहे संसार स्वार्थी है तब क्या इसका यह अर्थ है जो हम स्वार्थी नहीं। अतः इन अप्रयोजनीभूत विकल्पोंको छोड़ केवल माध्यस्थभावकी वृद्धि करना, राग द्वेष दुःखदायी हैं ऐसा कहनेसे कुछ भी सार नहीं, कर्ता उसके हम हैं, अतः आत्मा ही आत्माको दुःख देनेवाला है, इसलिये आत्माको निर्मल करनेकी आवश्यकता है। उस निर्मलताके अर्थ किसीकी आवश्यकता नहीं, केवल स्वीय विपरीत मार्गकी गमन पद्धतिको छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। हम क्या करें। जिसका प्रश्न है उसका उत्तर यह है—जिस वस्तु या परिणामको आप दुःखकर समझते हैं उसे छोड़ दें। हमारी तो यही सम्मति है जो आत्माके हितके अर्थ जो भी त्याग करना पड़े करें। वही कहा है—

> आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
> आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥

क्योंकि ससारमे प्राय. प्रवृत्ति भी इसी प्रकारकी है, अतः जो मुमुक्षु हैं उनकी क्या स्वात्महितके अर्थ यदि प्रवृत्ति हो तब इसमें क्या आपत्ति है। संसारमे तो परार्थ घात करके स्वार्थ साधन करते हैं। यहाँ मोक्षमार्गी केवल स्वार्थ साधनामें ही उपयोगकी चेष्टा रखते हैं, अत. निष्कर्ष यह है जो आपका

कल्याण आपसे होगा, इतरका सम्बन्ध बाधक ही है। हम तो वस्तु ही क्या हैं। मेरी तो श्रद्धा है परमेष्ठीका संसर्ग भी साधकतम नहीं। साधकताका निषेध नहीं, तत्त्व तो सरल है पर इसकी व्याख्या इतनी कठिन है जो बहुयत्नसाध्य है, परन्तु श्रद्धालु जीवोंको इसकी प्राप्ति कठिन नहीं। पूर्वधारी भी श्रेणि माड़ते है और अष्ट प्रवचनके जाननेवाले भी वही काम करते हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[४–३]

श्री पूज्य ब्रह्मचारिणी कृष्णादेवीजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जिनके इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगमे धीरता रहती है वही जीव सयमके पात्र हैं। शान्तिका कारण निमित्त कारण नहीं होता। अचेतन पदार्थमें तो निमित्त कारणके व्यापारकी आवश्यकता है परन्तु चेतन पदार्थमें ऐसा नियम नहीं, क्योंकि यहाँपर जिसमे कार्य होता है वह चेतन है। अतः निमित्त कारण मिलने पर यदि वह तद्रूप न परिणमे तब नि मत्त कारण क्या कर सकता है। यही कारण है जो अनन्त वार ग्रैवेयक जाकर भी यह जीव ससारका पात्र रहा, अतः जहाँ तक बने अंतरगकी त्रुटिको निरन्तर अवगत कर पृथक् करनेकी चेष्टा करना। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि निमित्त कारण कुछ नहीं, किन्तु वस्तु विचारनेपर वह अकिञ्चित्कर ही प्रतीत होता है। अतः पुरुषार्थकर अन्तरङ्गकी ऐसी निर्मलता होनी चाहिये जो पर पदार्थों के आभास होनेपर इष्टानिष्ट कल्पना न होने पावे। सर्वथा पराधीन

होकर क्या करे, कोई उत्तम निमित्त नहीं यह सर्व व्यापार अज्ञानी मोही जीवोंका है। ज्ञानी वीतरागी जीव व्याघ्री द्वारा विदारित होनेपर भी केवलज्ञानके पात्र हुए। आजकल पञ्चम काल है तब इससे क्या हानि हुई। अब भी भद्र जीव चाहें तब वास्तविक मोक्षमार्गका प्रथम सोपान सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर सकते हैं। आप तो देशसंयमकी निराबाध सिद्धिके अर्थ प्राणपन से चेष्टा कर रही हो तब अब आकुलता करनेसे क्या लाभ? कहीं रहो परन्तु जहाँ शरीर निरोग और आत्मनिर्मलता हो इसपर अवश्य ध्यान रखना। मैंने तो पहिले ही कहा था कि तुमको सबसे अच्छा स्थान बनारस है। एक बार सानन्दसे भोजन करो और स्वाध्याय करो। ज्ञानार्जनका फल केवल अज्ञाननिवृत्ति ही नहीं किन्तु उपेक्षा है। विशेष क्या लिखें? हमारा दृढ़ निश्चय है—जिस कालमें जो होना है होगा, अधीरता करनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने आज तक आपसे नहीं कहा कि अमुक स्थानपर द्रव्य दो और न कहूँगा परन्तु सिद्धान्तके अनुकूल ज्ञानार्जनके आयतनमें द्रव्यका सदुपयोग होता है।..........।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

श्री भगिनी महादेवी जी

श्रीमती भगिनी महादेवीजीका जन्म ज्येष्ठ कृष्णा ५ वि० सं० १९५१ को काजीपुरमें हुआ है। पिताका नाम श्री सन्तलालजी और माताका नाम श्री सजनीदेवी था। जाति अग्रवाल है। माता-पिताके घर साधारण शिक्षाके बाद इनका १२ वर्षकी अवस्थामें खतौलीनिवासी लाला अनूपसिंह जी जैन रईसके साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया गया था। किन्तु विधिकी विडम्बनावश २१ वर्षकी अवस्थामें ही इन्हें वैधव्य जीवनका सामना करनेके लिए विवश होना पड़ा। प्रारम्भसे ही ये धार्मिक कार्योंमें विशेष उत्साह दिखलाती रही हैं, इसलिए इस महान् सङ्कटके उपस्थित होने पर भी ये विचलित नहीं हुईं और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर दूने उत्साहसे आत्मकार्यमें जुट गईं।

स्वाध्याय, व्रताराधन, अध्ययन, अतिथि सत्कार और साधु-सेवा यही इनके जीवनके मुख्य कार्य हैं। ये स्वभावसे दयालु और उदार हैं। अनेक लोकोपकारी कार्योंमें इन्होंने सहायता की है। इनके सम्बन्धमें सङ्क्षेपमें इतना कहना ही पर्याप्त है कि उस प्रान्तमें ये आदर्श महिला-रत्न हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य भक्ति है। फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[५—१]

श्री प्रशममूर्ति धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

इस ससारमे अनन्त भव भ्रमण करते संज्ञी पर्यायकी प्राप्तिका महत्व सामान्य नही। इसे प्राप्त कर आत्महितमें प्रवृत्ति करना ही इसकी सफलता है। "बुद्धेः फलं ह्यात्महितप्रवृत्तिः" इसका अर्थ निश्चयसे बुद्धि पानेका फल यही है कि आत्महितमें प्रवृत्ति करना। अब यहाँ विचार बुद्धिसे परामर्श करनेकी महती आवश्यकता है कि आत्महित क्या है और उसके साधक कौनसे उपाय हैं? यदि इसका निर्णय यथार्थ हो जावे तब अनायास हमारी उसमें प्रवृत्ति हो जावे।

साधारण रूपसे प्राणियोंकी प्रवृत्ति प्रायः दुःख निवारणके लिये ही होती है। यावत् कार्य मनुष्य करता है प्रायः उनका लक्ष्य दुःख न होना ही है। उसके उपाय चाहे विपर्यय क्यों न हों परन्तु लक्ष्य दुःखनिवृत्ति है। अतः इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्माका हित दुःखनिवृत्ति है। अब हमे दुख का स्वरूप जाननेकी परम आवश्यकता है। आत्मामे जो एक प्रकारकी आकुलता उत्पन्न होती है वह हमे अच्छी नहीं लगती, चाहे वह आकुलता उत्तम कार्यकी हो चाहे अनुत्तमकी हो। हम उसे रखना अच्छा नहीं समझते. चाहे वह जीव सम्यग्ज्ञानी हो, चाहे मिथ्याज्ञानी हो, दोनों ही उसे पृथक् करना चाहते हैं। जब इस जीवके तीव्र कषाय उदय होता है तब क्रोध करने-की उद्विग्नता होती है और जब तक उस क्रोध विषयक कार्य नहीं सम्पन्न होता, व्याकुल रहता है। कार्य होते ही वह व्यग्रता

नहीं रहती तब अपनेको सुखी समझता है। इसी प्रकार जब हमारे मन्द कषायोदय होता है उस कालमें हमें धर्मादि शुभोपयोग करनेकी इच्छा होती है। जब वह कार्य निष्पन्न हो जाता है तब जो अन्तरङ्गमें उसे करनेकी इच्छाने आकुलता उत्पन्न कर दी थी वो शांत हो जाती है। इसी प्रकार यावत् कार्य हैं उन सर्वमें मोही जीवकी यही पद्धति है। इससे यह निकर्ष निकला कि सुखी तो जीव आकुलताकी जननी इच्छा के अभावमें होता है, परन्तु जिन जीवोंके मिथ्याज्ञान है वे जीव उस कार्यके सम्पन्न होनेसे सुख मानते हैं। इसी मिथ्या भावको दूर करना ही हितका उपाय और अहितका परिहार है। ऐसा ही पद्मनन्दी महाराजने लिखा है :—

यद्यद्यदेव मनसि स्थितं भवेत्तदेव सहसा परित्यजेत्।
इत्युपाधिपरिहारपूर्णता सा सदा भवति तत्पदं तदा॥

अर्थात् मनमें जो जो विकल्प उत्पन्न होवें वो वो सर्व सहसा ही परित्याग देवे। इस प्रकार जब सब उपाधि जीर्णताको प्राप्त हो जाती है उसी कालमें वह जो निजपद है अनायास हो जाता है। इसका यह तात्पर्य है कि मोहजन्य जो जो विकल्प हैं वे संसारके वर्धक ही हैं। इसी आशयको लेकर श्रीपद्मनन्दी महाराजने कहा है—

बाह्यशास्त्रगहने विहारिणी या मतिर्बहुविकल्पधारिणी।
चित्स्वरूपकुलसद्मनिर्गता सा सती न सदृशी कुयोपिता॥

बुद्धि जो चैतन्यात्मक कुलमहसे निकलकर बाह्य शास्त्ररूपी वनमें बहुत विकल्पोंको धारण करती हुई विहार करती है वह सद्बुद्धि नहीं किन्तु कुलटा स्त्रीके समान व्यभिचारिणी है।

इसका भी तात्पर्य है कि बुद्धि रागादि कलक सहित पर-पदार्थों को विषय करनेमें चतुरा भी है तब भी पण्यङ्गना (वेश्या) सदृश वह हेया है। इसलिये वेटी ! जहाँ तक बने अन्तः शत्रु जीवके रागादिक हैं उन्हींके विजयका उपाय करना। जप, तप, संयम, शीलादि जो कार्य हैं उनका एतावन्मात्र ही प्रयोजन है। यदि इस मुख्य लक्ष्य पर ध्यान न दिया तब भुस का लीपना चीकना न चांदना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

वेटी ! संसारमें शान्ति नहीं सो ठीक है, परन्तु शान्तिका मूल हम लोग ही तो हैं। क्या पुद्गल कर्म शान्तिका बाधक है ? हमारी अज्ञानतासे यह सर्व असत् कल्पना कर यह संसार बना रखा है। वास्तविक तो वस्तु अशान्तिमयी नहीं, औपाधिक परिणामोंने यह सब उपद्रव बना रखा है। अतः जहां तक बने उन औपाधिक भावोंका यथार्थ ज्ञान करना ही मोक्षमार्गकी प्रथम सीढ़ी है। औपाधिक भावोंके त्यागके विना हम सम्यग्दर्शन के पात्र नहीं हो सकते। अत: संसारसे संवेग होना ही श्रेयस्कर है। क्या लिखूँ ? पदार्थ तो इतना सरल है जो एक मिनट तो बहुत, एक सिकेण्डमें अवबोधका विषय हो सकता है, परन्तु उनकी प्रचुरतासे वडसकीथाा आना दुषमें र्थित यवमर्ग है।

आ० शु० चि०
गणेशवर्णी

[५–३]

श्रीयुक्ता देवांजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैंने पत्र बनारसको लिख दिया है। आशा है उत्तर आपके पतेसे पहुँचेगा। यदि २) रु० की जगह ३) रु० दिये जावें तब अच्छा है। मैंने दो रुपयेके लिए लिखा है। बेटी! संसारमें सर्वत्र ही अशान्ति है। धन्य है उन महापुरुषोंको जो इस महती अशान्तिमें शान्तिके पात्र हो जाते हैं। मूल कारण शान्तिका पर पदार्थसे परणति हटावे। हटानेका उपाय उनके न्यून करनेका प्रयास है। जितना अल्प परिग्रही होगा उतना ही सुखी होगा। परिग्रह ही सर्व पापोंका निदान है। इसकी कृशता ही रागादिकके अभावोंमें रामवाण औषधि है। बेटी! जहां तक बने रागादि दोषोंसे ही अपनी रक्षा करना। यह अवसर अति दुर्लभ है। मनुष्यायुकी प्राप्ति, शरीरादिककी निरोगता उत्तरोत्तर दुर्लभ जान सानन्द चित्तसे इन शत्रुओंको विजय कर स्वात्मलाभ करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–४]

श्रीयुक्ता महादेवीजीको दर्शनविशुद्धि

हमारा तो यही कहना है, जिसमें आपको शान्ति मिले और रागादिक उपक्षीण हों वही कर्त्तव्य है। इसकी ओर दृष्टि देना ही इस जीवनका लक्ष्य है। तुम्हारी प्रवृत्ति उत्तम है। हमारा तो ध्येय यही है, इसीसे हमने सर्व प्रकारकी सवारी छोड़ी है। आप जहां तक बने बाबाजीकी पर्याय तक वहीं रहनेकी चेष्टा करना, क्योंकि आपके द्वारा जो वैयावृत्त होगी वह अन्यत्र न होगी।

धर्मके मूल आशयको जाने विना धार्मिक भाव व धर्मात्मामें अनुराग नहीं हो सकता। हमको एक शल्य थी वह भी निवृत्त हो गई, अर्थात् बाईजीकी ननद वह भी परलोक पधार गई। अब तो कुटुम्बी कहो चाहे पिता कहो बाबाजी महाराज हैं। मैंने शिखरजी जानेका निश्चय कर लिया, नहीं तो वहां आता। अब देखें कब बाबाजीसे मिलाप होगा? दादाजीसे दर्शनविशुद्धि।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[५—५]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अपनी मां तथा भावी व भाईसे धर्मस्नेहपूर्वक दर्शनविशुद्धि। बुद्धेः फलं ह्यात्महितप्रवृत्तिः। बुद्धि पानेका यही फल है जो आत्महितमें प्रवृत्ति करना। आत्महित क्या है? वास्तव दृष्टिसे विचारा जावे तब दुःखनिवृत्ति ही है। यावत् जगत है, इसीके अर्थ चेष्टा करता है। दुःख पदार्थ क्या है? इस पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो यही निष्कर्ष अन्तमें निकलेगा, आवश्यकताओंकी माला। ज्ञानकी आवश्यकता क्यों होती है? हम अज्ञानसे नाना प्रकारकी यातनाओंके पात्र होते हैं। ज्ञान होने पर वे यातनाएं जो अज्ञान अवस्थामें हमें बाधा दे रही थीं अब नहीं देतीं। हम अर्हद्भक्ति किस अर्थ करते हैं? हमारी रागादिक परणति ऐसे पदार्थोंमें न जावे जो हमें मोक्षमार्गसे च्युत कर देवे तथा तीव्र रागद्वेषकी ज्वाला हमें दग्ध न कर देवे, एतज्जन्य दुःखकी निवृत्तिके अर्थ ही हमारा प्रयास है। हम जो दान देते हैं उसका तात्पर्य यही है जो हम लोग कषायसे दुःखी न होवें। हम चारित्रको

अंगीकार करनेका जो प्रयास करते हैं उसका भी मूल तात्पर्य यही है, जो हम रागद्वेपकी कलुषतासे क्लेशित न हों। लौकिक कामोंमे देखो हम भोजन इस अर्थ करते हैं जो क्षुधाजन्य पीड़ा शान्त हो। जब हमे कषायें पीड़ा उपजाती हैं तब अपना अकल्याण करके भी उस कषायकी पूर्ति करते हैं। यद्यपि विचार से देखे तव सुखका मूल उस कषायकी हीनता है, परन्तु हमे इस प्रकारका मिथ्याज्ञान है जो हम कषायमे सुख मानते हैं, क्योंकि सुख तो कषायके अभावमे है। जैसे देवदत्तको यह कषाय उपजी जो यज्ञदत्त हमे नमस्कार करे। जबतक वह नमस्कार नहीं करता तब तक देवदत्तको अन्तरङ्गमें दुःख रहता है। एक बार यज्ञदत्तने उसे दुखी देख अपनी हठ छोड़ देवदत्तको नमस्कार कर लिया, इस पर देवदत्त कहता है मेरी बात रह गई। और देख, अव मैं उस कपायके होनेसे सुखी हो गया। इस पर यज्ञदत्त कहता है कि तुम भ्रममे हो तुम्हारी वात भी गई और कषाय भी गई। इसीसे तुम सुखी हो गये। जब तुम्हे इच्छा थी कि नमस्कार करे और मै नही करता था तब तुम दु:खी थे। मेरी हठ थी कि मैं इसे क्यों नमू ? सो मैं भी दुःखी था। अब मेरी हठ मिटी तब मैने नमस्कार किया। उससे जो तुम्हारी इच्छा थी कि यह मुझे नमस्कार करे, दुःख दे रही थी मिट गई। अतः तुम इच्छाके अभावमे सुखी हुए। मैं भी हठके जानेसे सुखी हुआ। अतः ऐसा सिद्धान्त हैं कि अभिलाषाका जाल ही दुःखका मूल कारण है, तब निष्कर्ष यह निकला सुख चाहते हो तब इच्छाओंको न्यून करो यही सदेश आत्माका है। अब वैशाख सुदि १५ तक पत्र न दूंगा।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[५—६]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जिस जीवकी आयु एक कोटि पूर्वकी है। और उसे आठ वर्ष वाद केवली या श्रुतकेवलीके निकट चायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई।

> पटमुवसमिये सम्मत्ते सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
> तित्थयरवंधपारंभया णरा केवलिदुगंते॥

इस गाथाके अनुकूल उसने तीर्थंकर प्रकृतिका वंध प्रारम्भ कर दिया। आठवें अपूर्वकरण तक वरावर वन्ध होता रहा। अन्तमें उपशमश्रेणी मांड़कर ग्यारहवें गुणस्थानमें आयु पूर्ण होकर ३३ सागर सर्वार्थसिद्धिमें आयु पायी। वहां भी वरावर वन्ध होता रहा। वहांके वाद फिर यह कोटिपूर्वका आयुवाला मनुष्य हुआ। वहां भी अपूर्वकरण तक यह प्रकृति वंधती रही। वादमें लोभ नाशकर क्षीणमोह अन्तर्मुहूर्त वाद केवली हुआ। तेरहवें गुणस्थानका काल पूर्ण कर चतुर्दश गुणस्थानका समय पूर्णकर मोक्ष हुआ। अतः इस कालकी विवक्षा न की और न पूर्व अपूर्वकरणके वाद कालकी विवक्षा की। सागरोंके सामने यह कोई काल नहीं। तारतम्यसे विचारा जाय तो यह अन्तर अवश्य है। तीर्थंकर प्रकृतिवाला यदि पंच कल्याणधारी होनेवाला है तव तो इस जन्मसे २ जन्म धारण कर मोक्ष जावेगा और जो २ कल्याणक व ३ कल्याणधारी होते हैं वे उसी भवसे मोक्ष जाते हैं। यदि सम्यक्त्वके पहिले नरकायुका वंध कर लिया तव तीसरे नरक तक जा सकता है। तीर्थंकर प्रकृतिके वंध होनेके वाद आयुवन्ध होवे तव नियमसे देवायु ही का वंध होवे।

जो दयाभाव विपरीत अभिप्रायसे होवे तव तो नियमसे दर्शन मोहके चिन्ह है। सामान्य मोहके उदयमे करुणाभाव मिथ्यादृष्टियोके भी होता है और सम्यग्दृष्टियोंके भी होता है। सम्यग्दृष्टिके तो पचास्तिकायमे लिखा है—जब उपरितन गुणस्थानमे चढ़नेकी अशक्यकता है तब अपने उपयोगको इन कार्यो मे लगा देता है। मिथ्यादृष्टि अहम् बुद्धिसे कार्य करता है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तब करुणाभाव चारित्रादिके उदयसे ही होता है। किन्तु जब मिथ्यादर्शन उदय मिलित चारित्रोदय होता है तब दर्शनमोहके उदयका कह दिया जाता है। इसी तरह से वैरभाव या मित्रभाव सब चारित्रमोहके उदयमे होते हैं। परन्तु मिथ्यात्व आदिमे सब मिथ्यादर्शनके सहचारी कह दिये जाते हैं। वैरभाव द्वेषसे होता है, अतः पञ्चाध्यायीमे कह दिया गया है जो मिथ्यात्वके विना यह नहीं होता। किसीको वैरी मानना जैसे मिथ्यात्वका अनुभावक है वैसे किसीको मित्र मानना भी मिथ्यात्वका अनुभावक है। अतः दर्शनमोहके उदयमे न करुणाभाव होता है न वैरभाव। ये दोनो भाव चारित्रमोहके उदयसे ही होते हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–७]

श्रीयुक्ता प्रशममूर्ति महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मैं आजकल हजारीबाग हूँ और दो या तीन दिनमें ईसरी जाऊँगा। बाबाजीको जहाँ तक बने वहीं रखनेकी चेष्टा करना। अब उनका शरीर प्रायः बहुत

ही शिथिल हो गया है। शिथिलतामें वैय्यावृत्तकी बड़ी आवश्यकता है। अन्तरङ्ग निर्मलताके अर्थ बाह्य कारणोंकी महती आवश्यकता है तथा योग्य भोजनादिक भी धर्मके साधनमे निमित्त होते हैं। अन्यत्र यह सुभीता नहीं। धार्मिकभावका होना कठिन है। जिसके तत्त्वज्ञान होता है वही धर्मकी रक्षा कर सकता है। मुझे विश्वास है कि बाबाजी हमारी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। शान्तिका अन्तरङ्ग कारण जहाँ प्रबल होता है वहाँ बाह्य कारण बाधक नहीं होते। जहाँ यह जीव स्वयं ढीला होता है वहाँ निमित्तोंपर दोषारोपण करता है। बाबाजी स्वयं विज्ञ है। वे निमित्त कारणोंसे शान्तिकी रक्षा करेंगे। फिर भी खतौलीमे उत्तम निमित्त हैं जो उनके धर्म-साधनमें बाधक नहीं होंगे। मेरी निरन्तर भावना उनके सहवासकी रहती है परन्तु कारणकूट नहीं। यह भी उन्हींके सहवासका फल है जो मैं एक स्थानमे रह गया। चित्तकी भ्रांतिसे कोई लाभ नहीं दीखता। लाभका आश्रय स्वयं है। कषायकी उपशमताका प्रयास तो करता नहीं। कठिन २ कहकर इसको इतना गहन बना दिया है जो लोग भयभीत हो जाते हैं। आभ्यन्तर कषायको जिसने जान लिया है वह इसे चाहे तो दूर भी कर सकता है। पुरुषार्थके समक्ष कर्म कोई वस्तु नहीं, क्योंकि हम संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हैं। यदि इस उत्तमताको पाकर हमने कायरताका आश्रय लिया तब हमारी बुद्धिका क्या उपयोग हुआ? केवल पर वंचनाके लिये ही यह जन्म गमाया। अतः जहाँतक बने इन कषायोंसे न दबना, इन्हे दबाना। इनका दबाना यही है— ज्ञाता दृष्टा रहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—८]

श्री महादेवीजो, योग्य दर्शनविशुद्धि

स्वास्थ्य पूर्ववत् है। अतः विशेषकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता अब अन्तस्तलमे विचार करनेकी है। परकीय पदार्थोंसे परिणतिको पृथक्करण करना ही अन्तस्तत्वकी प्राप्ति है। अनादिकालसे अतथ्य विचारोने ऐसा आत्माको जर्जरित कर दिया है जिससे स्वोन्मुख होनेकी सुध भी नहीं होती, केवल वचन चातुरता छल है। जिस वचनके अनुकूल आंशिक भी स्वकार्य नहीं किया उसका कोई मूल्य नहीं। ज्ञानप्राप्तिका फल ससारके विषयोसे उपेक्षा होना है। अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा ही रहना ज्ञानका फल है। यदि यह नहीं हुआ तब लोभीकी लक्ष्मीके सदृश वह ज्ञान है। केवल मनोरथसे इष्टसिद्धि नहीं होती। मनोरथक अनुरूप सतत प्रयास करना ही उसकी सिद्धिका मुख्य हेतु है। मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं जो पुरुपार्थसे सिद्ध न हो सके। पुरुपार्थसे सन्निकट है। केवल जो परमे परिणति हो रही है उससे विरुद्ध परिणति करना ही पुरुषार्थ है। केवल उपयोगको परसे हटाकर अपने रूपमे लगा देना ही अपना कर्त्तव्य है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—९]

देवी, दर्शनविशुद्धि

महात्माका लक्षण तो श्री बाबाजीमे है। ज्ञानसे आत्मा पूज्य नहीं, पूज्यताका कारण तो उपेक्षा है। श्रीयुत बाबाजीके

प्रायः रागकी बहुत मंदता है तथा साथमें निर्भयता, निर्लोलुपता, जितेन्द्रियता आदि गुणोंके भण्डार हैं। यह कोई प्रशंसाकी बात नहीं, आत्माका यह स्वभाव ही है। हम तो पामर जीव हैं। बाबाजीके समागमसे कुछ सम्मुख हुए हैं। निरन्तर उनके संसर्गकी इच्छा रहती है; परन्तु पुण्योदय बिना संसर्ग होना कठिन है। हाँ, अब निरन्तर स्वाध्यायमें काल यापन करता हूँ। इस कालमें ज्ञानार्जन ही आत्मगुणका पोपक है। यदि ज्ञानके सद्भावमें मोहका उपशमन नहीं हुआ तब उस ज्ञानकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। जीवन बिना शरीरके तुल्य है, हम तो उसीको उत्तम समझते हैं जो संसार दुःखसे भीरु है। यदि बहुत काय-क्लेश कर शरीरको कृश किया और मोहादिको कृश न किया, सब व्यर्थ ही प्रयास किया। अतएव अपने समयको ज्ञानार्जनमें लगाकर मोह कृश करनेका ध्येय रखना ही मानवका कर्तव्य है। श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शनविशुद्धि। जो आपकी प्रवृत्ति है वही संसारसे पार करेगी। भूलकर भी गृहसे उदास होनेकी भावनाको न भूलिये, छोड़ना इस कालमें सुखकर नहीं। क्योंकि पंचम कालमें बाह्य निमित्त उत्तम नहीं। स्वाध्याय ही सर्व कल्याणमें सहायक होगा। स्वास्थ्य अच्छा होने पर एक बार अवश्य आऊँगा। मेरी भावना सत्समागममें निरन्तर रहती है। शेष सर्वसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—१०]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

संसारमें जहाँ तक गम्भीर दृष्टिसे देखा गया शान्तिका

अंश भी नहीं। मैं तू कहकर जन्मका अन्त हो जाता है, परन्तु जिस शान्तिके अर्थ व्रत, अध्ययन, उपवासका परिश्रम उठाया जाता है उस मूल वस्तु पर लक्ष्य नहीं जाता। कह देना कोई कठिन वस्तु नहीं। द्रव्यश्रुत मात्र कार्यकारी नहीं, क्योंकि यह तो पराश्रित है। वही चेष्टा हम जैसे प्राणियोंको रहती है, भावश्रुतकी ओर लक्ष्य नहीं; अतः जलमन्थनसे घृतकी इच्छा रखनेवाले सदृश हमारा प्रयास विफल होता है। अतः कल्याणपथ पर चलनेवाले प्राणियोंको शुद्ध वासना बनाना ही हितकर है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--११]

श्री महादेवी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। तीथयात्रा की यह अच्छा किया, क्योंकि तीर्थक्षेत्रोंमें परिणाम अत्यन्त विशुद्ध होता है। मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन अवनत होता जा रहा है, किन्तु नित्यकर्ममें कोई बाधा नहीं। औषधि अर्हन्नाम और स्वाध्याय है। यदि इस पर्यायको कोई सफल करना चाहता है तब निरन्तर स्वाध्याय और शुभ विचारोंमें उपयोगको लगावे। नाना प्रकारकी कल्पनाओंके जालमें न फसे। दादीजीको दर्शनविशुद्धि। बाईजीका धर्मस्नेह। रुपयोंके बाबत जो लिखा सो ठीक है। आप और बाबाजीकी जो इच्छा हो सो करना। मैं आपकी इच्छामें बाधक नहीं। यहां पर भी अच्छी व्यवस्था है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१२]

श्रीमती सहृदया देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। बाईजका स्वास्थ्य अभी पूर्ववत है। सप्तम गुणस्थानसे जो जीव श्रेणी मांडते हैं वे दो तरहसे मांडते हैं, उपशम तथा क्षयरूपसे। जो चारित्रकी प्रकृतियां उपशम करते हैं उनके औपशमिक भाव और जो क्षय करते हैं उनके क्षायिकभाव होता है। अर्थात् पञ्चम गुणस्थानसे सप्तम गुणस्थान तक जो भाव होते हैं उन्हें क्षायोपशमिक भाव कहते हैं, क्योंकि इन गुणस्थानोंमें चारित्रमोहका क्षयोपशम होता है। ऊपर गुणस्थानोंमें उपशम और क्षयकी मुख्यता है। यद्यपि दशम गुणस्थानमें लोभका उदय है इससे इन भावोंको क्षयोपशमजन्य क्षायोपशमिक ही कहना चाहिये। औपशमिक भाव तो एकादश गुणस्थानमे होता है। क्षायिक भाव द्वादश गुणस्थानमे होता है, किन्तु करणानुयोगवालोंने इसकी विवक्षा नहीं की। तत्त्वार्थसारवालोंने इसकी विवक्षा की। अतः दोनों ही कथन मान्य हैं। जैसे पञ्चाध्यायीकारने चतुर्थ गुणस्थानवालोंमें ज्ञानचेतना ही का विधान किया है, पचास्तिकायवालोंने तेरहवें गुणस्थानमें ज्ञान चेतना स्वीकार की है परन्तु विरोध नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवके स्वामित्वपना नहीं, यह तो पचाध्यायीवालोंका मत है। स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने क्षायोपशमिक भावमे कर्म निमित्त होनेसे स्वीकार नहीं किया। वास्तवमें दोनो ही कथन विवक्षाधीन होनेसे सत्य हैं। स्वाध्याय ही इस क्षेत्र व कालमें अनुपम सुखका हेतु है। अतः ज्ञानकी वृद्धिका कारण शरीरकी रक्षा ज्ञानके व संयमके लिये है। यदि इनमें बाधा आगई तब होगा ही क्या, ऐसा विचार, इनके अनुकूल साधन रखना। हमने १२ मास एक स्थानमें रहनेकी प्रतिज्ञा की है और वह श्री पार्श्वप्रभुके निर्वाण-

क्षेत्रके अत्यन्त निकट पार्श्वनाथ स्टेशन जिसको ईसरी कहते हैं। जहांका जल-वायु अति उत्तम है। बाईजीका स्वास्थ्य उत्तम होते ही प्रस्थान करूंगा। पर्यायका विश्वास नहीं। कुछ दिन तो शान्तिसे जावें। यद्यपि यह प्रान्त जहां पर श्रीबाबाजीका निवास है, उत्तम है। परन्तु जनसंसर्ग बाधक है। अपरिचित स्थानमे बाह्य कारणोंकी न्यूनता रहती है। यद्यपि अध्यवसानभाव बन्धक है तथापि उनमे निमित्त जो बाह्य वस्तु हैं वे भी अल्पशक्तिवालोंको त्याज्य हैं। अल्पशक्तिसे तात्पर्य चारित्रमोहका जिनके सद्भाव है। तीर्थङ्कर महाराज भी बाह्य पदार्थोंको हेय जानकर तथा रागादिकके उत्पादक जानकर त्याग देते हैं। इसमे अणु मात्र भी सशय नहीं। कर्मोदयमे भी तो वाह्य वस्तु निमित्त पड़ती है। अभी समय नहीं था, इसलिये विशेष नहीं लिख सका। शेष सर्व मण्डलीसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–१३]

श्रीयुक्ता धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। जगतमे अनन्तानन्त जीव राशि है। उसमे मनुष्य संख्या बहुत अल्प है। किन्तु यह अल्प होकर भी सब पर्यायोंमे मुख्य है। इसी पर्यायसे जीव निज शक्तिके विकाशका लाभ लेकर अनादि ससारके बन्धनजन्य मार्मिकभेदी दु.खोका समूल नाशकर अनन्त सुखोंके आधार परमपदकी प्राप्ति करता है। संयम गुणकी पूर्णता इसी पर्यायमे होती है जो कि उक्त परमपदका हेतु है। अतएव जहां तक बने उसी गुणकी रक्षाके अविरुद्ध कार्योंको कर अपनी जीवनयात्रा निर्वाह करते

हुए निराकुलता पूर्वक इस पर्यायको प्रतिक्षण यापन करना चाहिये। इसीके रक्षण हेतु स्वाध्याय, यजन, पूजन, दानादि क्रियायें हैं। उक्त गुणके रक्षण विना, एक अंक विना शून्य मालाकी कुछ गौरवता नहीं। इसके सहित जीवनका व्यय कुछ नहीं। इसके अभावमे कोटि पूर्वकी आयुकी प्राप्ति दृष्टिके विना वदनकी शोभा-के सदृश है। अतएव हे पुत्री! सतत ज्ञानाभ्यासमे काल यापन करो। इसीमे आपका कल्याण है। शेष यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१४]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम श्रीजिनवरके दर्शनके सन्मुख होगये हैं। आज २ दिन हैं। जिस दिन दर्शन होंगे उस दिनको धन्य समझेंगे। आत्मज्ञान शून्य सब प्रकारके व्यापार ऐसे निष्फल हैं जिस प्रकार नेत्रहीन सुन्दर मुख। यदि हम मानव गण वास्तव तत्त्व पर दृष्टिपात करें तब अनायास ही कल्याण-पथ मिल सकता है। यहाँ तो यह मिशाल है। घड़ी डूबती है घण्टा पीटा जाता है। ऐसे ही अपराधी आत्मा है। कायको दण्ड दिया जाता है। शान्ति स्वकीय आभ्यन्तरमे है। तीर्थोंमें डोलने फिरनेसे नहीं। पर पदार्थोंको निज तत्त्व मानकर यह सब जगत आपत्तिजालसे वेष्टित हो रहा है। अत. अब जहाँतक बने इस बाह्य दृष्टिको त्यागना ही श्रेयोमार्गकी ओर जाना है। जो कार्य किया जावे उसमें हर्ष-विषादकी मात्रा न हो। यही मात्रा संसारकी श्रेणी है। अतः इस विषयमे सर्वदा सतर्क रहना ही हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। दादीजीसे हमारी दर्शन-

विशुद्धि कहना तथा अब तो सच्ची दृष्टिसे ही काम लो और सब जाल है। यह भी कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—१५]

श्री महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं बरुआसागरसे खजराहाकी वन्दना कर पन्ना आ गया। खजराहामे अपूर्व जिन मन्दिर और प्रतिमाएँ हैं। परन्तु भग्न बहुत हैं। इतनी सुन्दर मूर्तिएँ हैं जो देख कर वीतरागताकी स्मृति होती है। शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपूर्व है। अस्तु विशेष क्या लिखें ? रागादिकोंके सद्भावमे यह सब दृष्टिपथ हो रहा है, सत्य ही है। जो कुछ ससारमे दृश्य पदार्थ है वे सब नश्वर हैं। किन्तु कल्याणपथवालेको यह सत्यता प्रतीत होती है। यदि हमको स्वात्मकल्याण करना है तब इन सब उपद्रवोंको पृथक् कर केवल जिस उपायसे बने बुद्धिपूर्वक इन रागादिकोंको निर्मूल करने की चेष्टा करना। स्वकीय कर्तव्यपथमे आना चाहिये। केवल बाह्य त्यागकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। ज्ञानकी भी महिमा रागादिकोंके अभावमे है। यों तो सभी ज्ञानी और त्यागी हैं किन्तु सत्यमार्गके अनुयायी, हार्दिक स्नेही बहुत ही अल्प हैं। यहाँ भी एक कषायकी प्रबलता है। क्या करें ? कौन नहीं चाहता कि हम ज्ञानी हों परन्तु महिमा उस मोहकी अपरम्पार है। अस्तु इन बातोंमें क्या सार है ? सब यत्न इसी रागादि मलके पृथक् करनेमें लगाना चाहिये। विशेष विकल्पोंमें कभी भी आत्माको उलझाना न चाहिये। जितना प्रयास हो सके शान्ति-पूर्वक समय बिताना ही हितमार्गका प्रथम सोपान है। जिस

कार्यके सम्पादन करनेमे आभ्यन्तर क्लेश न हो वही रामबाण औषधि संसार रोगकी है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१६]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम पत्र दे चुके हैं। यह पत्र इस अर्थ देता हूँ। अब वैशाख वदि ९ को पत्र दूंगा। इस मनुष्यपर्यायकी प्राप्ति दुर्लभ जान समयका दुरुपयोग न करना; क्योंकि समयके सदुपयोगसे ही समयकी प्राप्ति होती है। आजतक इस जीवने स्वसमयकी प्राप्तिके लिये परसमयका आलम्बन लेकर ही प्रयत्न किया। प्रयत्न वह सफलीभूत होता है जो यथार्थ हो। आत्मतत्त्वकी यथार्थता इसीमें है कि जो उसमे नैमित्तिक भाव होते हैं उन्हे सर्वथा निज न मान लें। जैसे मोहज भाव रागादिक हैं वे आत्मा ही के अस्तित्वमे होते हैं परन्तु विकार्य हैं, अतः त्याज्य हैं। जैसे जल अग्निका निमित्त प्राप्तकर उष्ण होता है और वर्तमानमे उष्ण ही है, अतः उष्णता त्याज्य ही है, क्योंकि उसके स्वरूपकी विघातक है, तथा रागादिक परिणाम आत्माके चारित्र गुणका ही विकार परिणमन हैं परन्तु आत्माका जो द्रष्टा ज्ञाता स्वरूप है उसके घातक हैं, अतः त्याज्य हैं। जिस समय रागादिक होते हैं उस कालमे ज्ञान केवल जानन क्रिया नहीं करता, साथमे इष्टानिष्टकी भी कल्पना जानन क्रियामे अनुभव करने लगता है। यद्यपि जानन क्रियासे इष्टानिष्ट कल्पना तद्रूपा नहीं हो जाती है फिर भी अज्ञानसे वैसा भासने लगता है। जैसे रस्सीसे सर्पका बोध होनेसे रस्सी सर्प नहीं हो जाती, ज्ञान ही में सर्प

भासता है। परन्तु उस कालमें भयका होना अनिवार्य हो जाता है। जाग्रतकी कथा तो दूर रहो, स्वाप्निक दशामे भी कल्पित पदार्थोंको हम मानकर राग-द्वेषके दशसे नही बच सकते हैं। कुछ नहीं। इसी तरह इस मिथ्या भावके सहकारसे जो हमारी दशा होती है वह कैसी भयानक दुःख करनेवाली है इसका अनुभव हमे प्रतिक्षण होता है। फिर भी तो चेतते नहीं। विशेष फिर।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--१७]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक वने बाबाजीका अन्यत्र जानेसे निषेध करना। वहाँ उनका धर्मध्यान उत्तम होता है तथा साधन भी उत्तम है। जो स्वाध्याय करो, मनन पूर्वक करना। यह एक ऐसा तप है जो स्वात्मोपलब्धिमे विशेष साधक है। इसके द्वारा ही धर्म-ध्यान शुक्लध्यान होते हैं, यह अपूर्व कारण है। दादीजी से धर्मप्रेम कहना। मै एकबार वैसाखमे बाबाजीका दर्शन करूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--१८]

श्रीयुत महाशया देवी महादेवी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। ससारमे जो ज्ञानकी महत्ता है वह मोहके अभावमे है। अतएव उस ज्ञानसे भी जो वास्तविक

पदार्थको प्रतिपादित करता है·उसको श्रवण कर जो श्रोता मोहका अभाव करनेकी चेष्टा करता है वह मोक्षमार्गका पात्र हो सकता है। वक्ताको आंशिक भी इस मार्गका लाभ नहीं हो सकता यदि वह मोहके पृथक् करनेका प्रयत्न न करे। ज्ञान समान अन्य इस आत्माका हित नहीं वह यदि मोहके बिना हो। मोही जीवका ज्ञान बंधका ही कारण है। सर्पको दुग्धपान कराने-से निर्विषता न होगी। मैं आठ दिन बाद गिरिराज पहुँच जाऊँगा। पत्र वहीं देना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—१६]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपके पत्रसे कुछ अशांतिकासा आभास हुआ। बेटी ! संसारमें कभी भी शान्ति नहीं। केवल हमारी दृष्टि बाह्य पदार्थोंमें स्वकी शान्ति परिणति उदयमें है। हम इन बाह्य वस्तुओंके ग्रहणादि व्यापारमें सुख खोज रहे हैं। जो सर्वथा असम्भव है। हमारी अनादि कालसे परिणति मिथ्यादर्शनके संसर्गसे कलुषित हो रही है। जो हमें क्षणमात्र भी आत्मसुखका स्पर्श तक नहीं होने देती। वही महापुरुष और पुण्यशाली जीव है जिसने अनेक प्रकार विरुद्ध कारणोंके समागम होनेपर अपने शुचि चिद्रूपको अशुचितासे रक्षित रखा। आपका ज्ञान विशुद्ध है। अतः सब प्रकारके विकल्प त्यागकर स्वकीय श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके उपायमें ही लगा देना। नेत्रोंकी कमजोरीका मूल कारण शारीरिक शक्तिकी न्यूनता है, अतः धर्मसाधनका नोकर्म शरीरको जान सर्वथा उपेक्षा करना अनुचित है। व्रतादिक करनेका अभिप्राय कषाय

कृश करना है। ऐसी कृशता किस कामकी जो स्वाध्यायादि कार्योंमे बाधक हो। उत्सर्ग और अपवादमे मैत्रीभाव रखनेमे ज्ञानी जीवोकी मूल चेष्टा रहती है। विशेष क्या लिखें? हम तो तुम्हें दाईजीके तुल्य समझते है। अपनी मां और भावीजीसे मेरी दर्शनविशुद्धि कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२०]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका ध्यान निराकुलतापूर्वक होता है। इस प्राणीको मोहोदयमे शान्ति नहीं आती और यह उपाय भी मोहके दूर होनेके नहीं करता। केवल बाह्य कारणोमे निरन्तर शुभोपयोगके संग्रह करनेमे अपने समयका उपयोग कर अपनेको मोक्षमार्गी मान लेता है। जो पदार्थ हैं, चाहे शुद्ध हों, चाहे अशुद्ध हों, उनसे हित और अहितकी कल्पना करना सुसंगत नहीं। कुम्भकार मृत्तिकाद्वारा कलश पर्यायकी उत्पत्तिमे निमित्त होता है। एतावता कलशरूप नहीं हो जाता। यहाँ पर कुम्भकारका जो दृष्टान्त है सो उसमें तो मोह और योग द्वारा आत्माकी परिणति होती है, अतः वह निमित्तकर्ता भी बन सकता है। परन्तु भगवान् अर्हन्त और सिद्ध तो इस प्रकारके भी निमित्त कर्त्ता नहीं। वे तो आकाशादिकी तरह उदासीन हेतु हैं। उचित तो यह है, जितना पुरुषार्थ बने रागादिकके पृथक् करनेमे किया जावे। शुभोपयोग सम्यग्ज्ञानीको इष्ट नही। जब शुभोपयोग इष्ट नहीं अशुभोपयोगकी कथा तो दूर रही।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–२१]

श्रीयुक्ता देवीजी, दर्शनविशुद्धि

पत्र देरसे मिला। इससे समय लिखनेको नहीं मिला, क्योंकि मैं पूर्णिमाको ही विशेष ऊहापोह करके लिखता हूँ। मेरी दृष्टिमें तो यही आता है जो पराधीनताका त्याग ही स्वाधीन सुखका मूल मन्त्र है। पुस्तकसे जो ज्ञान होता है वह यदि अनुभवमें न आवे तब कार्यकारी नहीं। सब प्रमाणोंके ऊपर इसकी बलवत्ता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी यही आज्ञा है जो कुछ भी जाना उसे अनुभवसे प्रमाण करो। जब तक अनुभवमें न आवे तब तक वह पूर्ण नहीं। सर्वसे दर्शनविशुद्धि।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–२२]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

विशेष बात यह है कि शान्तिका उपाय प्रायः प्रत्येक प्राणी चाहता है, परन्तु मोह वशीभूत होकर विरुद्ध उपाय करता है। अतः शान्तिकी शीतल छायाके विरुद्ध रागादिक तापकी उष्णता ही हमें निरन्तर आकुलित बनाए रखती है। इससे बचनेका यही मूल उपाय है जो तात्त्विक शान्तिका कारण अन्यत्र न खोजे। जितने भी पर पदार्थ हैं चाहे अशुद्ध हों, जबतक हमारे उपयोगमें उनसे सुख प्राप्तिकी आशा है, हमको कभी भी सुख नहीं हो सकता। मेरा तो दृढ़ विश्वास है जैसे बाह्य सुखमें रूपादिक विषय नियमरूप कारण नहीं वैसे आभ्यन्तर सुखमें शुद्ध पदार्थ भी नियमरूप हेतु नहीं। जब ऐसी वस्तुकी स्थिति है तब

हमे अपने ही अन्तःस्थलमे अपनी शान्तिको देखकर परपदार्थमें निजत्वका त्याग कर श्रेयोमार्गकी प्राप्तिका मात्र होना चाहिये।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२३]

श्रीयुक्ता कल्याणमार्गरत महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। बाईजीके अन्तःकरणसे आपके प्रति निरन्तर धर्मानुराग रहता है। वड़ी चाहसे आपका पत्र सुनती है। उनका स्वास्थ्य १२ माससे ठीक नहीं। १५ दिन बाद ज्वर आजाता है। परन्तु धर्ममे प्रति दिन दृढ़तम परिणाम होते जाते हैं। निरन्तर समाधिमरणका पाठ चिन्तवन करती रहती हैं। आपके प्रति उनका कहना है कि वेटी (शक्तितस्त्यागतपसी) इस वाक्यका निरन्तर उपयोग रखना। ऐसा तप व सयम न करना जिससे सर्वथा निर्वल शरीर हो जावे और न ऐसा पोषण हो करना जो स्वाध्याय क्रियामे बाधा पहुँच जावे। यथाशक्ति क्रिया करना श्रेयस्कर है। तत्त्व श्रद्धानके दृढतम करनेके अर्थ आध्यात्मिक दृष्टि पर निरन्तर अधिकार रखना और अपने कालको निरन्तर जैन धर्मके विचारमे लगाना। जो लड़की पढ़ने आये उन्हे सार्थ पाठ पढ़ाना। यदि ऐसी प्रवृत्ति हमारी बन जावेगी तब अनायास हमारा कल्याण निकट है। मेरा भी यही आपके प्रति भाव है कि आपकी आत्मा धर्ममार्गमे तत्पर रहे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२४]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पूज्यताका कारण वास्तविक गुणपरिणति है। जिसमे वह है पूज्यता व सुखका आवास है। हमारा निरन्तर यही परिणाम रहता है कि वावाजीके समागममें काल यापन करें, किन्तु कुछ ऐसा कर्मविपाक है जो मनोनीत नहीं होने देता। अस्तु, मेरी सम्मतिके अनुकूल वावाजीको जितना उत्तम स्थान खतौली है, अन्य नहीं। इतर स्थानोंमें स्वाध्यायप्रेमी नहीं। प्राय: गल्पप्रिय हैं। यदि उनको पत्र डालो तव मेरा अभिप्राय अवश्य लिख देना और जितना वने सुवोधपूवक स्वाध्याय करना। स्वाध्याय तप है और संवर निर्जराका कारण है। आत्मज्ञानके सन्मुख करनेवाला है। एकवार प्रवल आकांक्षा वावाजीसे मिलनेकी है। ठण्ड जानेके वाद यदि शरीर योग्य रहा तव १५ दिनको आऊँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२५]

श्रीयुक्ता शान्तिमूर्ति महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणपथ तो आत्मामें है, किन्तु हमारी दृष्टि इस ओर न जाकर पराश्रित होकर वाह्य पदार्थोंके गुणदोष विवेचन में अपनी सर्व शक्तिका अपव्यय कर चरितार्थ हो जाती है। जहाँतक वने स्वाध्यायका उपयोग यथार्थ वस्तुके परिज्ञानमें ही पर्यवसान न हो जाना चाहिए किन्तु जिनके द्वारा हम अनन्त संसारके वन्धन में वद्ध हैं ऐसे मोह रागद्वेषका अभाव करके ही

उसे विराम लेना चाहिये। प्रशंसासे कुछ स्वात्मोत्कर्ष नही। स्वात्मोत्कर्षका मुख्य कारण रागद्वेषकी उपक्षीणता ही है। मुझे एकबार बाबाजीके दर्शनकी बड़ी इच्छा है। समय पाकर होगा। मेरा स्वास्थ्य भी अब रेलके यातायात योग्य नहीं। केवल एक स्थान पर शान्तिपूर्वक स्वाध्याय करनेके योग्य है। आजकल प्राणियोंकी स्थिर प्रकृति नही इसीसे विशेष आपत्ति नही सह सकते। फिर भी जिसके आभ्यन्तर उत्तम श्रद्धान है वह इन विपत्तियोके द्वारा भी विचलित नहीं होता। शेष सबसे धर्मप्रेम।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२६]

श्रीयुक्ता देवी महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला, समाचार जाने। भाद्र मास सानन्दसे धर्मध्यानमे बीता किन्तु आभ्यन्तर शुद्धिका होना कठिन है। जिन जीवोंने आत्मशुद्धि न की उनका व्रत, तप संयम सकल निष्फल है। बाह्य क्रिया तो पुद्गलकृत विकार है। अतः बाह्य आचरणों पर उतना ही प्रेम रखना चाहिये जो आत्मशुद्धिके साधन हो, क्योंकि मतिज्ञानके साधक द्रव्येन्द्रियादिक हैं। अतः इनकी रक्षा करनी इष्ट है। जहाँतक बने आभ्यन्तर परिणामोकी निर्मलता रखना ही अपना ध्येय समझना। आत्माका निज स्वरूप श्री चेतनारूप है। उसकी व्यक्ति ज्ञान-दर्शन रूपमे प्रगट अनुभवमे आती है। परन्तु अनादि परद्रव्य संयोगसे नाना परिणमन द्वारा विकृतावस्था उसकी हो रही है। परन्तु इससे ऐसा न समझना कि स्वरूप प्रगट होना असंभव है। असभव तो तब

होता जब उसका लोप हो जाता, सो तो है नहीं। असली स्वभावका प्रगट होना कठिन है। विस्मृत हस्तगत रत्नके समान है। जिस तरह कोई अपनी वस्तु भूल जाता है और यत्र तत्र खोजता है। बस इस न्यायसे यह जीवात्मा अपने असली निज रूपको भूल कर परपदार्थोंमें हेरता है। अपनेको आप नहीं जानता। मोह निमित्त प्रबल हो रहा है। इसमें फंसकर सुखके कारणोंको दुःख प्रतीत करता है, दुःखके कारणोंमें सुख मान रहा है। इस विपरीत भावसे निज निधि भूल रहा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–२७]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। इस संसार महाटवीमें मोह कर्म द्वारा सम्पादित चतुर्गति भ्रमण द्वारा यह जीव कभी भी स्वास्थ्य लाभका भागी न हुआ। सुखका मूल कारण केवल मोहकर्मका नाश है। वह सामान्यतः मोह, राग, द्वेष तीन रूपमें विभाजित है, जिसमें प्रथम भेदके आधीन इतर दोकी सत्ता है। जिसको कुछ भी ज्ञान है वह शीघ्र ही इसको कह देता है, परन्तु आभ्यन्तरसे उसकी विकृतिको न होने दे यही परम दुर्लभ है। अतएव जहाँ तक बने स्वाध्यायमें ही अपनी प्रवृत्ति रखना। यथाशक्ति तप और त्याग करना। तथा समय पाकर अपनी पुत्री, बहन, माताओंको धर्मध्यानमें लगाना। यही सब उपाय मोहके दूर करनेके हैं।

जगतकी विचित्रता ही हमको जगतसे उपरत करानेकी जननी है। हम जन्मान्तरोंके प्रबल विरुद्ध अभिप्रायोंसे नाना प्रकारके

कर्मबन्धसे जकड़े हुए हैं। निज हित नहीं सूझता। जिसने इस पराधीनताका कारण मोह बंधन ढीला कर दिया उसने सब कुछ किया। इससे संसारमें यदि न रुलना हो तो इसे छोड़ दो। यही मोक्षमार्ग है। अब बाईजी अच्छी हैं। पुत्री! तुम भी वैद्यकी अनुकूल दवा सेवनकर नीरोगताका लाभ करना, क्योंकि शरीर निरोगता ही धर्मसाधनमे मुख्य हेतु है। बाबाजी महाराजका हमारे पास भी १५ दिनसे पत्र नहीं आया है। शायद भाद्रपद मासमें पत्र देना छोड़ दिया हो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२८]

श्रीयुक्ता महाशया देवो महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम लोगोंका कर्त्तव्य ही है कि उनकी वैयावृत्त करें। उनको दमाकी बीमारी होगई है। यदि योग्य औषधि मिल जावे तब इनका स्वास्थ्य कुछ दिनके लिये सुधर जावे। इतनी बीमारी होते ही उनका धैर्य प्रशंसनीय है। हा शब्दका उच्चारण नहीं। धर्ममे पूर्ण दृढ़ता है। एक मासको सिवाय वस्त्रके परिग्रहका त्याग कर दिया है। किन्तु मुझे विश्वास है, इस रोगका प्रतीकार नहीं, फिर जो होगा सामाचार दूंगा। रोगादि दुःखजनक नहीं, रागादिक दुःखदायी हैं। बाबाजी महाराजको यह चाहिये कि खतौली छोड़कर अन्यत्र न जावें। मैंने यह विचार कर लिया है कि जबाबी कार्ड या टिकट आवे तभी उत्तर देना। यह नियम बाबजीके वास्ते नहीं। स्वाध्याय दृढाध्यवसायसे करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२९]

श्रीयुक्ता मदादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

श्री जिनेन्द्रके आगमका अहर्निश अभ्यास करना। यही संसार महार्णवसे पार करनेको नौका सदृश है, कषाय अटवी दग्ध करनेको दावानल है, स्वानुभव समुद्रकी वृद्धिके अर्थ पौर्णमासीका चन्द्र है, भव्य कमल विकासनेको भानु है, पाप उलूक छिपानेको भी वही है। जहांतक बने यथायोग्य शरीरकी रक्षा करते हुए धर्मकी रक्षा करना। बाईजीका धर्मस्नेह। बाबाजी महाराजका पता देना। वे जहां चातुर्मास्य करेंगे वहीं मैं रहूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३०]

श्रीदेवीको दर्शनविशुद्धि

बाह्य निमित्त कोई भी ऐसे प्रबल नहीं जो बलात्कार परिणाम को अन्यथा कर देवें। अभी अन्तरङ्गमें कषायकी उपशमता नहीं हुई। इसीसे यह सर्व विपदा है। आकुलता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। अपना स्वरूप ज्ञाता-दृष्टा है। यही निरन्तर भावना और तद्रूप रहनेकी चेष्टा रखना। यदि कर्मोदय प्रबल आया तब शान्ति भावसे सहना। यही कर्मको नाश करनेका प्रबल शस्त्र है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३१]

श्रीयुक्ता माहादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

श्रीयुत महाराजसे प्रणाम कहना। जगतका मूल स्नेह है। परन्तु धार्मिक पुरुषोंका स्नेह जगतके उच्छेदका कारण है। यदि राग बुरा है तो रागमें राग न करो। रागका उदय दशम गुणस्थान पर्यन्त होता है। अर्हद्भक्ति भी संसार उच्छित्तिका हेतु इसीसे मानी गई है, क्योंकि गुणोंमें अनुराग ही भक्ति है। मेरा तो यह विचार है—परकी भक्ति औपचारिक है। परमार्थसे आत्माका शुद्ध रूप ही संसारका घातक है। देवीजी, मेरा बावाजीसे आबाल कालसे स्नेह है और यदि इनसे स्नेह छूट गया, तब दैगम्बर-पद होना दुर्लभ नहीं। परन्तु यह होना अशक्य है। आप जो स्वाध्याय करें, अध्यात्म मुख्यताके हेतु ही करें। यदि अवकाश पुण्योदयसे मिला, तब बाबाजीका एकबार दर्शन अवश्य करूँगा। शेष सबसे दर्शनविशुद्धि।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३२]

श्रीयुक्ता देवी महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बाबाजी महाराज हों तब हमारी धर्म स्नेहपूर्वक इच्छाकार कहना और वहां न होवें तो उनका पता देना। बूढ़ी दादीसे हमारी धर्मस्नेहपूर्वक दर्शनविशुद्धि। और आप पढ़नेमें काल लगाना तथा थोड़ा अभ्यास यानी कण्ठ करनेमें समय लगाना। शेष स्वाध्यायमें समय लगाना। यह मनुष्य आयु महान् पुण्यका

फल है। संयमका साधन इसी पर्यायमे होता है। संयम निवृत्ति-रूप है। निवृत्तिका मुख्य साधन यही शरीर है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३३]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। निरन्तर जैनधर्मके ग्रन्थोका स्वाध्याय करनेसे चित्तमे अपूर्व शान्ति होती है। शरीरकी रक्षा धर्मसाधनके लिये पापप्रद नही। विपयसे निवृत्ति होने पर तत्त्व-ज्ञानकी निरन्तर भावना ही कुछ कालमें संसार-लतिकाका छेदन कर देती है। केवल देह शोषण मोक्षमार्ग नहीं। अन्तरङ्ग वासना की विशुद्धिसे ही कर्म निर्जीर्ण होते हैं। किसी पदार्थमे भीतरसे आसक्त नहीं होना चाहिये। अपनी भावना ही आपकी आत्माका सुधार करनेवाली है। जहाँतक वने यही कार्य करनेमे समय विताना। वाईजीका सस्नेह जैजिनेन्द्र। ऐसा उपाय करना जिससे यह पराधीन पर्याय न पाना पड़े। वैसे तो सर्व पर्याय पराधीन है। पर लौकिक दृष्ट्या यह महती परतन्त्रताकी जननी है। शेष कुशल है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३४]

श्रीयुक्ता महादेवी सरल परिणामिनीको दर्शनविशुद्धि

इस पर्यायसे जहाँतक वने संयम और स्वाध्यायकी पूर्ण रक्षा

करना। ससार-संततिका नाश इसी पद्धतिसे होता है। बाईजीका आशीर्वाद। बेटी फूलदेवी! तुम सन्तोषपूर्वक स्वाध्याय करो और अपनी विस्मृत निधिको प्राप्त करो। सतोष ही परम सुख है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३५]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजो, योग्य दर्शनविशुद्धि

संसार मे सभी पराधीन हैं। अतएव उसके नाशका उद्यम जिसने कर लिया वही स्वाधीन और सुखी है। यह जीव जैसे पराधीन है वैसे स्वाधीन भी हो सकता है। यह सब अपनी कर्तव्यताका फल है। जो आत्मा कर्मार्जनकी प्रचुरतासे नरकादि निवासोंका अधिपति होता है वही उनका निराकरण कर शिव-नगरीका भूपति भी हो सकता है। इससे कभी भी अपनी आत्माको तुच्छ न समझना। अपना धर्मध्यान साधो। इसीमे कल्याण है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३६]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

तात्त्विक बुद्धिसे कार्य करना। जो भी औदयिक भाव होते हैं वह यदि सम्यग्ज्ञान पूर्वक उनके स्वरूपपर दृष्टि देकर आचरण

किये जावें तब क्षायिक भावके तुल्य कार्यकारी हो जावे हैं। सब तरफ से चित्तवृत्तिको पृथक् करना समुचित है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३७]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। जहाँतक बने परपदार्थसे ममत्व बुद्धि हटाना यही सार है। यद्यपि धार्मिक पुरुषोंका स्नेह धर्म-साधक है तथापि अन्तमें हेय ही है। अणुमात्र राग भी बाधक है। बहुत रागकी क्या कथा? स्वाध्याय ही परम तप है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३८]

श्री महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। नहरासे मेरा प्रणाम कहना और वे यदि अन्यत्र गमन कर गये हों तब वहां पर पत्र द्वारा लिख देना। मैं श्री नैनागिरि और द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्रोंकी वन्दना करता हुआ श्री अतिशय क्षेत्र पपौराकी वन्दनाको आया हूँ। यहाँ पर अगहन वदि २ तक रहूँगा। फिर श्री अतिशय क्षेत्र अहारकी वन्दना कर अगहन वदि १० तक वरुआसागर पहुँचूँगा। अभी स्वास्थ्य अच्छा है। किन्तु जिन परिणामोंसे स्वात्महित होता है उनका स्पर्श भी

अभी तक अन्तस्तलमे नहीं हुआ है। हम लोग केवल निमित्त कारणोंकी मुख्यतासे वास्तविक धर्मसे दूर जारहे हैं। जहां पर मन, वचन, कायके व्यापारका गम्य नहीं वह पद-प्राप्ति आत्म-बोधके बिना हो जावे, बुद्धिमे नहीं आता। यह क्रिया जो उभय-द्रव्यक संयोगसे उत्पन्न हुई है, कदापि स्वकीय-कल्याणमे सहायक नहीं हो सकती। अतएव औदयिकभाव तो बन्धका कारण है ही। किन्तु क्षयोपशम और उपशमभाव भी कथञ्चित् परद्रव्यके निमित्तसे माने गये हैं। अतः जहांतक परपदार्थकी संपर्कता आत्माके साथ रहेगी वहां साक्षात् मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभा ही नहीं किन्तु असम्भव है। अतः अन्तरङ्गसे अपने ही अन्तरङ्गमे अपने ही द्वारा अपने ही अर्थ अपनेको गंभीर दृष्टिसे परामर्श करना चाहिये, क्योकि मोक्षमार्ग एक ही है, नाना नहीं।

> "एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मकः
> तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।
> तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
> सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति॥"

मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक ही है, उसीमें स्थिति करो और निरन्तर उसका ध्यान करो, उसीका निरन्तर चिन्तवन करो, उसीमे निरन्तर विहार करो तथा द्रव्यान्तरको स्पर्श न करो। ऐसा जो करता है वही मोक्षमार्ग पाता है। उसका यह अर्थ नहीं कि स्वच्छन्द होकर आत्मद्रव्यसे भ्रष्ट हो जावो। किन्तु अन्तरङ्ग तत्त्वकी यथार्थ प्रतीति करना ही हमारा कर्त्तव्य है। व्यवहारक्रियामे मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३६]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। बाबाजी महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है और वह यहांसे बनारस जायेंगे। संसारमे प्राणीमात्र मोहके वशीभूत होकर चिन्तातुर रहते हैं और मोहमे ऐसा होना स्वाभाविक है। परन्तु महापुरुष वही है जो इस मोहको कृश करनेमें सतर्क रहे। इस मोहने नारायण लक्ष्मणको 'हा राम' भी पूर्ण न कहने दिया और प्राणपखेरु उड़ाकर ही सतोप न किया किन्तु आगामी भी जबतक इसका सत्त्व है पिण्ड न छोड़ेगा। अतः जीवन, मरण, लाभ, अलाभमे समता रखना ज्ञानीका कार्य है।

> सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
> कर्म्मोदयान्मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्।
> अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
> कुर्यात्पुमान्मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्॥

अन्यथा कोई भी मनुष्य संसारमें ऐसा नहीं है जो उदयागत कर्मकी वेदनाको पृथक् कर सके। असाताके उदयमे श्रीआदिदेवकी सहायता करनेमे भरतादिसे महाप्रभु समर्थ न हो सके और जब सातोदय आया तब श्री श्रेयांसको स्वयमेव दान देनेकी क्रियाका स्वप्नमे प्रतिबोध हुआ। अतः यदि बच्चेकी आयु है तब आप चिन्ता करें या न करें अनायास बालकको आराम हो जायगा। विशुद्धि परिणाम ही निरोगतामे सहायक होता है, संक्लेश परिणाम तो बाधक कारण ही है। फिर इस संसारमें और क्या रखा है? कदलीस्तम्भके समान असार है, अतः सब विकल्प छोड़ स्वात्माकी ओर आनेकी चेष्टा करना ही श्रेयोमार्गकी भूमिकामें पदारोहण करना है। आप अब अपनी मातारास और

भाई लक्ष्मणजी और उनकी धर्मपत्नी आदिसे मेरी धर्मवृद्धि कहना और कहना कि बुद्धिका फल आत्महितमे लगाना ही है। यों तो संसारमे अनेक जन्म मरण किये और करने पड़ेंगे। यदि आत्महितमे एकबार भी प्रयत्न कर लिया तब फिर इन अनन्त यातनाओसे अपनेको रक्षित कर सकोगे। अतः उपाय करते जाओ परन्तु चिन्ता न करो, जो भविष्य है वह अनिवार्य है। हॉ जिन महापुरुषोंने इस मोहमल्ल को विजय कर लिया उनका भविष्य प्राञ्जल प्रभात है। शेष कुशल है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--४०]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

वेटी ! ससार-बन्धन वहुत ही विकट समस्या है। इससे सुलझना अल्प पुण्यसे नहीं होता। यह जीव यदि अन्तःकरण स्थिर कर विचार करे और रागादि विभाव परिणामोंकी परपरा पर एकवार परामर्श कर उनके पृथक् होनेपर यत्नशील हो तब ऐसी कोई अलौकिक शक्तिका उदय होगा जिससे आगामी उनकी सन्तति इतनी उपक्षीण रूपसे चलेगी जो अल्प कालमे उसका सवस्व ही नहीं रहेगा। मोक्षमार्गमे वास्तविक मूल कारण सवर है। इसके बिना निर्जराकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। अतः सिद्धान्तवेत्ताओंको उचित है जो स्वात्मतत्त्वकी इस सवर तत्त्वसे रक्षा करें। लौकिक प्रयत्न बन्धन ही में सहायक होते हैं और यदि यही जीव सम्यक् अभिप्रायसे आंशिक भी रागादिकों-मे हानि करनेका प्रयत्न करे तब मोक्षमार्ग के पथपर आरूढ़ हो सकता है। आत्माकी कथनीसे आत्माकी प्राप्ति नहीं हो

सकती। किन्तु उसके अनुकूल प्रवर्तनसे उसका लाभ हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है। उसमें जो रागादि-की कलुषता है वही उसके स्वरूपकी नाशक है। उसे न होने दें यही हमारा पुरुषार्थ है, शेष तो विडम्बना है। जब तक यह न होगा तब तक शुभाशुभ क्रियाओंसे इसी दुःखमय संसारकी वृद्धि होगी और निरन्तर पराधीनताके बन्धनमें पर्यायकी पूर्णता करनी होगी। आप अपने सरल परिणामोंका फल प्राप्त करनेमें व्यग्र न होंगे। एक समय वह आवेगा जो अनायास ही वह होगा। मेरी तो सम्मति है जो व्यग्रतामे सिवाय आकुलताके और कुछ नहीं होता। मोक्षमार्ग तो शान्तिमे है। रागादिककी कलुषता कितनी दुःखदायी है? अन्य दुःख ही नहीं, आत्मकल्याणकी प्राप्ति तो आपमे है. पर तो निमित्तमात्र है, अतः अपने ही बाधक, साधक कारणोंको देखो। जो बाधक हों उन्हें हटाओ। साधक कारणोंको संग्रह करो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–४१]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। ससारमें क्षोभ होता है, हो, इसको औदयिक भाव जानो। इसमें विकल न होना। विकलताकी उत्पत्ति यदि हुई तब सम्यग्ज्ञानी और अनात्मज्ञानीमें क्या अन्तर हुआ? आप अपनेको कदापि व्यग्र न होने दें। यह बाह्य-संयोग जिन भावोंसे होता है वह परनिमित्तक होनेसे अनात्मीय है। तब यों जो परवस्तु है उसके अनात्मीय होनेमें कौन-सी शंका

है। अतः आपत्ति और अनुपपत्ति अनात्मीक जान कदापि व्यग्र न होना। अज्ञ मनुष्योके सम्बोधनार्थ नारकादिक दुःखोंका निरूपण कर आचार्य महाराजने उनके पापसे रक्षित होनेकी चेष्टा की है। तथा स्वर्गसुखका लोभ दिखाकर उन्हे शुभोपयोगमें लगाया है। सम्यग्ज्ञानी शुभ और अशुभ दोनोंको अनात्मीय जानता है। अतः उसको मोहके सद्भावमे भी केवल पूर्ण स्वरूप-प्राप्तिके अर्थ ही अभिप्राय रहता है, अतः वह संसारके सभी कार्योंमें मध्यस्थ रहता है। माध्यस्थता ही मोक्षमार्गकी प्रथम यात्रा है। इसके बलसे सम्यग्ज्ञानी नाना प्रकारके आरम्भादि अन्य बाह्य अपराध होने पर भी नियतकी निर्मलताके अनन्त संसारके दण्डसे रक्षित रहता है। अपनी आत्माको कदापि तुच्छ न मानना। जब आंशिक निर्मल ज्ञान हो गया तब कदापि ससार-की यातनाका पात्र यह आत्मा नहीं हो सकता। अतः अपने निर्मल परिणामोके अनुकूल बाह्य परिस्थिति पर स्वामित्वकी कल्पनाका त्याग करना ही ज्ञानीका काम है। चारित्रमोहकी उद्वेगता आत्मगुणकी घातक नहीं, घातका अर्थ यहां विपर्ययता है, न्यूना-धिक नहीं। न्यून होना अन्य बात है, विपर्ययता अन्य वस्तु है। दर्शनमोहके अभावमे आत्मा निरोग हो जाता है, जैसे रोगी मनुष्य लंघनसे शुद्ध होनेके बाद निरोग तो हो जाता है, परन्तु अशक्त रहता है। क्रमसे पथ्यादि सेवन कर जैसे अपनी पूर्ण बलिष्ठताका पात्र हो जाता है तद्वत् सम्यग्दृष्टि निरोग होकर क्रमसे श्रद्धाका विषय लाभ करते हुए एक दिन अपने अनन्त सुखादिकका भोक्ता हो जाता है। इसमे अणुमात्र सन्देह नहीं। अतः जब आपने वास्तविक आत्मदृष्टिका लाभ प्राप्त कर लिया तब इन क्षुद्र उपद्रवोंसे भयकी आवश्यकता नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—४२]

श्रीयुक्ता कल्याणमागरता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जितने अश रागादिक न्यून हो वही धर्म है। बाह्य व्यापारसे जितनी उपरमता हो वही रागादिक कृशतामें हेतु है। जितना बाह्य परिग्रह घटे उतनी ही आत्मामें मूर्च्छाके अभावसे शान्ति आती है और जो शान्ति है वही मोक्षमार्गकी अनुभावक है, अतः जहाँ तक बने यही पुरुषार्थ कीजिये। सबसे आभ्यन्तर निवृत्ति रखिए, क्योंकि तत्त्व निवृत्तिरूप है। यथा—"निवृत्ति रूपं यतस्तत्त्वं"। स्वाध्यायको आचार्य महाराजने अन्तरङ्ग तपमें गिना है। और भी कुन्दकुन्द स्वामीने आगमज्ञान ही त्यागियोंके लिए मुख्य बताया है। और आगमज्ञानका मुख्य फल भेद-ज्ञान है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—४३]

श्रीयुक्ता देवीजी, दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने स्वाध्यायमें काल बिताओ। कोई किसीका हितकर्ता नहीं। आत्मपरिणामकी निर्मलता ही सुखका मूल कारण है। वह वस्तु किसीके द्वारा नहीं मिलती। उसका कारण आप ही हैं। तुम्हारी निर्मलता ही संसारसे पार कर देगी।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—४४]

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य, दर्शनविशुद्धि

…… आपने दशधा धर्मका पालन सम्यक्‌रीतिसे किया होगा। हमने भी यथाशक्ति साधन कर पर्व-निमित्तक अपने जन्मको सफल बनानेका प्रयत्न किया। यह पर्वके अनन्तर लिखनेकी पद्धति है। जैसे छोटी लड़कियोंमे गुड़िया खेलनेकी पद्धति है। धर्म वस्तु तो निवृत्तिरूप है। प्रवृत्ति द्वारा तो उसका यथायोग्य कहीं आंशिक और कहीं पूर्णरूपसे घात ही है। यदि ऐसा न होता तो महाव्रती महर्षि जो कि सांगोपांग महाव्रत पालन करते हैं उनके चारित्रको 'प्रमत्तचारित्र' शब्दसे न कहा जाता। प्रथम चारित्र करणानुयोगमे कहा है। अथ च, दैवात् प्रवृत्ति-मार्गकी एकान्तसे मुख्यता हो जावे तब चारित्रका घातक तो निर्विवाद ही है। सम्यग्दर्शनका घात भी दुर्निवार है।

आजकलका वातावरण ऐसा प्रबल है कि निश्चय-धर्मके विवेचकोंको 'धर्मद्रोही' शब्दसे अलकृत करता है और जो बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् भाषाकार हो गये हैं उन्हें मनमाने शब्दों द्वारा यद्वा तद्वा कहकर अपनेको धन्य समझता है। ऐसे वातावरणमे रहकर कुशलमार्ग अति दुलभ है। आजकल तो यह सिद्धान्त-सा हो गया है कि शुभात्मक प्रवृत्ति ही गृहस्थोंके लिए कल्याणका मार्ग है। उन्हें निश्चय-धर्म मनन करनेका कोई अधिकार नहीं। इन जीवोंके शुद्धोपयोग तो दूर रहो इनकी अहम्मन्यताने इनके शुभोपयोगको भी कलंकित कर रखा है। अतः जहां तक बने इन व्यवहाराभास-विषयक चर्चा करनेवालोंकी संगति छोड़ना ही श्रेयस्कर है। इनका समागम छोड़ना तो उचित है ही किन्तु जो एकान्तसे निश्चय-धर्मकी मुख्यता कर

अपनेको मोक्षमार्गका पथिक मान स्वेच्छाचार-पूर्वक प्रवृत्ति करनेसे निर्भय हैं उनका भी सम्पर्क त्यागना आत्महितका साधक है। शुभोपयोगके त्यागनेसे शुद्धोपयोग नहीं होता, किन्तु शुभोपयोगमे जो मोक्षमार्गकी कल्पना कर रखी है, उसके त्याग और राग-द्वेषकी निवृत्तिसे शुद्धोपयोग होता है और यही परिणाम मोक्षमार्गका साधक है। इसके विपरीत कषायसे हम संसार ही के पात्र होंगे। अतः इस पवित्र पर्वमे अविरुद्ध निवृत्ति-मार्गकी चर्चा करनेका हमारा ध्येय ही हमें श्रेयोमार्गका पथिक बनायेगा। पर्व तो बहुत हैं, परन्तु यह पर्व भगवान्के पञ्चकल्याणकोंमे तपकल्याणकी तरह कुछ विशेषता रखता है। जैसे अष्टाह्निकापर्वमें पूजनकी विशेषता है और षोडशकारणव्रतमें उपवासोंकी मुख्यता है। परन्तु इस पर्वमें क्रोधादि कषायोंपर, जो कि परमार्थ-पथके घातक तथा आत्माके शत्रु हैं, विजय पाने की विशेषता है। इसकी मुख्यताका स्वाद तप-कल्याणकके स्वादका आनन्द लेनेवाले लौकान्तिक देव ऋषियोंकी तरह विरलोंको ही आता है। इसी पर्वके अन्तर्गत आकिञ्चन-धर्मके दिनसे रत्नत्रयका उदय होता है जो रत्नत्रय साक्षात् मोक्षमार्ग है। इस पर्वमे यदि शान्ति न आई तो अन्यमे आना कठिन ही है। अतः जिन्होंने अपने क्रोधादि कषायोंको इन दिवसोंमे कृश किया वे ही धन्य हैं। अन्यथा—

कहाँ गये थे ? दिल्ली।

कितने दिन रहे ? बारह वर्ष।

क्या किया ? भाड़ झोंका।

क्या खाया ? चने।

यही सार रहा। अस्तु इस धर्मकी मीमांसा तो वही कर सकता है जिसके इसका उदय हुआ हो। इस धर्मका रूप 'राज-

वार्तिक' से जानना और इतना अनुभवसे जाना जा सकता है जो जिस समय हमारा क्रोध स्वकीय कार्य करके खिर जाता है उस समय हमे जो शान्ति मिलती है वही क्षमा है और वही उसके अभावकी सिद्धि है। परन्तु जो क्रोधके कार्य द्वारा सुख मान रहे हैं उनके लिए इस गूढ़तत्त्वका रहस्य समझना कठिन है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—४५]

श्रीयुक्ता मदादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आत्मा एक ऐसा पदार्थ है जो परके सम्बन्धसे 'ससारी' और परके सम्बन्धसे रहित 'मुक्त' ऐसे दो प्रकारके भावको प्राप्त हो जाता है। परका सम्बन्ध करनेवाले और न करनेवाले हम ही हैं। अनादिकालसे विभाव-शक्तिके विचित्र परिणमनसे हम नाना पर्यायोंमें भ्रमण करते हुए स्वयं नाना प्रकारके दुःखके पात्र हो रहे हैं। जिस समय हम ज्ञायकभावमे होनेवाले विकृत भावकी कर्तव्यताको जानकर उसे पृथक् करनेका भाव करेंगे उसी क्षण शान्ति-मार्गके पथपर पहुँच जावेंगे। अतः इस पर्यायमें हम इतना ही कर सकते हैं कि विकारभावको जानकर उससे तटस्थ हो जावें या चरणानुयोगकी पद्धतिसे उसके जो बाह्य कारण हैं उन्हें यथाशक्ति एकदेश (आंशिक) त्याग और सर्वदेश (सर्वथा या पूर्णतः) त्याग करनेका प्रयत्न करें। अन्तरङ्गसे बुद्धि-पूर्वक त्याग करें। करणानुयोगके अनुसार त्यागकी विधि नहीं है। बुद्धिपूर्वक पर-पदार्थोंसे ममताका त्याग ही हो सकता है, क्योंकि वही अपनी परणतिकी मलिनताका मूल है। पर-पदार्थोंको मलिनताका कारण मानना औपचारिक

है। यही बात श्री 'प्रवचनसार' (ज्ञेय तत्त्वाधिकार गाथा ९६) में स्वामी कुन्दकुन्दने बहुत स्पष्ट रूपसे दर्शाई है--

सप्पदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरायदोसेहिं।
कम्मरजेहिं सिलिट्ठो बंधो त्ति परूविदो समये॥"

अर्थात्—ससारी जीव लोकमात्र असख्यात प्रदेशवाला होनेसे जब मोह, राग और द्वेषसे कषायवाला होता है। उसी कालमे कर्म-धूलिरूप ज्ञानावरणादि कर्मोंसे श्लिष्ट (सम्बन्धित) होता है। इसीका नाम बन्ध है। अब यहाँ पर देखना है कि परमार्थिक बन्ध तो आत्मामें ही हुआ और यही जीव-बन्ध है और यही आकुलताका जनक है। कर्मवर्गणारूप बन्ध तो व्यवहार-बन्ध है। इससे हमारी कौनसी क्षति हुई। वस्तुस्थिति भी ऐसी है कि जिस समय आत्माके अन्तरङ्गसे मोह-रूप पिशाच निकल जाता है उस कालमें यह ज्ञानावरणादि द्रव्य-बन्ध रहते हुए भी आत्मामें न तो आकुलताका जनक है और न बन्धका कारण है। इनके उदयसे जो भाव होता है वह भी आत्माकी क्षतिका कारण नहीं, यह तो सम्पूर्ण मोहके नाशपर निर्भर है; किन्तु एक दर्शनमोहके नाश होनेपर भी चारित्रमोहकी दशा स्वामी-हीन कुत्ताकी तरह है—भोंकता है परन्तु काटनेमें समर्थ नहीं। अतः भाव-बन्ध ही निश्चयसे आत्मामें आपत्तिका कारण है। उसीका निपात करनेकी चेष्टा करो। इसपर—श्रीस्वामीजीकी गाथा है--

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयेण णिद्दिट्ठो।
अरहंतेहि जदीणं ववहारो अण्णहा भणिदो॥

अर्थात्—अरहन्त भगवानके द्वारा मुनीश्वरों और जीवोंको निश्चयनयके द्वारा बन्धका संक्षेप बताया है। इस निश्चयनयसे भिन्न एक क्षेत्रावगाहरूप जो द्रव्य-बन्ध है वह व्यवहार है। आत्माका जो राग-परिणाम है वही कर्म है और इस परिणामका आत्मा कर्ता है और यही परिणाम पुण्य और पापका जनक

होनेसे द्वैविध्यको धारण करता है। इस अपने निज-परिणामका ही आत्मा कर्ता है, उपादाता (ग्रहणकर्ता) है और त्यागकर्ता भी है। यही शुद्ध (केवल) द्रव्यको निरूपण करनेवाला निश्चयनय है। 'शुद्ध' पदका अर्थ यहाँ केवल आत्मा लेना। और जो पुद्गल-परिणाम आत्माका कर्म है वह भी पुण्य-पापरूपसे दो तरहका है। इस पुद्गल-परिणामका आत्मा कर्ता है उपादाता (ग्रहणकर्ता) और त्यागकर्ता है यह अशुद्ध द्रव्य निरूपणात्मक व्यवहारनय है। ये दोनों कथन बन सकते हैं, क्योंकि द्रव्य शुद्ध और अशुद्धपनेकर प्रतीतिका विषय है। किन्तु यहाँपर निश्चयनय ही साधकतम होनेसे उपादेय है। जब हम निश्चयसे अपने आत्मामें रागादिकको जानेंगे, तभी तो उस दोषको दूरकर निर्मल होनेका प्रयत्न करेंगे। पुद्गलके ज्ञानावरणादि पुद्गलकी पर्याय हैं। उनका परिणमन पुद्गलमें हो रहा है। उसके न तो हम कर्ता हैं, न गृहीता हैं और न त्यागनेवाले हैं। ऐसी वस्तुस्थिति जानकर भी जो देह-द्रविण आदिमें (देह और धन-सम्पत्ति आदिमें) ममत्वको नहीं त्यागते, वे जीव उन्मार्गगामी बाह्य त्याग करके भी सुखी नहीं। दूर करनेका मार्ग दिखानेवाला और कोई नहीं अपनी पवित्रता ही है अन्य तो निमित्त हैं। पदसे अधिक मूर्च्छाका त्याग होना असम्भव है। श्रद्धामें सम्यग्दृष्टि आत्मासे अतिरिक्त पदार्थोंसे विरक्त है, परन्तु प्रवृत्ति तो पर्यायके अनुकूल ही होगी। अविरत और संयतकी श्रद्धामें अन्तर न होनेपर भी प्रवृत्तिमें महान् अन्तर है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि अपने दोषोंको दूर न करना चाहिये। दूर करनेमें ही कल्याण-मार्गकी निर्मलता है।

× × ×

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४६]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

स्वाध्यायका मुख्य फल तत्त्वज्ञान-पूर्वक निर्जरा है, क्योंकि यह तप है और इसीसे इसका अन्तरङ्ग तपमे समावेश है। परन्तु आज कलके लोग जितना महत्त्व उपवासादि तपोंको देते हैं उतना इसे नहीं देते। इसका मूल कारण लोगोंकी वहिर्दृष्टि है। लोगोंकी जाने दो; हम स्वयं इसे महत्त्व नहीं देते। उपवासके दिन समझते हैं कि आज हमसे अनुचित प्रवृत्ति न हो जावे। ऐसा ध्यान वहुत लोगोंका रहता है। परन्तु स्वाध्याय-तपके अवसरमें जो प्रति दिनका कार्य है, यह नहीं रहता कि यह कार्य बहुत उत्तम है। इस दिन जितनी निर्मलता हो सके करना चाहिये। ध्यानको छोड़कर इससे उत्तम अन्य तप नहीं। परन्तु हमारी दृष्टि केवल स्वाध्यायसे ज्ञानार्जनकी रहती है, तपकी नहीं। हमारी तो यह श्रद्धा है कि यह तप उन्हींके हो सकता है जिनके कषायोंका क्षयोपशम है क्योंकि बन्धका कारण कषाय है, अतः जबतक उसका क्षयोपशम न हो उस जीवके स्वाध्याय नहीं हो सकता; ज्ञानार्जन हो सकता है और आज तो उसकी रूढ़ि पन्ना पलटनेमें ही रह गई है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४७]

श्री देवीजी महादेवीजी, इच्छाकार

संसारमें प्राणीमात्रकी अनादिसे यह प्रकृति हो गई है कि

परके सम्बन्धसे अपना जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, मोक्षमार्ग-संसारमार्ग आदि मान रहा है। वास्तवमें द्रव्योंके परिणमन स्वाधीन हैं।

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं॥

(समयसार, गाथा १०३)

अर्थात् जो जिस अपने द्रव्य या गुणमें रहता है वह अन्य द्रव्य या गुणमें संक्रमण नहीं होता। जब अन्यमें संक्रमण नहीं करता, तब कैसे अन्यको परिणमन करा सकता है? परन्तु हमारी दृष्टि ऐसी हो गई है कि निरन्तर अन्य निमित्त ही पर अपना भला-बुरा समझ रही है। अब यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'क्या निमित्त कोई वस्तु नहीं?' सो नहीं। निमित्त तो निमित्त ही है। परन्तु कई निमित्त तो ऐसे हैं जिनके बिना कार्य नहीं होता। जैसे कुम्भकारके बिना घट नहीं बन सकता। संहनन और चतुर्थ काल आदि ऐसे निमित्त है कि उन के बिना मोक्षके साधनकी पूर्ति नहीं होती। किन्तु अन्तरङ्ग कारणके बिना सर्व ही निमित्त अनुपयोगी है। अतः हमें अपनी आभ्यन्तर निर्मलताकी आवश्यकता है। उसमें हमारी ही पुरुषार्थता उपयोगिनी है। निरन्तर यह अभ्यास कार्यकारी है। जो हमारे आत्मामें विकृत भाव होते हैं उनका ही फल हमारी यह संसार-यातना है। वह विकृति दो विभागोंमें परिणत हो जाती है—एक तो शुभ और दूसरी अशुभ। यही संसारका सार है। केवल शुभ-अशुभ भाव ही नहीं, किन्तु उसके आभ्यन्तरमें जो अहङ्कारकी मात्रा है वही विष है। यदि वह विष दूर कर दिया जावे तब अनायास संसारकी जड़का विध्वंस हो सकता है। उसको जिस महापुरुषने जीत लिया वह इस संसारसे पार हो गया। यदि अहं-बुद्धि मिट

जावे तब ममत्व-बुद्धि हटनेमे क्या विलम्ब है ? लोकमे यही व्यवहार हो रहा है कि 'मैंने यह किया।' ऐसे कर्तृत्वमे अहं-बुद्धिका ही तो भाव है। अथवा 'मैंने पराया भला या बुरा किया।' इसके गर्भमे भी वही अहं-बुद्धिका प्रसार है। यह सब अनादि मोहका विलास है। इसके अन्दर ही सम्पूर्ण विश्वका बीज है इसके पृथक् करनेके लिए ही और इसी स्वत्वमें यह द्वादशांगकी रचना हुई। इसके अभाव होनेपर न तो संसार है और न संसारके उद्धारकी वासना। हे आत्मन् ! एक बार तो अपनी असलियतपर दृष्टि दो। देते ही यह सब नकली स्वांग ऐसे विलय हो जायँगे जैसे सूर्योदयमें अन्धकार। 'मैं' 'मैं' करती हुई बेचारी बकरी बधावस्थाको प्राप्त होती है और मैंना राजाओंके करोंसे पाली जाती है। अतः, यह परसे जन्य मोह आत्म-घातक है। वास्तवमे अनन्त संसारके बीजभूत अहं-भावका त्यागकर इसके विरुद्ध भावनाका आश्रय लेकर इसके हटानेका प्रयास ही मोक्षका बीज है। बाबाजीसे यह कह देना कि अब तो आपक धार्मिक परिणामोंकी निर्मलताके अर्थ एक स्थान ही उपयुक्त होगा। भ्रमण करनेमे लाभ नही। परन्तु वे महापुरुष हैं, कौन कहे ?

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४८]

श्रीमहादेवीजी, दर्शनविशुद्धि

कल्याणका पात्र वही होता है जो विवेकसे काम लेता है। देखो, अविरत-गुणस्थानवाला असंयमी और मिथ्या-गुणस्थान वाला संयमी इन दोनोंमें यदि बाह्य दृष्टिसे विचार किया जाय

तब अन्यत् भेद प्रतीत हो रहा है। एक तो साक्षात् मोक्ष-लिङ्ग को धारण किये हुए है और एक रणक्षेत्रमे कटिबद्ध हो रहा है। फिर भी एक मोक्षमार्गके सम्मुख है और एक मोक्षमार्ग को जानता ही नहीं। सम्मुख होना तो दूर रहो, यहाँपर केवल भेद-ज्ञानकी ही महिमा है। अतः जहाँ तक बने, बाह्य क्रियाको आचरण करते हुए आभ्यन्तर दृष्टिकी ओर लक्ष्य रखना ही इस पर्यायका पुरुषार्थ है। निरन्तर लक्ष्य अपनी परिणतिके ऊपर रहना चाहिये, तब बाह्य-पदार्थोंसे विमुखता आवेगी, स्वयमेव अन्तरदृष्टि हृदयमे आवेगी, क्योकि विभाव पर्यायके सद्भावमे स्वभाव परिणमन नहीं हो सकता। पुरुषार्थ बुद्धिपूर्वक होता है। और बुद्धि क्या है? हमारा अभिप्राय ही तो है। सम्यग्दृष्टिके जो भी शुभ-अशुभ व्यापार है उन्हे वह अभिप्रायसे नहीं करना चाहता, करने पड़ते हैं। द्रव्यलिङ्गी शुभ-परिणामोंका अभिप्रायसे कर्ता बनके कर्ता है; क्योकि आत्म द्रव्यका वास्तव स्वरूप ज्ञाता-द्रष्टा है। उसके साथ अनादिकालीन कर्मोंका सम्बन्ध है जिससे उसकी योग शक्ति और विभाव-शक्ति उसे विकृतरूप परिणमन करा रही है। इसमे विभावशक्ति द्वारा आत्मामे रागादि विभाव भाव होते हैं जो कि ससारके मूल कारण हैं। योगशक्ति उतनी घातक नहीं, वह केवल परिस्पन्द करती है। यदि रागादि कलुषता चली जाय तब वह स्वच्छतामे उपद्रव नहीं कर सकती, और उस बन्धको, जिसमे स्थिति और अनुभाग होता है नही कर सकती। अतः पुरुषार्थी वही है जिसने रागादिकके अभावके लिये विवेक उत्पन्न कर लिया है। यह भेद-ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है और इसीके बलसे ही आत्माके वह निर्मल परिणाम होते हैं जो सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं। उन भावोंकी महिमा करणानुयोगसे जानो। जो भाव सम्यग्दर्शनके उत्पादक है, उनके सदृश अनन्त संसारके घातक अन्य भाव नहीं

हैं। यदि एक वार ही वह हो जावे तब अधिक संसार नहीं रहता।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—४६]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

माता-पिताने हमारा महान् उपकार किया जो अनेक विघ्न वाधाओंसे सुरक्षित कर इस योग्य बना दिया कि हम चाहें तो अब आंशिक मोक्षमार्गके पात्र हो सकते हैं। वावाजी महाराज का आपके ऊपर उससे भी अधिक उपकार है जो उस उपकार से आपके पवित्र हृदयमें जैनधर्मकी मुद्रा अंकित हो गई। यदि आप उनके उपकारको स्मरण करती हैं तो यह उचित ही है। क्योंकि "न हि कृतं उपकारं साधवो विस्मरन्ति।" परन्तु तात्त्विक वात तो यह है कि कल्याणका उदय परमार्थसे आत्मा ही में होता है और आत्मा ही उसमें उपादान कारण है, इतमें तो निमित्त ही है। नौकापर बैठे रहकर कोई पार नहीं होता, किन्तु पार होने के समय (उस पारके तटपर पैर रखते समय) नौका त्यागनी ही पड़ती है। मोक्ष-मार्गके उपदेष्टा श्रीपरमगुरु अर्हन्त हैं। उनके द्वारा ही इसका प्रकाश हुआ है। अतः हर उचित है कि अपने मार्गदर्शकको निरन्तर स्मरण करें। परन्तु उन्हीं प्रभुका आदेश है कि यदि मार्गद्रष्टा होनेकी भावना है तब हमारी स्मृति भी भूल जाओ और जिस मार्गको हमने अंगीकार किया, उसीका अवलम्बन करो। अर्थात् पदार्थ मात्रमें रागादि परणतिको त्यागो, क्योंकि यह परणति उस पदकी प्राप्तिमें बाधक है। प्रवचनसार में कहा है :—

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं॥

जिसका मोह दूर हो गया है ऐसा जीव सम्यक् स्वरूपको प्राप्त करता हुआ यदि राग-द्वेषको त्याग देता है तब वह जीव शुद्ध आत्मतत्त्वको प्राप्त करता है। और कोई उपाय या उपायान्तर आत्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें साधक नहीं। यही एक उपाय मुख्य है। प्रथम तो मोहका अभाव करके सम्यग्दर्शनका लाभ करो। ज्ञानमें यथार्थताका लाभ उसी समय होता है। केवल राग-द्वेषकी निवृत्तिके अर्थ चारित्रकी उपयोगिता है। चारित्रका फल रागद्वेष-निवृत्ति है। यहाँ चारित्रसे तात्पर्य चरणानुयोग प्रतिपाद्य देशचारित्र और सकलचारित्रसे है। और जो कषायकी निवृत्तिरूप चारित्र है वह प्रवृत्तिरूप नहीं। उसका लाभ तो जिस कालमें कषायकी कृशता है उसी कालमें है। उसकी शान्ति वचनातीत है। अतः प्रवृत्तिसे उसका सद्भाव नहीं। वह (प्रवृत्ति) तो उसकी घातक ही है। किन्तु उसके सद्भावसे वह हो सकता है; अतः उपचारसे उसे भी चारित्र कह देते हैं और पंच महाव्रतकी भी इसीसे चारित्रमें गणना की है। वास्तवमें तो महाव्रत आस्रवका ही जनक है परन्तु महाव्रतके होनेपर वह होता है इसलिए उसे भी चारित्र कह दिया। वास्तवदृष्टिसे तो वह न प्रवृत्तिरूप है और न निवृत्तिरूप है। वह तो विधि निषेधसे परे अपरिमित शान्तिका दाता अनुपम आत्माका परिणाम है, जिसका वर्णन शब्दोंसे बाह्य है। फिर भी उसके विषयमें आचार्योंने बहुत कुछ कहा है। प्रवचनसार (अ० १ गाथा ७) मे कहा है—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥७॥

आत्माके स्वरूपमें जो चर्या है उसीका नाम चारित्र है। वही वस्तुका स्वभावपनेसे धर्म है।' अर्थात् शुद्ध चैतन्यका प्रकाश ही धर्मका अर्थ है। वही वस्तु यथावस्थित आत्म-स्वभावपनेसे साम्य भाव है। और जहाँपर दर्शनमोह और चारित्रमोहके अभावसे मोह और क्षोभका अभाव होनेपर आत्माकी अत्यन्त निर्विकार परिणति उद्भूत होती है उसी निर्मल भावका नाम साम्यभाव है। वह इस जीवका ही परिणाम है। उसीको श्री पद्मनन्दि महाराजने इन शब्दोंमें कहा है—

मोहोद्भूतविकल्पजालरहिता वागङ्गसङ्गोज्झिता।
शुद्धानन्दमयात्मनः परिणतिर्धर्माख्यया गीयते॥

अतः इन निमित्तोंकी उपयोगिता वहीं तक है जहाँ तक हम मोही हैं। मोहके अभावमें इनका कोई उपयोग नहीं। स्वामीने कहा है—

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥

कर्म करना और बात है तथा कर्मका होना और बात है। बड़े-बड़े महर्षियोंने भी उत्तम-उत्तम ग्रन्थ रचकर जगतका कल्याण किया, फिर भी कर्ता नहीं बने। यदि उनके आशयमें कर्तव्य होता, कदापि मोक्षके पात्र न होते। अतः अपने पवित्र भावोंके उदयके अर्थ निरन्तर जैसा पदार्थ है उसी रूपमें प्रतीति रहना चाहिये। यथाशक्ति श्रद्धाका जो विषय है उसमें रमण करनेकी स्थिरता होनी चाहिये। अतः जो निश्रेयसके अभिलाषी हैं वे बाह्य व्यवहारमें आसक्त रहते हैं। जिन नहिं चाखी मीसरी उनको कचरा मिट्ठ।" जिन्होंने परमार्थ-रसामृतका आस्वाद ले लिया वे इस व्यवहारके आस्वादको नहीं चाहते। विशेष क्या लिखूँ? यह पत्र श्री त्रिलोकचन्द्को भी सुना देना। उनके

पत्रका उत्तर फिर दूगा। उन्होंने पूछा है कि मरने पर ऋजुगतिवाला एक समयमे जन्म लेता है उसके कौन योग है? वहाँ उसके मिश्र योग है। क्योकि वह जहां जन्म लेगा, तदनुकूल वर्गणा ग्रहण करने लगता है; इसीसे उसके आनुपूर्वी भी अपना कार्य करने मे समर्थ नही। आपकी भद्रता ही भद्र परिणाम की साधक है, और ता निमित्तमात्र है।

तुम्हारा चिद्रूप ही आत्मकल्याणका हेतु है। उसमे जो वर्तमानमे अशक्तिसे रागादिककी उत्पत्ति है वह समय पाकर जायेगी। देशव्रतमे महाव्रतकी शान्ति व्यक्त नही हो सकती।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—५०]

श्रीयुक्त प्रशममूर्ति महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शारीरिक व्याधि असातोदयमे होती है। किन्तु यदि उसके साथमे अरति-प्रकृतिका उदय बलवान् हो तब वह व्याधि विशेष दुखःजनक होती है। यदि विशेष बलवान् न हो तब विशेष बाधक नही होती। विशेषसे तात्पर्य—मिथ्यादर्शनके साथ अरति विशेष बलशाली है। वास्तवमे शरीरमे जो रोग है वह दुःखदायी है ही नहीं। हमारा शरीरके साथ जो ममत्वभाव है वही तो मूल जड़ वेदनाकी है। इसके दूर करनेके अनेक उपाय हैं पर दो उपाय अति उत्तम हैं—एकत्व भावना और अन्यत्व भावना। इनमे एक तो विधिरूप है और एक निषेधरूप। वास्तवमें विधि और निषेधरूपका यथार्थ परिचय हो जाना ही तो सम्यग् बोध है। परसे भिन्न और निजसे अभिन्न ही तो शुद्ध

वस्तु है। इसीको समयसारमें स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने कितने सुन्दर पद्यमें निरूपण किया है—

अहमिक्को खलु शुद्धो दंसण-णाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥३८॥

निश्चय कर मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शनात्मक हूँ, सदा काल-अरूपी हूँ। इस ससारमें अन्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है, परन्तु हे मोह! तेरी महिमा अचिन्त्य और अपार है जो संसार मात्रको अपनेमें ग्रास करना चाहता है। नारकीकी तरह मिलनेका कारण नहीं, इच्छा संसारभरका नाज खानेकी है, यही मोहकी विलक्षणता है। जो बावले कैसे प्रलाप निरन्तर करता रहता है। हाथ कुछ आता नहीं, अतएव स्वामीने भावक भावके दूर करनेके अर्थ कैसा सुन्दर और हृदयग्राही पद्य कहा है—

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बिंति॥३६॥

मोह मेरा कुछ भी सम्बन्धी नहीं। एक उपयोग ही मैं हूँ। समयके ज्ञाता उसे निर्मोही जानते हैं। जिसके मोह चला जाता है उसके ज्ञेय-ज्ञायकभावका विवेक अनायास हो जाता है। इसीको समझाने अर्थ स्वामीजीने निम्न पद्य कहा है—

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं धम्मणिम्ममत्त समयस्स वियाणया बिंति॥३७॥

इत्यादि अनेक पद्योंसे इस मोही जीवके सम्यग् बोधके अर्थ प्रयास किया। परमार्थसे स्वामीने, जो मगलाचरण अनन्तर दो गाथाएँ हैं उनमें समयसारका सम्पूर्ण रहस्य कह दिया है—

जीवो चरित्त दंसण-णाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं॥२॥

जो जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्रमे स्थित हो रहा है उसीको तुम स्वसमय जानो और इसके विपरीत जो पुद्गल कर्मप्रदेशोमे स्थित है उसे पर समय जानो। जिसकी ये दो अवस्थाएँ हैं. उसे अनादि अनन्त सामान्य जीव समझो। इसी भावको लेकर स्वामीजीने 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा है और इसी भावको लेकर स्वामी समन्तभद्राचार्यने कहा है—

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः।

इस गाथाके आभ्यन्तर द्वादशांगका सार है। इसकी महिमा अनिर्वचनीय है। लिखनेकी सामर्थ्य नहीं; अतः यहीं पूर्ण करता हूँ। बाबाजी महाराजसे क्या कहूँ; उनका स्मरण ही हमे कल्याणपथका पथिक बना रहा है। महाराजका मौनका अभ्यास अच्छा है। आपको क्या लिखूँ; परन्तु हमारा मौन तो वचन योगके अभावको मौन समझ रहा है, किन्तु जब तक कषायोंकी वासनाका निरोध न हो तब तक वचनयोग और मनोयोगका निरोध होना असम्भव है। अन्तर्जल्प होता ही रहता है। इसपर कभी आपकी कृपा होगी तो मैं कुछ लिखूँगा। मेरे गूमड़ा हुआ तो अच्छा ही हुआ। जो आपके अभिप्राय से निर्गत उपदेश तो आपके हस्ताक्षरोंसे अंकित मिल गया। गूमड़ा अच्छा हो गया; परन्तु अन्तरङ्ग गूमड़ा दूर हो तब कुछ वास्तविक शान्तिका लाभ हो। आनेका विचार चातुर्मासके बाद करूँगा। मोक्ष-लिप्सा मोक्षका कारण नहीं, परन्तु लिप्साकी निवृत्ति मोक्षका साधक है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

— ——

श्री भगिनी शान्तिबाईजी

आदर्श महिला भगिनी शान्तिबाईका जन्म वि० स० १९४९ को टीकमगढ़ जिलान्तर्गत जरुआ ग्राममें हुआ था। पिताका नाम श्री सिंघई पचौरीलालजी और माताका नाम रावरानी था। जाति गोलालारे है। इनकी शादी ९ वर्ष की उम्रमें सिमरा निवासी सिंघई भैयालालजी के साथ हो गई थी। परन्तु विवाहके छह वर्ष बाद ही इन्हें वैधव्यके दुर्दिन देखने पड़े।

पूज्य वर्णीजी महाराजकी धर्ममाता श्री चिरोंजाबाईजीकी देवरानी होनेसे ये उनके पास रहने लगीं। वहींसे इनके वास्तविक जीवनका प्रारम्भ होता है। माताजीने लौकिक और पारमार्थिक दोनों प्रकारकी शिक्षा दिलाकर इन्हें अपने पैरों खडी होने लायक बना दिया। फलस्वरूप ये कटरा बजार सागरकी कन्याशालामें अध्यापिकाका कार्य करने लगीं। वहाँसे इन्हें जो कुछ मिलता है उसीमें अपना निर्वाह करती हैं और काटकसरकर जो बचा पाती हैं उसका यथासम्भव परोपकारमें विनियोग करती रहती हैं। इन्होंने अपने जीवनमें बहुत बड़े व्रत स्वीकार नहीं किये हैं फिर भी ये अपनी निर्लोभता, सादगी, सरलता और दृढ़ता आदि गुणोंके कारण सबके लिए आदर्श हैं। इन्हें देखते ही माताकी ममता जाग उठती है।

मालूम पड़ता है कि पूज्य वर्णीजी महाराजने इन्हें लगभग तीन पंक्तिका एक ही पत्र लिखा है जो यहां दिया जा रहा है।

[६–१]

श्री शान्तिबाई जी ।

धर्मध्यानमे अपना समय बिताना, स्वध्याय करना और जहां तक बने कुछ पाठ कण्ठस्थ करना। संसारमे कोई सरण नहीं, केवल पञ्च-परमेष्ठी ही शरण हैं। जो आप शान्त होगा वही सुखी होगा ।